

लेख	लेखक	पृष्ठ
वैदिक प्रार्थना	संकलित	१६२८
उमेशवाणी		१६२९
गिरती दीवारें (कहानी)	भोलानाथ मिश्र 'राज'	१६३३
जल-हवा व स्वास्थ्य	डा० कुलरंजन मुखर्जी	१६४९
धर्मोपदेश	स्वामी रामतीर्थ	१६५८
वंसी की ध्वनि में राधिका	श्री नारायण स्वामी	१६६५
प्रार्थना	रमाकान्त दीक्षित	१६८०
श्रीनाथजी की यात्रा	श्रीराम पाटील	१६८८
सत्यकाम जाबाल	श्री धूमकेतु	१७०१
आप कहां जा रहे हैं ?	रामस्वरूप खरे 'दीपक'	१७०६
सूर्य किरण चिकित्सा	डा० ज्वालाप्रसाद वर्मा	१७१३
हमारी स्वस्थता	पूरनचन्द जैन 'सुमन'	१७२८
वैराग्य-शतक	शिवेन्द्रप्रसाद गर्ग	१७३८
विश्व दर्शनका तत्व निरसन	कालूभाई बलिया	१७४६
स्वर प्रकाश	रामप्रसाद चाकलान	१७५१

लेख	लेखक	पृष्ठ
अनुशासन	मनोहर 'मनोज'	१७५६
साधना (धा. उपन्यास)	आचार्य देवेश्वर शर्मा	१७६३
प्यार प्रदर्शन (कविता)	अर्जुनदास बतरा	१७८१
बदलती राहें (कहानी)	दुर्गाशंकर त्रिवेदी	७८३
अष्टांग योग की महत्ता	सम्पादकीय	१७९२
रामचरित मानस	योगीराज उमेशचन्द्रजी	१७९७
बटवारा (कहानी)	विश्वेश्वर नारायण	१८१४
पायोरिया	नन्दकिशोर शर्मा	१८२३
आम की उपयोगिता	महावीर प्रसाद प्रेमी	१८२७
साधना (कहानी)	मुरलीधर 'पथिक'	१८३४
भरत मुनि का नाट्य शास्त्र	श्रीपाद शास्त्री	१८४१
केले के विविध उपयोग	श्रीमती सुमित्रादेवी अग्रवाल	१८४८
जिओ तो कुछ होकर जिओ	बंशराज तिवारी	१८५३
मदनमोहन मालवीय	मदनलाल 'मदन'	१८६२
जाना नेहरू पार्कमें (व्यंगविनोद)	अरुणकुमार	१८६८
कहानीकार राजाजी	के. एन. भट	१८७३
स्वानुभव	श्रीमती मुक्तावली के. चेट्टियार	१८८१
स्वातंत्र्य संग्राममें भारतीय नारी	पिताम्बरराव तैलंग	१८८६
ज्योतिर्मय पर्व दीपमालिका	जयमूर्ति सिंह	१९०५
दीपमालिका का स्वरूप	विश्वंभरदत्त नौटियाल	१९१२
व्यसनों से मुक्ति	योगीराज उमेशचन्द्रजी	१९२०
प्रश्नोत्तर	सम्पादकीय कलम से	१९३०

* मुखपृष्ठ का परिचय *

मानवमात्र के तीसरे नेत्र सद्विद्या की प्रदात्री मां सरस्वती वीणा हाथ में ले विश्व के अज्ञानांधकार को दूर करने में उद्यत है।

सम्पादक श्री योगीराज उमेशचन्द्रजी ने निराला मुद्रक १४० आर्थर रोड बम्बई ११ में मुद्रित कर, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के लिये विन्सेन्ट स्क्वेर स्ट्रीट २ बम्बईनं.१४ से प्रकाशित किया।

जनता जनार्दन का

सद्भावनाहस्त

श्री रामतीर्थ योगाश्रम विगत २८ वर्षों से जनता जनार्दनके तन-मन विकासार्थ योगाभ्यास, वेदांत, योगिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा, प्रत्यक्ष साप्ताहिक व्याख्यान, तथा सत्साहित्य से युक्त मासिक पत्र आदि द्वारा जिस जी तोड़ प्रयत्न में लगा है, उसी सेवा से प्रभावित होकर उसके सेवा पूर्ण हाथों को अधिक शक्तिशाली बनाने हेतु जिन विशाल और पवित्र भावनाशील परोपकारी दानवीर सज्जनों की ओर से यथा शक्ति धनराशि आने लगी है उनके नाम रामतीर्थ मासिक में प्रकाशित किये जायेंगे तथा उन्हें तत्संबंधी मासिक की प्रति भेजी जावेगी।

सबसे महत्पूर्ण दान 'ज्ञानदान' है उसका पुण्य भी अल्पावधि में अवश्य प्राप्त होता है। अतः आप भी ज्ञानदान के भागी बनकर अपने भविष्य को उज्वल बनाइये।

सितम्बर मास में प्राप्त सद्भावना राशि

१-श्री नरेन्द्रमूलजी व दुलेराय मूलजी, बम्बई १५) रु.
२-श्री अर्जुनदास मूलजी मल, रायबरेली -२५) रु.
३-श्री मंगलचन्द श्रीचन्द जैन, इन्दौर -२५) रु.
४-श्री. ज्योतिमति विश्वेश्वर जोशी भद्रावती-११)रु.
५-श्रीमती पुष्पा पाटील, जूनी इन्दौर -३) रु.
६-श्री कु. अनुराधा जयदेव सान्याल कलकत्ता.-११)रु.

सद्भावना राशि निम्न पते पर भेजें:—

श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर, बम्बई १४.

ग्राहकोंसे

१. 'रामतीर्थ' अंग्रेजी मासकी पहली तारीख को प्रकाशित होकर ग्राहको को डाक से भेजा जाता है।

२. वार्षिक शुल्क रु. ५ विदेशों के लिए १५ शिलिंग अथवा रु. ७॥ है।

३. रामतीर्थ का नया वर्ष अप्रैल से शुरू होकर मार्च में पूरा होता है।

४. ग्राहकों को अंक विशेष देखभाल से भेजा जाता है तिस पर भी यदि किसी को १५ तारीख तक अंक न मिले तो अपने डाक घर से पूछिए वहाँ से जो उत्तर मिले उसे हमारे पास भेज दीजिए ताकि उस पर गौर किया जावे।

५. पताबदलने के लिए कमसे कम १५ दिन पूर्व सूचना साफ साफ अक्षरों में लिखे पतेके साथ मिलनी चाहिए। वह भी अधिक समय के लिए पता बदलना हो तभी हमें लिखें।

६. ६५ न० पैं० मिलने पर ही नमूना अंक भेजा जाता है परदेशवालों को एक शिलिंग भेजना चाहिए।

७. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपना पता तथा ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

८. वार्षिक शुल्क मनीआर्डर से भेजना लाभदायक है क्योंकि वी० पी० से एक तो रजिस्ट्री खर्च लगकर ६ रु० पड़ेगा दूसरे देरी से अंक मिलेगा तथा विदेश में वी० पी० तो होती ही नहीं।

९. रामतीर्थ के साथ पुस्तकें आदि नहीं भेजी जातीं।

१०. व्यवस्था सम्बन्धी समस्त पत्र व्यवहार निम्न पतेपर करें।

व्यवस्थापक

रामतीर्थ मासिक, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, दादर, बम्बई, १४

लेखकों से

Ram Kumar

'रामतीर्थ' मासिक में स्वीकार करने योग्य मुख्य विषय—

शारीरिक रोग निवारण, सशक्त एवम् सदानिरोगी मानसिक रोग दूर करके मन की शांति, एवम् आत्म साक्षात्कार करने योग्य, उपरोक्त लाभ प्राप्त करा देने योग्य अष्टांग योग, (यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान, समाधी, राजयोग, भक्ति योग, लय योग, मंत्रयोग, शिवस्वरोदय, वेद, उपनिषद, गीता, रामायण, महाभारत, महात्माओं का जीवन चरित्र एवम् उपदेश, प्राकृतिक चिकित्सा, (आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी द्वारा इलाज) महिलाओं के जीवन सुधार के लिये, बालकों के संस्कार सुधारने के लिये, अनुरूप लेख, कहानी, धारावाहिक उपन्यास, गीत, कविता, निबंध, प्रवास वर्णन, नाटक, धर्मकथादि रचनायें स्वीकारकी जाती हैं कागजकी एक ओर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखी हुई रचनायें भेजनी चाहिये, अश्लील विषयोंकी रचनायें स्वीकार नहीं जायेंगी।

विशेषः—अन्यत्र प्रकाशित रचनायें रामतीर्थ मासिक के लिये न भेजें, स्वीकृत एवम् अस्वीकृत रचनाओं की सूचना पन्द्रह दिन के बाद दी जाती है, रचना को वापस मंगाने वाले लेखकों को पोस्टल टिकिट साथ में अवश्य भेजना चाहिए, स्वीकृत रचनायें समयानुकूल छपेंगी, लेखकों को चाहिये कि वे इस विषय में वारंवार पत्र लिखने का कष्ट न लें, रचना प्रकाशित होने के बाद, रचना जिसमें छपी होगी वह मासिक अंक, और आश्रम की ओर से निर्धारित किया गया पुरष्कार भेजा जायेगा, रचना में लिया गया कोई द्रष्टांत हो तो वह किस ग्रन्थ के आधार से लिया गया है यह अवश्य लिखें। अन्य पत्र पत्रिकाओंमें रामतीर्थ मासिककी रचना अन्य भाषाओं में अनुवादित की इच्छावालोंको रामतीर्थ मासिकके संपादकसे लिखित अनुमति लेना आवश्यक है। रचना भेजनेका पताः संपादक 'रामतीर्थ' रामतीर्थ योगाश्रम दादर बम्बई १४,

Hem Kumar

भद्रंकर्णेभिः श्रणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षिभियजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितंयदायुः ।।



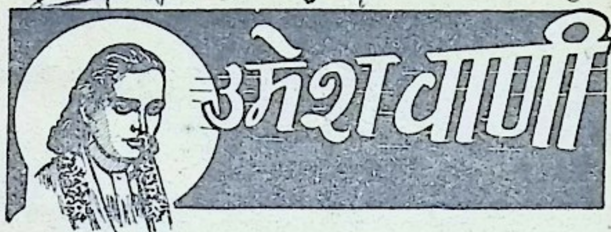
सम्पादक - **रामतीर्थ** योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

वर्ष ३] अक्टूबर १९६२ [संख्या ७

वैदिक-प्रार्थना

स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्त वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत् ।।
ऋ. वे. आ. ज्ञा. सू. १-१६४-१६

भावार्थ—वस्तुतः एक ही परमेश्वर सर्जन और पालन की भिन्न २ क्रियाएँ करता रहता है। वह प्रकृति स्त्री के रूप में माता बनकर जगत् के समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति करता है, पुरुष-पालन के रूप में पिता बनकर पालन करता है। इस तथ्य को न समझनेवाला शास्त्र की दृष्टि से अन्ध है और वस्तुतः समझनेवाला ही द्रष्टा है। भले ही वह क्रान्तद्रष्टा कवि-जन व्यवहार की दृष्टि में छोटा हो परन्तु उसके प्रकृति-पुरुष के तत्व को समझने से ज्ञानी जनों में विशिष्ट ज्ञानी बनकर अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।



(१५२) स्थल (पृथ्वी) से तीन गुणा अधिक जल है, जल से कई गुणा अधिक अग्नि, अग्नि से अनेक गुणा अधिक वायु, वायु से अनेक गुणा अधिक आकाश, आकाश से अनेक गुणा अधिक महत्तत्व, महत्तत्वसे अनेक गुणा अधिक अहंकार, अहं·

कारसे अनेक गुणा अधिक प्रकृति,प्रकृतिसे अनेक गुणा अधिक परमात्मा है। परमात्मा को अनन्त शक्तिवान्, आनन्द सागर, दिव्य-दर्शन और सर्वद्रष्टा कहा गया है, यह बात उपर्युक्त विधान से स्पष्ट सिद्ध होती है। अधिक वृष्टि से जल-प्रलय का भयानक दृश्य उपस्थित हो जाता है, अधिक अग्नि ज्वाला मुखी का रूप धारण कर सर्वत्र हाहाकार मचा देती है, वायु का अत्यधिक वेगवान् रूप तूफ़ान बनकर वृक्ष-लतादि और अन्य विनाश करता है। पृथ्वी के रुष्ट होने पर धरतीकम्प की भीषणता उपस्थित होकर मानव सहित समग्र प्राणि-समूह और वनस्पति-वृक्षादि भूगर्भ में समा जाते हैं और जन-धन की अपार हानि होती है। बिहार, कच्छ, क्वेटा और हालके ईरान के भूचाल इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इन सब प्राकृतिक आघात-प्रत्याघातों से सुरक्षित रखने के लिये परम प्रभु का आश्रय लेना आवश्यक है। परम पिता परमात्मा के सम्बन्ध में योग, वेदान्त, भक्ति द्वारा नितान्त निष्कपट भाव से अभ्यास कर सम्पूर्ण सत्-चित्-आनन्द स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेना अत्यावश्यक है।

(१५४) योगविद्या के सम्बन्ध में कोई सन्देह हो तो निम्नलिखित पुस्तकों का अध्ययन अवश्य कर देखें:—पातंजलि योगदर्शन (साधनपाद, समाधिपाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद) घेरण्ड-संहिता, शिव-संहिता, उमेश योगदर्शन (प्रथम खण्ड) आदि। इनके अध्ययन योग-सम्बन्धी सन्दिग्ध विचार दूर हो जायेंगे और योग के प्रति अमिट श्रद्धा का आविर्भाव होगा।

(१५५) आधि-व्याधि-उपाधि का कारण मन है। संयोगवश पहले मन में सूक्ष्म विचार का प्रादुर्भाव होता है, तदुपरान्त यही सूक्ष्म विचार दृढ़ विचार में रूपान्तरित होकर कार्य (स्थूल) रूप धारण कर लेता है। यदि यह विचार ऊँचे और अनुकूल होते हैं तो आधि-व्याधि-उपाधि के स्थान पर धन-सम्पत्ति, सुयश, सत्ता, शक्ति-सामर्थ्य का अखण्ड प्रवाह आयु-वृद्धि, आध्यात्मिक जीवन के प्रति प्रेम और उसमें पारंगति-प्राप्ति जीवन की सभी परमाकांक्षाओं की पूर्ति होती है। जीवन उर्ध्वगामी बनता है। किन्तु यदि मन में प्रतिकूल विचारों का प्रवेश होता है तो अनेक प्रकार की आधि-व्याधियां और उपाधियां बढ़कर जीवन नरक तुल्य बन जाता है, इसलिये सर्वप्रथम मानसिक विचारों को अत्यन्त गम्भीरता के साथ सुनियन्त्रित बनाना होगा, क्योंकि विचार ही मानव जीवन को बनाते बिगाड़ते हैं, सुकृति या दुष्कृति की ओर ले जाते हैं। इसलिये विचारों पर सावधानी से शासन करना होगा। यदि मन और तज्जन्य विचार पवित्र, श्रद्धापूर्ण हैं, मन परिश्रम से घबराता नहीं, बल्कि उत्साह के साथ लग जाता है, प्रसंगोपात अन्य लोगों के साथ मिल-जुलकर रहने और परिस्थितियों के अनुकूल अपने आपको फिट कर लेनेकी क्षमता है, यदि शुभकार्य में कष्टों का अनुभव हो तो भी सहिष्णुतापूर्वक अभीष्ट-सिद्धि पर्यन्त दृढ़तापूर्वक कार्य-तत्पर रहा जाये तो आधि-व्याधि उपाधियां स्वतः तिरोभूत हो जायेंगी और जीवन निखर उठेगा यही जीवन की कसौटी है।

(१५६) हिन्दी-भाषा की रक्षा करना प्रत्येक भारतीय का

परम कर्तव्य है। भारत में जन्म लेकर भी जिसने हिन्दी भाषा का ज्ञान प्राप्त नहीं, जिसके हृदय में हिन्दी के प्रति ममत्व का का भाव नहीं, उसे हिन्द (भारत) का सपूत कहलाने का अधिकार नहीं। किसी भी भारतवासी की मातृभाषा कोई भी क्यों न हो, किन्तु जब तक उसने हिन्दी के प्रति अपना परम हार्दिक आदर भाव प्रकट करते हुये उसकी दिव्यज्ञान-धारा में अवगाहन नहीं किया, तबतक वह अपनी मातृभाषा के महत्व को भी हृदयंगम नहीं कर सकता। एक प्रान्त में जाकर अपनी मातृभाषा के माध्यम से वहां के स्थानीय निवासी अपने हृद्गत भाव-विचार नहीं समझा सकता-वहां का जीवन व्यवहार नहीं संभाल सकता, अत: वह वहां के स्थानीय निवासियों के आत्मिक प्रेम का सम्पादन करने में समर्थ न होगा। सब ओर से दूर ही रहेंगे। प्रत्येक भारतवासी (हिन्दू सिख, मुसलमान, क्रिश्चियन. अंग्रेज, अमेरिकन, रूसी, यहूदी, पारसी, जापानी, जर्मन आदि) हिन्दी का पारंगत पण्डित भले न हो, परन्तु जीवन-व्यवहार का संचालन करने के लिये आवश्यक हिंदी-ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिये। हिंदी भाषा अत्यन्त सरल एवं सुगम है। यह सभी प्रान्तीय भाषाओं के अत्यन्त निकट है। संस्कृत भारतव्यापी भाषा है और हिन्दी संस्कृत की पुत्री है, इसमें संस्कृत के सरल और नित्य व्यवहार के शब्दों की प्रचुरता है, इसलिये यह सभी प्रान्तों के अधिवासियों के लिये सरलता से ग्राह्य है। अतः प्रत्येक भारतीय को हिन्दी का अभीष्ट ज्ञान अर्जितकर उसका प्रचार प्रसार भी करना चाहिये। हिन्दी भारत की राष्ट्रीय एकता की प्रतीक है।



रात्रि के साढ़े ग्यारह बज रहे हैं। अम्बर में झिलमिलाते असंख्य तारों के बीच चन्द्रमा भी अपना सौन्दर्य प्रदर्शित कर रहा है। चारों तरफ भयंकर एवं विचित्र निस्तब्धता छाई हुई है। वायु के शीतल झोंके खिड़कियों की राह से अन्दर प्रवेश कर रहे हैं और अन्धकार को चीरती हुई बोरीवली की लोकल ट्रेन आगे बढ़ती चली जा रही है। चर्नीरोड स्टेशन पर टिकट निरीक्षक एक डिब्बे में चढ़ता है। उस डिब्बे में आठ-दस व्यक्ति जागते और उँघते बैठे हुये हैं।

'टिकट प्लीज'——

की आवाज डिब्बे में गूँज उठी। यात्री अपने पास एवं टिकट निकालने लगे। टिकट निरीक्षक क्रमशः टिकट एवं पास देखता हुआ आगे बढ़ता रहा। अन्त में कुछ ही समय पश्चात् वह पिछली बेंच की तरफ बढ़ा, जहां दो मुसाफिर खिड़की के समीप, वायु के मादक थपेड़ों से प्रभावित हो

उँघते हुये दिन भर के कठोर परिश्रम के पश्चात् विश्राम ले रहे थे।

'कृपया अपना टिकट दिखाइये'—एक को सम्बोधित करते हुये कहा उसने। उसकी आवाज से उँघता हुआ अधेड़ व्यक्ति हड़बड़ा कर उठ पड़ा।

'टिकट'-उसके कुछ कहने से पूर्व उसने पुनः कहा।

'टिकट मेरे पास नहीं है'—उस व्यक्ति ने डरते-डरते कहा।

'गाड़ी क्या तुम्हारे बाप की थी जो बिना टिकट बैठे हो, निकालो पैसे'—आंखें लाल करते हुये कहा उसने।

'पैसे भी नहीं हैं मेरे पास'—उसने उत्तर दिया।

देखा टिकट निरीक्षक ने उसकी ओर—लम्बी तथा असंयत दाढ़ी एवं केश, बदन पर एक धोती और कमीज गंदी तथा जगह-जगह खरोंचे लगी, नंगे पैर, चेहरे पर परेशानी एवं मजबूरी की लकीरें।

'अगर पैसे नहीं थे तुम्हारे पास तो फिर क्यों बैठे ट्रेन में बाबा। बिना टिकट ट्रेन में चलना जुर्म है और इसके बदले में तुम्हें लॉक-अप तक ले जाया जा सकता है'-टिकट चेकर कुछ नम्र स्वर में बोला—'बेहतर है कि अगले स्टेशन पर तुम उतर जाओ।'

अपनी तरफ टि. नि. को मुड़ता देख दूसरे व्यक्ति ने अपना पास दिखा दिया, जो कि कुछ समय पूर्व जग गया था उन दोनों की बातें सुनकर। वह भी वहीं बैठ गया।

Drum Kumar

'बाबू, मुझ गरीब पर रहम करो, मुझे आज रात तक बोरीवली पहुँच जाना चाहिये क्योंकि कल सुबह एक सेठ ने मुझे नौकरी देने के लिये बुलाया है'—उसके पैर पकड़ कर अधेड़ व्यक्ति ने कहा--'यदि पैसे होते तो अवश्य टिकट ले लेता लेकिन खुद ही तीन रोज से भूखा हूँ।'

'यह गाड़ी मेरे बाप की नहीं है जनाब'...अपने पैर छुड़ाकर क्रीजदार पैंट पर लग गई गर्द को झाड़ते हुये, वह बोला गुस्से से—'कानून की निगाह में रहम नाम की कोई चिड़िया नहीं है इसलिए आप सीधे सीधे उतर जाइये और मजबूर न कीजिये की कोई कड़ा रुख अपनाया जाय आपके साथ।'

टिकट निरीक्षक की बातों का उस पर कोई असर हुआ और वह उसके पैरों को पकड़कर गिड़गिड़ाने लगा। टिकट निरीक्षक उसके असभ्य व्यवहार से क्रोधित हो उठा और तड़ाक्--फड़ाक् दो तमाचे मारते हुये एक धक्का देकर, अलग कर लिया उससे अपने को।

'इंडियन जंगली'—बड़बड़ा उठा वह।

टिकट निरीक्षक का धक्का खाकर वह व्यक्ति जो लड़खड़ाया तो फर्स पर जा गिरा, उसके कंधे और घुटने छिल उठे और रक्त उनमें से निकल पड़ा।

'दियासलाई की लौ से पत्थर नहीं पिघलते हैं भाई, उसे पिघलाने के लिये चांदी का जूता चाहिये। वही चांदी का जूता, जिसके बल पर समाज के रईस ठेकेदार, जलील एवं

घृणित होने पर भी सीना उभार कर चलते हैं'—दूसरे मुसाफिर ने, जो कि उसके समीप ही बैठा था, उसे उठाकर, जेब से एक पांच रुपये का नोट निकालकर टिकट निरीक्षक को देते हुये कहा 'लीजिये, बोरीवली का टिकट बनाकर अपने कानून का हक अदा कीजिये।'

'समझने की कोशिश करो मेरे भाई। जिस काम के हमें पैसे मिलते हैं हम वही तो करते हैं'—दूसरे मुसाफिर के व्यंग से तिलमिलाकर उसे समझाने की कोशिश करते हुए उसने टिकट की रसीद तथा बाकी पैसे लौटाते हुए कहा--'फिर इसी तरह गुनाहगार को छोड़ देना उसे बढ़ावा ही देना होगा।'

'कर्तव्य से आप चोरी नहीं करना चाहते बहुत अच्छी बात है, लेकिन इन्सानियत भी तो कोई वस्तु है भाई साहब'—दूसरे मुसाफिर ने कुछ नम्र होते हुये कहा—'भिखारी को कुछ आर्थिक मदद कर देना बुरी चीज नहीं है, लेकिन वहीं उन असहाय एवं लाचार व्यक्तियों की मदद तो दूर, कोई फूटी आंख भी उन्हें देखना पसन्द नहीं करता। बड़े लोगों ने कहा है कि झूठ बोलना पाप नहीं है। यदि उसे आप छोड़ देते तो क्या बिगड़ जाता आपका?'

'आप भी कहां पागलों के पीछे हाथ धोकर पड़ गये'—मुस्कराते हुये बोला वह।

उसी समय ट्रेन रुक गई और टिकट निरीक्षक उतर गया ग्रांटरोड के स्टेशन पर।

सोचा उसने—'पागल' !

दिल और दिमाग में जख्मों की दर्द भरी 'आह' लिये, ज़माने की गर्दिश में इज्जतदारों द्वारा उपलब्ध तिरस्कारों को निगलने वाला इन्सान ही तो कहलाता है—'पागल' ! दुनियाँ के इन्सानों की तरह होते हुये भी उनसे अलग—क्या मजाक है विधाता का ! !

देखा उसने उस लाचार की तरफ जिसके नेत्रों में कायरता के चिन्ह मौजूद थे। आभास हुआ उसे कि इस गरीब के सीने में जख्मों के सिवाय और कुछ भी नहीं है। लालायित हो उठा उस गरीब के बारे में कुछ जानने के लिये।

अपनी तरफ आकर्षित पाकर वह हाथ जोड़ कर बोला-'भगवान् तुम्हें सदैव खुश रखे भाई, यदि आज तुम न होते तो वह मुझे जरूर लॉक-आप तक ले जाता।'

'क्षण भर में काया-पलट कर सकता है जो भगवान्, उसी की यह सब कृपा है'—उसने बातों के रुख को इस तरह मोड़ देते हुये कहा कि उसके जख्मों का दर्द उभर जाय और अपनी जिंदगी के दर्द भरे अनमोल अनुभव वह कह सुनाए—'बदलते वक्त के साथ-साथ बुलंद इमारत भी जमाने की चोटों से पिघलती तथा आंसू बहाती वीरान खँडहर में परिवर्तित हो जाती है, उसी तरह इन्सान भी अपने सीने में जख्मों के उभरते दर्द को छिपाये, मुँह से सिर्फ 'आह' निकालते जिंदगी के अनेकों मोड़पर ठोकरें खाता, घुटन महसूस करता रहता है, और बाद में एक दिन आ जाता है जब कि दुनियां

के लोग उसे 'आवारा' तथा पागल इत्यादि नामों से संबोधित करते हैं। जैसे कि उसने अभी आपको कहा था।'

'ठीक कहते हो मेरे भाई, जिंदगी के चौराहे पर इन्सान संभलता और गिरता, कभी २ कुछ ऐसी ठोकरें खा जाता है, जिनके निशान उसके दिलो-दिमाग पर इस तरह अंकित हो जाते हैं कि जब भी उन पर नजर पड़ती है दिल कराह उठता है और मस्तिष्क परेशान हो जाता है'--उसने कहा--दूसरों के बारे में क्या कहूँ, मेरे ही अतीत के चित्र जब घूमते हैं विचारों में, तब जो बेचैनी महसूस होती है कि दिल ही जानता है।'

'आपकी बातों से मेरी अभिलाषा और बढ़ गई है तथा आपके उन संघर्षों को, जो आपकी जिंदगी में गुजर चुके हैं तथा जिन्होंने आपको इस अवस्था तक पहुंचा दिया है, आशा करता हूँ कि मुझे भी बतलाने की कृपा करेंगे' दूसरे मुसाफिर ने चापलूसी करते हुये कहा----'और मैं समझता हूँ कि आपको कुछ कष्ट होने के कारण और आराम ही उपलब्ध होगा क्योंकि अपना गम दूसरों को बतलाने से दिल हल्का ही होता है।'

'नवयुवक! तुम पहले व्यक्ति हो जिसने गम के बारे में कुछ जानने की कोशिश की है, बहुत दिन और रातें बीत चुकी हैं मुझे उपेक्षित होते हुये'—कुछ देर विचार करने के पश्चात् वह बोला—'जहां, जहां मैं गया अपमानित ही होकर

वापस लौटता रहा, इसलिये तुम्हें निराश नहीं करूंगा क्योंकि कुछ सहारा मिला है तो तुम्हीं से। मैं तुम्हें अपनी कहानी सुनाऊँगा।'

थोड़ी देर के बाद ही उसने कहना शुरू किया—

'आज से लगभग चालीस-पैंतालीस वर्ष पूर्व की बात है। मेरे पिताजी बहुत गरीब थे और गांव में पत्रवाहक का कार्य करते थे। एक बार अपनी मां से सुना था मैंने कि मेरे दादा बहुत संपत्ति वाले और बहुत ही अच्छे स्वभाव के थे। कुछ दिनों बाद न जाने उन्हें कहां से जुए की लत पड़ गई और इस लत ने ही पूरे परिवार पर तबाही छा दी। संपत्ति निकल जाने पर दादा जी को होश आया, लेकिन अब हो क्या सकता था। उन्होंने पश्चाताप या भावावेश में आकर कुयें में कूद कर आत्महत्या कर ली।

बहुत दिनों तक अपने कंधों पर पूरे परिवार का बोझ लादे पिताजी जी जान से मेहनत करते रहे। किसी वस्तु को नष्ट करने में चन्द मिनट लगते हैं परंतु उसीका पुनः निर्माण करने में घंटों बीत जाते हैं---यही हाल हम लोगों के घर का था। एक दो बीघे खेत में, जो कि हम लोगों के पास था माता जी पड़ोसी की सहायता से कुछ बो दिया करती थी और इस प्रकार प्राप्त अनाज तथा पिताजी की नौकरी के वेतन द्वारा ही हम लोगों की गुजर बसर होती थी। कुछ दिनों बाद मेरी दादी का भी देहान्त हो गया।

के लोग उसे 'आवारा' तथा पागल इत्यादि नामों से संबोधित करते हैं। जैसे कि उसने अभी आपको कहा था।'

'ठीक कहते हो मेरे भाई, जिंदगी के चौराहे पर इन्सान संभलता और गिरता, कभी २ कुछ ऐसी ठोकरें खा जाता है, जिनके निशान उसके दिलो-दिमाग पर इस तरह अंकित हो जाते हैं कि जब भी उन पर नजर पड़ती है दिल कराह उठता है और मस्तिष्क परेशान हो जाता है'—उसने कहा--दूसरों के बारे में क्या कहूँ, मेरे ही अतीत के चित्र जब घूमते हैं विचारों में, तब जो बेचैनी महसूस होती है कि दिल ही जानता है।'

'आपकी बातों से मेरी अभिलाषा और बढ़ गई है तथा आपके उन संघर्षों को, जो आपकी जिंदगी में गुजर चुके हैं तथा जिन्होंने आपको इस अवस्था तक पहुंचा दिया है, आशा करता हूँ कि मुझे भी बतलाने की कृपा करेंगे' दूसरे मुसाफिर ने चापलूसी करते हुये कहा---'और मैं समझता हूँ कि आपको कुछ कष्ट होने के कारण और आराम ही उपलब्ध होगा क्योंकि अपना गम दूसरों को बतलाने से दिल हल्का ही होता है।'

'नवयुवक ! तुम पहले व्यक्ति हो जिसने गम के बारे में कुछ जानने की कोशिश की है, बहुत दिन और रातें बीत चुकी हैं मुझे उपेक्षित होते हुये'—कुछ देर विचार करने के पश्चात् वह बोला—'जहां, जहां मैं गया अपमानित ही होकर

वापस लौटता रहा, इसलिये तुम्हें निराश नहीं करूंगा क्योंकि कुछ सहारा मिला है तो तुम्हीं से। मैं तुम्हें अपनी कहानी सुनाऊँगा।'

थोड़ी देर के बाद ही उसने कहना शुरू किया—

'आज से लगभग चालीस-पैंतालीस वर्ष पूर्व की बात है। मेरे पिताजी बहुत गरीब थे और गांव में पत्रवाहक का कार्य करते थे। एक बार अपनी मां से सुना था मैंने कि मेरे दादा बहुत संपत्ति वाले और बहुत ही अच्छे स्वभाव के थे। कुछ दिनों बाद न जाने उन्हें कहां से जुए की लत पड़ गई और इस लत ने ही पूरे परिवार पर तबाही छा दी। संपत्ति निकल जाने पर दादा जी को होश आया, लेकिन अब हो क्या सकता था। उन्होंने पश्चाताप या भावावेश में आकर कुयें में कूद कर आत्महत्या कर ली।

बहुत दिनों तक अपने कंधों पर पूरे परिवार का बोझ लादे पिताजी जी जान से मेहनत करते रहे। किसी वस्तु को नष्ट करने में चन्द मिनट लगते हैं परंतु उसीका पुनः निर्माण करने में घंटों बीत जाते हैं---यही हाल हम लोगों के घर का था। एक दो बीघे खेत में, जो कि हम लोगों के पास था माता जी पड़ोसी की सहायता से कुछ बो दिया करती थी और इस प्रकार प्राप्त अनाज तथा पिताजी की नौकरी के वेतन द्वारा ही हम लोगों की गुजर बसर होती थी। कुछ दिनों बाद मेरी दादी का भी देहान्त हो गया।

समय बीतता रहा और हम लोग दुःख-सुख के सागर में समझते और लड़खड़ाते रहे। हम लोगों की जिंदगी बहुत ही कष्टमय तथा विपत्तिपूर्ण रास्तों के मोड़ से तो वैसे ही गुजर रही थी कि एक भयंकर आपत्तिमय तूफान ने उठकर हम लोगों का रहा-सहा धैर्य भी हमसे छीन लिया। बात ऐसी हुई कि-पिता जी पत्र के साथ-साथ बीमा या मनिआर्डर की रकम भी पोस्ट आफिस से संबंधित गांवों में बांटा करते थे। एक दिन दोपहर में जबकि पिताजी पोस्ट आफिस से रुपये लेकर जा रहे थे; कुछ गांव के बदमाशों ने उनका पीछा किया और नदी के किनारे एकांत पाकर तीन-चार लाठी मारकर पिताजी से रुपये छीन नौ-दो-ग्यारह हो गये। वहां से पिताजी सीधे पोस्ट मास्टर के पास गये-जो कि उनका मित्र था-और सब बातें साफ-साफ कह डाली। पोस्टमास्टर ने पिताजी को शान्त्वना दी तथा थाने में रिपोर्ट कर दी। कुछ दिनों की कार्यवाही के पश्चात् मुजरिम पकड़े गये और पिताजी बेदाग छूट गये।

परन्तु, बकरी की मां कब तक कुशल मनाती, पिताजी के दुश्मनों ने छूटते ही उन्हें दूसरे मामले में उलझा दिया जिससे नौकरी तो गई ही साथ ही साथ बहुत अपमानित भी होना पड़ा और उसी रात को न जाने कब किसी को कुछ बताये बिना पिताजी घर छोड़कर भाग गये।

सुबह होते-होते हम लोगों का बुरा हाल होगया। सबने हमें बहुत समझाया तथा आपत्ति के दिनों को हँसते-हँसते

Prem Kumar

झेल जाने का सबक सिखाया। मेरी मां ने मुझे स्कूल में दाखिल कर दिया, ताकि पढ़ लिखकर मैं बड़ा तथा योग्य व्यक्ति बन जाऊँ। मेरे पिताजी की भी हार्दिक अभिलाषा यही थी कि पढ़-लिखकर खूब यश एकत्र करूं। पिताजी की अनुपस्थिति में अपने पति की अन्तिम इच्छा को मां ने पूरा कर दिखाने के लिये कमर कस ली। गांव के कुछ धनी व्यक्तियों के यहां बर्तन तथा कपड़े साफ करने का काम मां करने लगी। सुबह-शाम मैं भी मां के साथ-साथ जाता और उनकी कुछ न कुछ मदद दिया करता था और अपने खेतों की देखभाल भी मैं ही करता था।

समय गुजरता रहा तथा निशा का भयंकर एवं निस्तब्ध अंधकार दिवस के सुवर्ण व धवल प्रकाश में प्रतिदिन परिणित होता रहा और मैं अत्यधिक लगन के साथ विद्योपार्जन करता रहा। ईश्वर की कृपा तथा ममतामयी मां की अभीष्ट साधना, मेरा अंधकार मय मार्ग आलोकित करती रही। एक कवि ने ठीक ही कहा है—

'लग जाय इन्सान लगन से यदि काम पर,
तारों को बिछा ले अपनी जमीन पर।
वीरानियों को भगा पुष्प बरसाये,
हौसलों को अपने साकार बनाये॥

मैं भी अपनी साधना जी तोड़ परिश्रम के साथ करता रहा अब परमेश्वर मेरा साथ देता रहा। और वह दिन दूर

नहीं रहा जब कि सफलता ने मेरे कदम चूमना आरंभ कर दिया। मेरी साधना, मां का परिश्रम तथा पिता जी की अभिलाषा पूर्ण हो गई। मैं एम. ए. एल. एल. बी. में प्रथम श्रेणी में बहुत ही अच्छे नम्बरों से सफल होकर वकील बन गया था। गांव के लोग अब मुझको सम्मान की दृष्टि से देखने लगे और पहले जैसा उनका व्यवहार भी न रहा।

उन्हीं दिनों की बात है कुछ ठंडक अधिक पड़ रही थी उस दिन और कौड़ा (आग जलाना) जला कर हम लोग बैठे बातें कर रहे थे, कि एक व्यक्ति घास से अपने बदन को ढके हुये आया। जिसे देख कर माता जी तुरंत उठ कर उसके पैरों पर झुक गईं और मुझे बुलाकर कहा—'आनंद बेटा, देखो तुम्हारे पिता जी आये हैं।' पैर छूने के लिये जैसे मैं झुका, पिताजी ने मुझे अपने गले से लगा लिया। बहुत देर तक पिताजी मुझे छाती से लगाये मेरी पीठ सहलाते रहे अपने हाथों से। बोल कोई नहीं रहा था। अत्यधिक खुशी के कारण हम लोगों के नेत्र सजल हो गये थे और लग रहा था जैसे आंखों ही आंखों से बातें हो रही थी। पिताजी ने सबका सकुशल पूछा।

भोजन के पश्चात् हम लोग पुनः पिताजी सहित हाथ-पैर सेकने के लिये कौड़े के पास आये। गांव के चौधरी-दीन दयाल ने पिताजी के बारे में पूछा तो पिताजी मुस्कराते हुए बोले—

'बहुत लम्बी कथा है चौधरी-कभी फिर सुनना। कौतूहल मिटाने के लिये इतना जान लो कि अपमानित होकर मैं मरने की धारणा ले कर रात्रि के समय गांव से अपने बच्चे का मुंह देख कर निकल पड़ा था, लेकिन जब मरने के लिये गंगा मैया के किनारे पहुंचा तो प्राणों के मोह ने आत्महत्या करने का विचार बदल दिया। वहां से मैं लौट पड़ा, रास्ते में कुछ मुनियों का साथ हो गया और मैं उन्हीं के साथ रहने लगा। प्रतिदिन बुद्धिमान व्यक्तियों और ज्ञानी-मुनियों के प्रवचन तथा सत्संग से विचार बदलते चले गये और मन नश्वर दुनिया से हट कर प्रभु की ओर बढ़ने लगा।

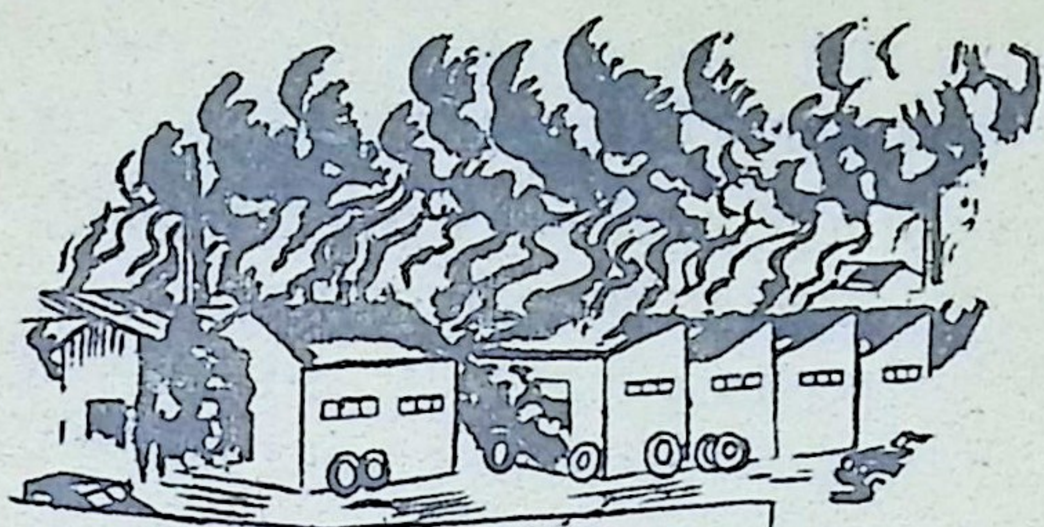
बदलते समय के साथ-साथ विरक्ति बढ़ती चली गई और मैं भगवान् भजन में लीन होता गया। दिन बीतते गये और मेरा क्रम चलता रहा। घर की तरफ से निराश हो चुका था मैं, समझता था कि रोटियों के लिये मेरे बच्चे तरस-तरस कर समाप्त हो चुके होंगे और मेरे घर की दीवारें गिर कर वीरान खंडहर में बदल गई होगीं। कभी-कभी हृदय के कोने से एक मूक अभिलाषा उठती थी कि एक बार-सिर्फ एक बार चल कर अपनी उजड़ी दुनिया के विरान खण्डहरों को अपने तृषित नेत्रों से देख लूं—लेकिन उस अभिलाषा का, मन को दूसरी ओर लगाकर, मैं दमन कर देता था।

वर्षों के निरंतर संघर्ष से जिन्दगी आगे बढ़ती चली जा रही थी। एक दिन समाचार पत्र में अपने गांव का नाम तथा

आनन्द के चित्र को देख कर—वर्षों की साधना मुझे रोक न सकी, मैं चल पड़ा और आज तुम लोगों के बीच पहुंच ही गया। कितनी विचित्र लीला है भगवान् की।'

दिन बीतते रहे, मेरी शादी पिता जी ने अपनी पसन्द से कर दी। मैं वकालत तो कर ही रहा था इसलिये अब कोई दुःख नहीं था। आनन्द के सभी साधन उपलब्ध थे। किसी बात की कमी नहीं थी। लेकिन न जाने क्यों मेरी पत्नी मुझे अपना प्यार न दे सकी। मेरेको देखते ही उसका चेहरा मुरझा जाता था। बेजान लाश की तरह। बहुत कोशिशों के बाद भी मैं कारण न जान सका। सन् ४८ में मेरे माता-पिता हैजे की बीमारी में चल बसे। माता जी तथा पिता जी का साया हटते ही वह और स्वच्छन्द हो गई। मुहल्लों की औरतों के साथ बैठके तथा गप्पें लगाने लगीं। एक दूसरे की बातें सुन कर वह और निडर हो गई। उसकी नजरों में जो कुछ मेरा सम्मान था, वह भी जाता रहा और मेरा खुल्म-खुल्ला विरोध करने लगी।

और एक दिन तलाक देकर वह मुझको छोड़ कर चली गई किसी और के साथ। इस घटना के बाद हालत कुछ बदली ही थी कि एक आकस्मिक दुर्घटना ने मुझको तबाह कर दिया। अपनी आमदनी में से मैंने पचीस लाख रुपये लगा कर एक सुन्दर रबड़ का कारखाना खोल रखा था। न जाने कैसे उसी कारखाने में आग लग गई थी और पूरा कार-



न जाने कैसे, कारखाने में आग लग गई।

खाना चन्द मिनटों में जल कर राख हो गया। कुछ काम करने वाले भी उसी में जल मरे थे।

नगद माल तथा पिछले माल का काफी हिसाब बाकी था। कारखाने के जल जाने से सबने अदालत की धमकी दे कर अपना-अपना हिसाब चुकता करवाना चाहा। उनका हिसाब चुकाने के लिये मेरे पास रुपये कम पड़ रहे थे, इसलिये मकान भी बेचना पड़ गया। किसी तरह उनका हिसाब निपट गया और मेरा दिवाला निकल गया—हां, कहने को इज्जत बच गई।

ऐसे विपत्ति के समय में सबने मुँह मोड़ लिया मुझको कंगाल समझ कर। उन दिनों मेरे एक दोस्त बाबूलाल ने मुझ पर जो उपकार किये तथा जिस तरह दोस्ती का फर्ज अदा किया, वह प्रशंसनीय है, कि आज तक मैं उसे भूल नहीं पाया। इन्सान के रूप में उस फरिश्ते ने तथा उसकी पत्नी ने मेरी बन्द रगों में पुनः रक्त का संचार किया।

और,—जब मुझको पुनः होश आया, तो उसके अमूल्य

उपकारों के बदले में सिर्फ धन्यवाद देकर, नेत्रों में आंसू लिये, मैं पचास रुपये लेकर चल पड़ा बम्बई की ओर।

बम्बई तो पहुंच गया लेकिन न जाने किसने एक दिन जेब ही काट दी। अन्दर ही अन्दर सिसकता रहा। एक दिन एक एक सेठ से मुलाकात हुई जिसने कल काम देने के लिये कहा था। पास में पैसे नहीं थे इसीलिये कानून का उलंघन करते हुए ट्रेन में आ बैठा—और फिर तुमसे भेंट हुई।

'यही है मेरी जिन्दगी की अजीबोगरीब कहानी नवयुवक' —उसने भीग चले आंखों के कोनों को पोंछते हुए कहा।

'बहुत विचित्र है भगवान् की माया, कितने ही मोड़ पर मोड़ दिया है। आपको, कभी-कभी तो मैं सोचता हूं कि कितना विचित्र होगा वह भगवान् जिसने इस विचित्र सृष्टि का निर्माण किया है।'—नवयुवक ने कहा।

'मैं क्या कहूं उसके बारे में, मैं भी तो तुम्हारी तरह का इन्सान हूं। हां,—यह कह सकता हूं कि वह होगा बहुत ही विचित्र'—उसने बात का उत्तर देते हुए पूछा—

'नाम तो मेरा कपिल कुमार है, लेकिन सब 'कमाल' ही कहते हैं और इसी नाम से जानते हैं। उसने कहा—'यदि आनंद बाबू आपको कोई एतराज न हो तो आप मेरे साथ चलिये, यदि आप कोई कार्य करना चाहेंगे तो आपको काम भी मिल जायगा और एक दोस्त की तरह आप मेरे साथ रह कर अपनी जिन्दगी के विरान खंडहरों की गिरती दीवारों को पुनः अग्रसर करना चाहेंगे, तो उसमें भी आपको मुझ से पूरी

पूरी मदद मिल जायगी। आशा करता हूं कि दोस्ती की तरफ बढ़ा हाथ निराश न करेंगे।'

'कभी नहीं मेरे अनजान मित्र'—आनन्द बोला एक गम्भीरता के साथ।

कुछ समय पश्चात्, सान्ताक्रुज के स्टेशन पर लोकल ट्रेन रुक गई।

और, वे दोनों चलने लगे साथ-साथ!

* * *

सुबह-दूसरे दिन—

होटल के कमरे में आनन्द तथा कमाल बैठे चाय पी रहे हैं-साथ ही साथ बातें भी करते जा रहे हैं।

चाय के समाप्त होने पर कमाल कुछ कागज आनन्द के हाथों में देते हुए बोला—'आनन्द भाई, जो कथा आपने कल सुनाई थी उसको मैंने कागज पर अंकित करने का साहस किया है। हां, एक भूल अवश्य कर बैठा हूं कि आपसे मैंने अनुमति नहीं ली, आशा है बुरा न मानेंगे।

पढ़ने लगे आनंद बाबू अपनी कथा!

पढ़ते-रहे पढ़ते रहे!!

'कमाल' भाई लाजवाब एवं सजीव चित्रण करके तुमने मेरी कहानी को इतना निखार दिया है कि वाकई कमाल कर दिया है।' अन्त में आनन्द के मुंह से निकला।

और कमाल हंस पड़ा खिल-खिलाकर!

—:o:—

बहुरंगी योगासन चित्रपट

पद्मासन, भुजंगासन, चक्रासन, पश्चिमोत्तानासन, शीर्षासन, सिंहासन, वज्रासन, पवनमुक्तासन, सुप्त धनुरासन, एवं पूजन-पाठ, जप-तप, धारणा, ध्यान, मनकी एकाग्रता, रोगोंसे मुक्त रहनेमें समर्थ, सुदृढ़ शरीर, सौंदर्यमय सुगठित देह बनाये रखने के लिये अतीव आवश्यक अनेक आसनोंसे विभूषित योगासन चित्रपट श्रीरामतीर्थ योगाश्रम ने तैयार किया है। इसमें आसनोंका नाम, और कौन-सा आसन करनेसे क्या लाभ है, यह अच्छे ढंग से बताया है। समझाने की पद्धति इतनी सरल है कि आप ये आसन अपने घर पर करके लाभ उठा सकेंगे, योगासन-चित्रपटपर हिन्दी व अंगरेजी-दोनों भाषाओंमें नाम तथा लाभ लिखे हैं। शारीरिक स्वास्थ्य और नोबल बढाने के लिये योगके तृतीय अंग आसनका अभ्यास अतीव सफल प्रयोग है। यदि आप रोगी हैं तो नीरोग रहने के लिये और नीरोगी हैं तो भविष्यमें रोगी न रहनेके लिये अर्थात् रोग-प्रतिरोधक शक्तिसे सम्पन्न बननेके लिये प्रत्येक स्त्री पुरुषको आसन अनिवार्य रूपसे करना चाहिये। सुलभ साध्य आसनों के अभ्याससे आप और आपके परिवार के अन्य सभी प्राणी सुखी और निरामय बन सकते हैं योगासन चित्रपट खरीद कर और तदनुसार साधन कर आप अपने जीवनको अवश्य सुखमय बनाइये। ब्रह्मचारी, गृहस्थाश्रमी वानप्रस्थी आर संन्यासाश्रमी इन चारों आश्रम वासियोंको लाभ प्राप्त हो, इस ढंगसे इस योगासन चित्रपटमें आसनोंका दिग्दर्शन कराया गया है मू. २.५० नये पैसे डाकव्यय सहित ३.००

प्राप्तिस्थान श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, दादर, बम्बई १४

Arun Kr



जल-हवा व स्वास्थ्य

लें०—डा० कुलरंजन मुखर्जी

स्वास्थ्य के क्षेत्र में जल-हवा को एक उच्च आसन मिला है। बहुत से रोग जो औषधि से आराम नहीं पाते वे बहुधा जल-हवा के परिवर्तन से आरोग्य लाभ करते हैं। बहुत बार रोग आरोग्य के बाद जलवायु परिवर्तन से स्वास्थ्य तेजी से सुधर जाता है।

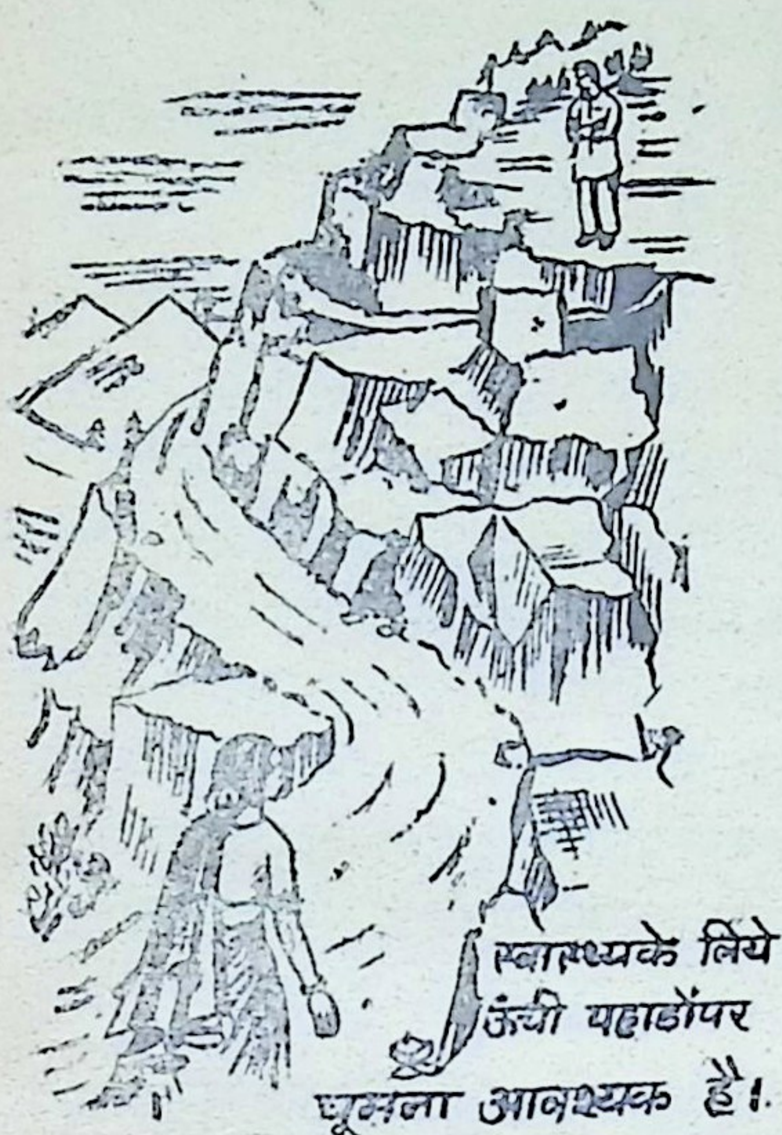
साधारणतः जलवायु परिवर्तन के लिये लोग पहाड़ी शहर, समुद्रोपकूलवर्ती स्थान, जहां गरम जल के कुण्ड हों, ऐसे समतल भूमि के भीतर अवस्थित विभिन्न स्वास्थ्य केंद्रों में जाते हैं। कोई २ इसके लिये समुद्र यात्रा करते हैं। नदी के वक्षस्थल पर विचरण भी स्वास्थ्य के लिये हितकर है।

किसी २ रोग में मरूभूमि की शुष्क हवा से भी स्वास्थ्य की यथेष्ट उन्नति होती है।

बहुत से रोगों में स्थान परिवर्तन के पहले शरीर की विशेष अवस्था के अनुकूल उपयुक्त स्थान चुनना आवश्यक है, अन्यथा उपकार के बदले अपकार ही हो जाता है।

किन्तु सभी रोगों में ऐसे स्थान में जाना आवश्यक है जहां यथेष्ट सूर्य की किरणें पड़ती हैं। कारण, वायु-परिवर्तन से जो उपकार होता है, वह प्रधानतः सूर्य किरणों की अल्ट्रा-वायलेट रश्मि से होता है। यह रोग जीवाणुओं को ध्वंस कर के एवं वायुमण्डल को विशुद्ध करती है। यदि सूर्य की रोशनी ही न रहे तो नई जगह जाने पर भी अवसाद एवं पाचन की गड़बड़ी हो सकती हैं।

स्थान-परिवर्तन के लिये विशेष रूप से पार्वत्य शहर पसन्द करते हैं। समुद्र से जितना ऊपर उठा जाता है, सूर्य किरणों के भीतर अल्ट्रा-वायलेट रश्मि का परिमाण उतना ही बढ़ जाता है एवं इसी कारण से आबहवा काफी विशुद्ध रहती है। इसके अलावा पहाड़ जितना ही ऊँचा होता है, वह उतना ही अधिक शीतल होता है। जिस तरह शीतकाल में क्षुधा अधिक होती है, उसी तरह पार्वत्य अंचलों में जहां ठण्ड खूब अधिक पड़ती है वहां जाने पर भी पाचन शक्ति यथेष्ट उन्नति लाभ करती है।


स्वास्थ्यके लिये ऊंची पहाडोंपर घूमना आवश्यक है।

पहाड़ जितना ही ऊँचा होता है, श्वास-प्रश्वास उतना ही तेज हो जाता है, एवं रक्तसंचालन उतना ही बढ़ जाता है, साथ साथ देह का वजन व रक्त के लाल कणिकाओं की संख्या बढ़ जाती है। एक बार उच्च पहाड़ पर जाकर कुछ दिन रह कर आने के बाद, समतल भूमि पर उतर आने पर भी कुछ दिनों तक यह उन्नति चलती रहती है। फेफड़ों का अतिअल्प विस्तार, स्नायुविक-दुर्बलता एवं ज्वर के बाद जो दुर्बलता आती है, उनमें पवित्र हवा अत्यधिक मूल्यवान् है।

किन्तु पहाड़ों की शीतल हवा अन्यान्य रोगों के लिये अच्छी होने पर भी पुराने ब्रोकाइटिस, दमा, पुरानी सर्दी एवं ग्रंथिवात व वात व्याधि के लिये अच्छी नहीं होती एवं हृदय रोगी के लिये ५०० से २५०० फीट तक की ऊँची जगह सदा ही वर्जनीय है। यक्ष्मा रोग में शीतल तथापि सूर्य की किरणों से दीप्त जलवायु गरम आब-हवा से श्रेष्ठ है, किन्तु यक्ष्मा पुरानी ब्रोकाइटिस व दमा के रोग में जोर की हवा सदा ही

वर्जित है, कारण, इससे खांसी अत्यंत बढ़ती है। जो इन सब रोगों को अधिक दिनों तक भोगते हैं एवं जिनको अत्यधिक कफ निकलता है; उनके पक्ष में समुद्र की अपेक्षा कुछ ऊँची भूमि ही सबसे उत्तम है।

जो रोगी ग्रन्थिवात अथवा वात-व्याधि से ग्रस्त हैं, उन्हें ऐसे स्थान में जाना उचित है, जहां की भूमि शुष्क, आबहवा ऊष्ण एवं वायु सम्पूर्ण जल-शून्य है, इन सब रोगियों के लिये शीतल व जलीय हवा अत्यन्त क्षतिकारक है, इस कारण राजगीर व भुवनेश्वर प्रभृति जगहों में, जहां गरम पानी के कुण्ड हैं, इन सब रोगियों के लिये वे सभी स्थान अत्यंत हितकर हैं। वात रोगों में गर्म जल के भीतर वेदनायुक्त स्थान एक आध घण्टेके लिये डुबाकर रखना ही एक प्रधान चिकित्सा है। बहुत बार केवल इतने से वेदना कम जाती है।

जो वात के रोगी हैं अथवा जिनकी किडनी अस्वस्थ है, उनके लिये गरम आबहवा ही स्वास्थ्य के लिये अनुकूल होती है एवं उच्च पार्वत्य शहरों की शीतल हवा उनका बहुत अनिष्ट करती है।

किडनी के रोगों में किडनी को विश्राम देकर चर्म के द्वारा किडनी का काम करा लेना ही एक प्रधान चिकित्सा है। कारण, किडनी विश्राम पाने पर ही अपने को आप ही मरम्मत कर ले सकती है।

इस कारण किडनी के रोग व वात-व्याधि, प्रकृति में मरुभूमि की आबहवा अत्यंत हितकर है। मरुभूमि की आब-

हवा विशेष रूप से जीवाणु शून्य होती है। यह भी देखा गया है कि जो मरूभूमि के अधिवासी हैं, वे ही पृथ्वी में सबसे अधिक शक्ति सम्पन्न हैं। किंतु यह सर्वदा स्मरण रखना आवश्यक है कि हमेशा के लिये गर्म स्थान हृदय, लीवर किडनी एवं जनन यंत्रों की विभिन्न विश्रृंखला उत्पन्न करते हैं। इसलिये मरूभूमि में जाना ही हो तो ऐसे समय में जाना उचित है जब अत्यधिक गरम नहीं हो। जो स्वास्थ्य निवास थोड़े गर्म हैं, वे सदा रोगमुक्त, दुर्बल व वृद्ध लोगों के लिये उत्तम हैं। शीतल हवा जब नम होती है तब उसे इन सब लोगों के हक में उससे परहेज करना ही उचित है।

वायु परिवर्तन से उपकार होता है जब वायु प्रवाह गतिमान, शुष्क व शीतल होता है। इससे गाढ़ी निद्रा आती है कफ व खांसी कम आती है, मन की अवस्था उन्नत होती है, एवं क्षुधा काफी परिमाण में बढ़ जाती है।

जब वायु मण्डल में आर्द्रता बसी रहती है तब साधारणतः भूख कम लगती है एवं अजीर्ण व वायु प्रभृति रोग की वृद्धि होती है। वायु यदि गर्म तथापि जल--सिक्त हो तो दैहिकबल कम हो जाता है एवं परिपाक यंत्र की विभिन्न गड़बड़ी दिखाई पड़ती हैं।

इस कारण, बंगाल, आसाम, उड़ीसा व आंध्र आदि जगहों में अजीर्ण रोगी अधिक दिखाई पड़ते हैं एवं इन सब जगहों के अजीर्ण रोगी जब बिहार, उत्तर प्रदेश प्रभृति स्थानों की शुष्क जगहों में जाते हैं तब उनका स्वास्थ्य तेजी से उन्नत

हो जाता हैं। बिहार के मधुपुर. गिरिडिह, सिमलतला, देवघर व जसीडिह आदि जगहों की जलवायु अत्यन्त शुष्क है एवं जिन्हें परिपाक यंत्र के रोग हैं उनके लिए उत्तम है किंतु जिन्हें वजन बढ़ाने की जरूरत है उन्हें बंगलोर जाना उचित है। वजन वृद्धि के लिए बंगलोर के समान स्थान भारतवर्ष में दूसरा है या नहीं इसमें सन्देह है।

स्नायुक रोग आसानी से आरोग्य नहीं होता किन्तु स्थान परिवर्तन से उनका अत्यन्त उपकार होता है। मानसिक अवशाप, स्नायुविक दुर्बलता, एवं स्नायुविक यंत्रों की गड़बड़ी में नई नई जगहों में भ्रमण एवं समुद्र यात्रा आश्चर्य जनक रूप से सफल होती है। बहुमूत्र रोग में जो साधारणतः स्नायुविक केन्द्रों की गड़बड़ी से उत्पन्न होता है, उसमें भी इस तरह का फल पाया जाता है। बहुधा नदी पर भ्रमण से भी अत्यन्त उपकार होता है।

कलकत्ते में एक बड़े कविराज थे। वे पक्षाघात ग्रस्त रोगियों को किसी प्रकार थोड़ा खड़ा कर प्रतिदिन स्टीमर में चढ़कर गंगा में घूमने को कहते। इससे उनके स्वास्थ्य में काफी उन्नति होती है। स्नायुविक रोगों की कोई निर्भरयोग्य औषधि नहीं है, किन्तु प्रतिवर्ष कुछ समय नदी के पक्ष पर समुद्र-तीरवर्ती शहरों एवं समुद्र के वक्षस्थल पर रह सकने से बहुधा नव जीवन लाभ होता है। स्नायुविक रोगियों के लिये पहाड़ों की शीतल हवा बहुत अच्छी है। सब प्रकार की उष्ण हवा व गरम स्थान भी स्नायुविक रोगों में वर्जनीय है।

भारतवर्ष इस प्रकार का विशाल व विचित्र देश है, जो इसके भीतर ही विभिन्न अवस्थाओं की अनुकूल जलवायु

खोज करने से मिलती है। इसके समुद्र तटीय शहरों में प्रतिवर्ष अनगिनत लोगों का समावेश होता है। पुरी, गोपालपुर-आन-सी, वालटेयर, रामेश्वर एवं द्वारका प्रथम व शेष शीतकाल में अत्यन्त मनोरम हैं।

भारत के विभिन्न पार्वत्य शहर पृथ्वी के सभी देशों से भ्रमणकारियों को आकर्षित करते हैं। इन सब शहरों में, अप्रैल व मई एवं अगस्त व सितम्बर में ही हवा-परिवर्तन का सर्वश्रेष्ठ समय है। बंगाल का दार्जिलिंग, आसाम का शिलांग, उत्तर प्रदेश का नैनीताल, रानीखेत, मसूरी व विंध्याचल, मध्यप्रदेश का पंचमढ़ि, राजपूताना का आबू एवं विहार का राँची व दक्षिण भारत का नीलगिरी प्रभृति हवा-परिवर्तन के लिए उत्तम हैं।

नीलगिरी पहाड़ पर चार स्वास्थ्य स्थान हैं—कन्नूर, उटकामंड, कोटागिरि व वेलिंगटन। परिपाक यंत्रों के रोगों में ये सब स्थान ही उत्तम हैं एवं शीतल, ग्रीष्म दोनों ऋतुओं में मनोरम है। महाबलेश्वर व माथेरान बम्बई के दो मनोरम पहाड़ी नगर हैं। ये पहाड़ी हवा के साथ साथ समुद्र की हवा से धुलते हैं।

स्थूलकाय व्यक्तिओं के लिये पहाड़ उतने सुविधा जनक नहीं हैं उनके लिये समतल भूमि ही उत्तम है। यह कहा जाता है, काश्मीर में तीन महीने रहने पर पुराने अजीर्ण रोगियों के शरीर में नवजीवन का आविर्भाव होता है। काश्मीर के लिये अच्छा समय है ग्रीष्म व शरद्काल। सम्राट जहांगीर प्रायः ग्रीष्म ऋतु काश्मीर में ही व्यतीत करते थे।



उमेश योग दर्शन

(प्रथम खंड)

ले० योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

गुजराती, हिंदी, मराठी व अंग्रेजी इन चार भाषामें प्रसिद्ध है

'उमेश'योग-दर्शन' ग्रन्थ में अष्टांग योग के तीन अंगों यम, नियम, आसनका समावेश किया गया है, शेष पांच अंग द्वितीय खण्ड के अन्तर्गत लिये जायेंगे। द्वितीय खण्ड छः मास के पश्चात् प्रकाशित होगा। 'उमेश-योगदर्शन' में १०८ से अधिक आसनोंके छायाचित्र (फोटो)हैं। छायाचित्र ग्लेज आर्ट पेपरपर छापे गये हैं नेति,धौति, नौलि, त्राटक, कपाल भाति बस्ति (एनिमा की यौगिक रीति) है। इनको मलशोधन कर्म अथवा षट् कर्म भी कहा जाता है। मानव शरीरमें आहार, जल वायु आदिसे जो स्थूल तथा सूक्ष्म और रोगोत्पादक विजातीय द्रव्य बनता है, उसे शरीर से बाहर निकालने के लिये जो सुलभ तथा महत्वपूर्ण प्रयोग (क्रियाएं) हैं, उनको मलशो· धन कर्म के नाम से पुकारा जाता है। इस बात सेइनकार नहीं किया जा सकता कि धन से, सम्पत्ति से सम्पन्न बनकर

शारीरिक पीड़ा, मानसिक चिन्ता, अस्थिर जीवनयापन, क्लेशमय जीवन एवं गृहक्लेश से मुक्त रह कर अपना सुखमय संसार बनाना चाहते हो तो इस ग्रन्थ को अवश्यमेव पढ़िये। 'उमेश योगदर्शन' ग्रन्थमें मात्र शारीरिक पीडाओंको दूर करके बलवान् बनने का ही मार्गदर्शन नहीं है, अपितु सूक्ष्म शरीर रूपी मनकी बीमारी-अस्थिरता चंचलता आदि को दूर कर मनोबल, इच्छा बल बढ़ाने और मनको विशुद्ध बनाये रखनेके लिए अतीव सुन्दर (मनोवैज्ञानिक) उपाय बताये गये हैं। निस्सन्देह इस ग्रन्थसे आप स्वयं लाभ उठा सकते हैं, साथ ही अपने परिवार तथा इष्ट मित्रोंको भी लाभ उठानेका अवसर दे सकते हैं। पुस्तककी पृष्ठ संख्या ४०० से भी अधिक है।

उमेश योगदर्शन की विशेषता इससे स्पष्ट लक्षित होती है कि अभी इसे प्रकाशित हुए एक वर्ष भी नहीं हुआ फिर भी उसके नाम से भारत ही नहीं अपितु समस्त विश्व के बिचारवान मानव परिचित हो चुके हैं, और आये दिनों उमेश योगदर्शन की प्रशंसा विषयक पत्र रामतीर्थ योगाश्रममें प्राप्त होते हैं। अतः जिन भाइयों को इसका अभी परिचय न मिला होवे यथा शीघ्र इससे लाभान्वित हों।

मूल्य—१५.०० रु०, डाकव्यय २.०० रु

प्राप्तिस्थान:-श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, दादर, बम्बई १४



(गतांक से **धर्मोपदेश** आगे

ले०—श्री. स्वामी रामतीर्थ

जबकि हम मानते हैं कि बिना तेज के, बिना प्रकाश के हम कुछ भी देख नहीं सकते, ऐसी दशा में हम स्वप्न में किस प्रकार के प्रकाश से वस्तुएँ देख सकते हैं। हमारे स्वयं के ही तेज से आत्मा के ही प्रकाशसे हम वह देख सकते हैं। स्वप्न में हीरे की चमक देखते हैं, वह हमारा ही तेज है, हमारे तेज की मात्र वह एक तरंग ही है। स्वप्न में सूर्य अथवा चन्द्र का तेज देखते हैं, वह भी मात्र हमारे आत्मप्रकाश की एक लहर है, इसी प्रकार जाग्रदवस्था में भी जानना चाहिये। हमारे आत्मप्रकाश रूपी सिन्धु में सूर्य और चन्द्र आदि के प्रकाश मात्र तरंगों के समान ही है। वास्तविक प्रकाश हमारा स्वयं का ही है।

"हम सम्राट् के भी सम्राट् हैं। विश्व के सम्राट् तथा राजा सब मेरे ही रूप हैं। अनेक फुलवाड़ियों को सुशोभित करनेवाले रंग-विरंगे पुष्पों में मेरी ही सत्ता व्याप्त है। ब्रह्माण्ड की समग्र सुन्दरता, आनन्द और मुसकाता हुआ मुख मैं ही हूँ। सर्वत्र मेरी ही इच्छा प्रवर्तमान है। सर्वप्राणियों का पोषण मेरी ही शक्ति से होता है। सूर्य और पृथ्वी मेरी सत्ता से ही परिभ्रमण कर रहे हैं। विश्व की उत्पत्ति से पहले भी मेरा अस्तित्त्व था। दूषित वासनाओं से मेरा कोई लेन-देन नहीं। यह असत्य शरीर और असत्य जगत् का काम है। मेरे समक्ष आने का उन का लेशमात्र अधिकार नहीं। जगत् के कण-कण में मेरा ही प्रकाश झलक रहा है। छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा सब कुछ मैं ही हूँ। मेरे मन में कोई छोटा

या बड़ा नहीं। भोक्ता और भोज्य, द्रष्टा और दृश्य सब मैं ही हूँ। जहां तक दृष्टि पहुंचती है, सर्वत्र मैं ही मैं हूँ। राम, कृष्ण, ईसा, मुहम्मद सबमें मैं ही रम रहा हूं। विद्युत में मेरा तेज द्युतिमान है। गर्जना में मेरी ही विभूति के दर्शन होते हैं। वायु में मेरी ही शक्ति व्याप्त है। मित्र मैं हूँ और दुश्मन भी मैं ही हूँ। मेरा न कोई मित्र है और न शत्रु। हे क्षणिक और निरर्थक इच्छाओ! अधम वासनाओ! जगत् के भण्डारो! दूर रहो, मुझे तुम्हारी बिलकुल आवश्यकता नहीं। इस शरीर की चाहे जो स्थिति हो, मुझे उसकी चिन्ता नहीं, मुझे उसके साथ कोई लेन-देन नहीं। सब शरीर मेरे हैं। राम, कृष्ण, केल्विन, फ्रेंकलिन, न्यूटन—सबमें मैं ही ओतप्रोत हूँ। केण्टके मस्तिष्क में मेरी शक्ति काम कर रही थी। बुद्ध और शंकर में मैं ही रम रहा था। प्लेटो और शेक्सपियर की बुद्धि मेरी ही शक्ति थी। जगत् की तृष्णा से ही मानव बन्धन को प्राप्त होता है। समग्र ब्रह्माण्ड मुझमें हैं। ब्रह्माण्ड मुझे धारण नहीं कर सकता मेरी कहीं सीमा नहीं। जगत् मेरे अन्तरपट पर चित्रित है। फिर भी मैं सबमें दिखलाई देता हूं। सबके मन और विचार मैं ही व्याप्त हो रहा हूं। मैं ही तुम सबमें हूं, बल्कि 'मैं' और 'तू' जैसा कुछ है ही नहीं, ऐसा भेद नहीं, सर्वत्र अभेद है। मैं ही वह हूं, वह मैं हूँ।

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः,
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥
—श्रीमद्भगवद् गीता

मैं ही अदृश्य दिव्य शक्ति हूँ और सभी सूक्ष्म तत्त्वों में

या बड़ा नहीं। भोक्ता और भोज्य, द्रष्टा और दृश्य सब मैं ही हूँ। जहां तक दृष्टि पहुंचती है, सर्वत्र मैं ही मैं हूँ। राम, कृष्ण, ईसा, मुहम्मद सबमें मैं ही रम रहा हूं। विद्युत में मेरा तेज द्युतिमान है। गर्जना में मेरी ही विभूति के दर्शन होते हैं। वायु में मेरी ही शक्ति व्याप्त है। मित्र मैं हूँ और दुश्मन भी मैं ही हूँ। मेरा न कोई मित्र है और न शत्रु। हे क्षणिक और निरर्थक इच्छाओ! अधम वासनाओ! जगत् के भण्डारो! दूर रहो, मुझे तुम्हारी बिलकुल आवश्यकता नहीं। इस शरीर की चाहे जो स्थिति हो, मुझे उसकी चिन्ता नहीं, मुझे उसके साथ कोई लेन-देन नहीं। सब शरीर मेरे हैं। राम, कृष्ण, केल्विन, फरेंकलिन, न्यूटन···-सबमें मैं ही ओतप्रोत हूँ। केण्टके मस्तिष्क में मेरी शक्ति काम कर रही थी। बुद्ध और शंकर में मैं ही रम रहा था। प्लेटो और शेक्सपियर की बुद्धि मेरी ही शक्ति थी। जगत् की तृष्णा से ही मानव बन्धन को प्राप्त होता है। समग्र ब्रह्माण्ड मुझमें हैं। ब्रह्माण्ड मुझे धारण नहीं कर सकता मेरी कहीं सीमा नहीं। जगत् मेरे अन्तरपट पर चित्रित है। फिर भी मैं सबमें दिखलाई देता हूं। सबके मन और विचार मैं ही व्याप्त हो रहा हूं। मैं ही तुम सबमें हूं, बल्कि 'मैं' और 'तू' जैसा कुछ है ही नहीं, ऐसा भेद नहीं, सर्वत्र अभेद है। मैं ही वह हूं, वह मैं हूँ।

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः,
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥

—श्रीमद्भगवद् गीता

मैं ही अदृश्य दिव्य शक्ति हूँ और सभी सूक्ष्म तत्त्वों में

मेरी सत्ता व्याप्त है। मैं ही अग्नि में ज्वालारूप हूँ। सूर्य, चन्द्र तारा और ग्रह मेरे तेज से देदीप्यमान हो रहे हैं। मरुत मेरी ही आज्ञा से प्रवहमान होता है और समुद्र को तरंगायित करता है। पुरुष और स्त्री, किशोर और किशोरी, बालक और जर्जरदेह पंगु-यह सब मैं स्वयं ही हूँ। भ्रमर, व्याघ्र और रक्ताक्षि, नीलपक्षि, वृक्षों तथा वनस्पति, मेघमण्डल और विद्युत सब मुझमें ही विद्यमान हैं। अर्णव और ऋतुएँ मुझसे ही प्रारम्भ होती हैं और मुझमें ही प्रशमित हो जाती हैं।

—उपनिषद्

'सूर्य तेज में मैं ही विराजमान हूँ, मधुर गान में मुग्ध करने की शक्ति मैं ही हूँ। प्रवाहित जलपर मैं निवास करता हूँ, निद्रा में भी मैं ही ओतप्रोत हूँ। पहाड़ और अग्नि के अस्तित्व से भूतकाल की स्थिति मैं ही प्रकट करता हूँ और समुद्र में मिलनेवाला मोती तथा पृथ्वी के नीचे बननेवाला कोयला भूतकाल का दर्शन कराता है।

काल एवं विचार मेरे मापक यन्त्र हैं। व्यवस्थापूर्वक समुद्र उत्पन्न कर पृथ्वी की तह मैंने ही बनाये हैं और साथ-साथ पत्थर, शंख आदि वस्तुएं भी बनवाई हैं-इमर्सन।

सूर्य की किरणों में मेरा ही निवास है और सूर्य भी मैं ही हूं। मेरी ही आज्ञा से एक-एक कण स्थिति में आता है और समुद्र उछलता है प्रभात का मधुर तेज और सायंकालीन मधुर वायु मेरे ही स्वरूप हैं। पत्तों के धीमे रव और समुद्र की गर्जना मेरी ही विभिन्न शक्तियां हैं। पक्षी और पक्षियों की भयानक चीत्कार आदर्श और उनमें परिवर्तित होती वस्तु की तस्वीर, नाद और उसकी प्रतिध्वनि यह सब

मैं हूं। प्रेम और प्रेमी, योद्धा और उसके शस्त्रास्त्र मैं ही नशा, उन्माद, द्राक्ष, कस्तूरी, मधु, अतिथि और अतिथेय, वंशी और मानव का मन मेरे ही आविर्भाव हैं। कनक की कान्ति, रत्नों का तेज, मोती का पानी मैं ही हूं। गुलाब और कोकिल तथा कोकिलकी कूक मैं स्वयं ही हूं, चकमक और उसके स्फुलिंग, दीपक और पतंग, सुख और दुःख, शुभाशुभ, भला--बुरा, कृत्य और कृत्यकी इच्छा ये सब मेरे ही स्वरूप हैं। प्रलोभन और उसके शिकार पापी, तथा पाप की क्षमा तथा दण्ड मैं ही हूं। तीनों काल में मेरा ही अस्तित्व है। जगत् की उत्पत्ति और लय मैं ही हूं आदि-अन्त मैं ही हूं।

'जंगल के वृक्ष मेरे सम्बन्धी हैं और मेरी रगों में जो तत्त्व प्रवहमान है, वही तत्व पहाड़ और पहाड़ियों में भी प्रवाहमान हो रहा है। मिट्टी मेरा मांस है। भ्रमर की मधु गुंजार, और मधु-मक्खी का डंक मैं हूं। कुसुम मेरी कान्ति है। सूर्य ऊंचे लटका हुआ मेरा फूल है। विद्युत् में मैं ही चमकता हूँ। मृत्यु चाहे जितने चक्कर लगाये, मैं अमर हूं। मैं अजन्मा हूं। फिर भी समुद्र की तरंगों की तरह जगत् में जन्म धारण करता हूं। मेरे श्वासोच्छ्वास कुसुमका मधुर परिमल प्रवाहित होता रहता है। सूर्य का प्रकाश मेरे कमल नेत्रों का तेज है। मेरे गुलाबी गालों से ही सन्ध्या खिल उठती है, और प्रेम के कारण ही तारे आकाश में स्थित हैं। मीठे जल की सरिताएं मेरी रगे हैं तथा वृक्ष मेरे सुन्दर बाल हैं। अहा! यह प्रचण्ड शक्ति! पर्वत मेरी हड्डियां हैं और स्वर्ग-भूमि मेरी अर्धांगिनी है। मैं ही पति और पत्नी दोनों ही हूँ, मात्र एक अभेद ही प्रवर्तमान है।"



रामतीर्थ ब्राह्मी तेल

(रजिस्टर्ड स्पेशल नं. १)

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल का निर्माण शुद्ध नारियल के तेल से किया जाता है। आयुर्वेदिक दृष्टि से समझा जाय तो नारियल का तेल मुख्यतः गुरु, स्निग्ध, शीतल और बलकर है और वात, पित्त, रक्तदोष, दाह इत्यादि अनेक विकारों को दूर करने के गुणों को धारण करता है। रामतीर्थ ब्राह्मी तेल के निर्माण के लिये जो नारियल का तेल उपयोग में लाया जाता है, वह शुद्ध होने के साथ-साथ जीवन-तत्वों से भरपूर रहता है इतना ही नहीं, यह उत्कृष्ट औषधिक तेल रामतीर्थ योगाश्रम के संचालक की देखरेख में तैयार किया जाता है।

अन्य सुगन्धित तेलों में अधिकांश रिफाइन तेल होता है, जिससे त्वचा, बाल इत्यादि को जो लाभ होना चाहिये, वह नहीं होता। रामतीर्थ ब्राह्मी तेल में किसी गंध (एसेन्स) का मिश्रण नहीं किया जाता। इसमें जो मधुर सुगन्ध है, वह वनौषधियों की है।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल में अनेक लाभदायक वनौषधियां डाली

जाती हैं, जिन के गुण-प्रभाव से आंखों को ठण्डक, मस्तिष्क को शक्ति मिलती है। यह सुखद निद्रा लाने, झड़ते हुए बालों को रोकने, बालों को बढ़ाने, घने, चमकीले बनाने आदि के लिये विशेष अनुकूल और लाभदायक हो सकता है।

स्वास्थ्य-रक्षा के अनेक साधनों में एक साधन रामतीर्थ ब्राह्मी तेल भी है।

ग्रास्य-जीवन के विपरीत बड़े तथा छोटे शहरोंके निवासी आबाल-वृद्धों के जीवन का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। जैसे अनियमित भोजन, रात को विलम्ब से सोना दुर्व्यसनमूलक वस्तुओं का सेवन, मानसिक चिन्ता, व्यायाम--विमुखता और विशेष बौद्धिक परिश्रम इत्यादि। रात में देरसे सोनेसे पित्त प्रकोप, मस्तिष्कमें उष्णता अधिक बढ़ जाना, शिरोवेदना, आंखों में जलन, शरीर में रक्त-संचार की अनियमितता, आलस्य, प्रमाद, जड़ता; मेदवृद्धि तथा क्षीणता आ जाने की सम्भावना है। अनेक वनौषधियों का मिश्रण कर शास्त्रीय पद्धति से निर्माण किये गये रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से प्रतिदिन प्रातः काल सारे शरीर एवं सिरमें १० से २० मिनट तक तैलाभ्यंग (मालिश) करें और कुछ देर बाद ऋतु, आयु और शक्तिके अनुसार शीतल अथवा साधारण गरम जल से स्नान करें प्रतिदिन मालिश करने से अधिक लाभ है, परन्तु किसी कारण वशात् प्रति दिन सम्भव न होतो सप्ताह में चार बार, तीन बार, दो बार अथवा कम से कम एक बार भी मालिश करने से उपर्युक्त सभी कठिनाइयां आसानी से घरेलू उपायोंसे दूर हो सकती हैं। रामतीर्थ ब्राह्मीतेल केवल पुरुषवर्ग, स्त्रीवर्ग बालक-वृद्ध अथवा रोगियों के लिए ही नहीं है, अपितु रोगी

नीरोगी सबके लिये सब और ऋतुओं में देश-विदेशवासियों को अनुकूल हो, ऐसे ढंग से तैयार किया जाता है।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल सम-शीतोष्ण है। रात को शयन के समय और प्रातःकाल स्नान के बाद शिर को अवश्य दो मिनट तक मालिश करें। ज्ञानतन्तुओं तथा क्रियातन्तुओं के लिये भी यह तेल अनुकूल है। यदि आपने अभी तक रामतीर्थ ब्राह्मी तेलका उपयोग न किया हो तो अवश्य व्यवहार करके देखिये अवश्य आपको अनुकूल होगा। सर्वत्र प्राप्य है। आप जिस शहरमें रहते हों, उसी शहरकी दूकानों (केमिस्ट, ड्रगिस्ट, जनरल मर्चेन्टस) में पूछिये वहां मिलेगा। किसी कारणवशात् न मिले तो लिखियेः- श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, दादर बम्बई १४

कीमतः- बड़ी बोतल ४.५० रु०, छोटी बोतल २.२५ रु० डाक से पैकिंग व पोस्टेज सहित बड़ी बोतल ७.०० छोटीबोतल के पैकिंग व पोस्टेज सहित ४.५० है। कृपया पोस्ट से मंगवाते समय उपरोक्त पते पर अग्रीम रुपये मनि-आर्डर से भेजें।





वंसी की ध्वनि में राधिका



ले०— वीतराग श्री १०८ नारायण स्वामी

भगवान् के रूप में मनको तन्मय करने के लिये श्रवणादि नवधा भक्ति की अपेक्षा से, नेत्रों द्वारा रूपमाधुरी का पान करना अत्युत्तम है। जितने लौकिक सुख हमें प्यारे लगते हैं, भगवान् का रूप उन सबसे बढ़कर है। प्रकृति-निर्मित पदार्थ अपूर्ण हैं और भगवान् का रूप पुर्ण है, अतः प्राकृतिक वस्तुयें प्रिय एवं भगवान् प्रियत्तम है। चिन्मय विग्रह श्याम के रूप माधुरी को निष्काम प्रेमी भक्त जब आंखों के अंचल में देख लेता है, तब मन-क्षुद्र इन्द्रिय सुखों से हट कर स्वभावतः ही भगवद्रूप में चिपकने लगता है।

यद्यपि भगवान् स्वरूपतः अचिन्त्य अप्रमेय है, तथापि भक्त अनुग्रहार्थ वृन्दावन की पावन भूमि में जन्म लिए हैं। भगवान् की वात्सल्य अवस्था अत्यन्त ही हर्ष कारक है। यह कहना नहीं बनता कि इसे वर्णन करने की मनुष्य में कहां तक शक्ति है? कारण कि, जिस रूप माधुरी के विषय में वर्णन करने में वेद स्वयं 'नेति-नेति' कह कर अपनी असमर्थता व्यक्त करें तो उस विषय में मनुष्य की क्षमता कहां तक हो सकती है।

तथापि:—

तद्वाग्विसर्गो-जनताघ विप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि। नामान्यनन्तस्य यशोऽतङ्कानि पच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः॥ श्रीमद्भा. १।५।११॥

कोई मनुष्य यदि अपनी वाणी की निर्मलता चाहता हो तो उसके लिए.........भगवान् श्यामसुन्दर के रूप गुण कथन से अतिरेक अन्य कोई उपाय है? सच कहा जाय तो भगवान् का अवतार ही 'असाध्य को साध्य, अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष एवं दुर्गम को सुगम बनाने के लिए ही है।'

उदाहरणार्थ—किसी समय भगवान् श्रीकृष्ण, यमुनातट-नित्य निकुंजोपवन में 'जो श्याम के रंजनार्थ स्वयं' श्यामरूप से पल्लवित था, ध्यान लगाये बैठे थे। इतने में श्री राधिका जी वहां आ पहुंची। भगवान् सबके स्वामी हैं। इससे बढ़ कर भी और दूसरा कोई है जिसका ध्यान लगाये भगवान् स्वयं बैठे हुए है? भगवान् अन्तर्यामी तो थे ही। श्री राधिकाजी के हृदय में इस प्रकार की शंका उठते ही उन्हें मालूम पड़ गया। अनन्तर बोले—'प्रिये! चारुशिले! जो निष्काम प्रेमी भक्त मेरे लिये संसार का परित्याग कर लेता है वह मेरे से बड़ा और प्यारा है। अतः हमेशा मैं ऐसे भक्तों का ध्यान लगाये बैठा रहता हूं और इसी में मुझे विपुल आनन्द लब्ध होता है।'

भावार्थ यह है कि, भगवान् के भक्त भगवान् से भी बड़े हैं। उन पर भगवान् की कृपा दृष्टि सदैव बनी रहती है। भले

ही भगवान् का रूप वेदों से परे हो और समूचे दर्शन-धर्म-शास्त्रों की पहुँच वहां तक न होती हो, भक्तों की वाणी वहां तक पहुंच सकती और भगवान् के रूप गुणों का वर्णन भी यथावत् कर सकती है। भगवान् शामसुन्दर का रूप परम कमनीय है। मुख पर बंसी की शोभा तो सदा ही निराली है।

कहते हैं कि किसी समय श्री वृषभानु नन्दिनी राधिका और बंसी में परस्पर झगड़ा फ़साद हो चला। श्रीराधिका जी चाहती थी कि मेरे समान भगवान् श्याम के अधरामृत पान करने का अधिकार बंसी को न मिले। किन्तु बंसी इसकी जरा भी बात न मानी। क्यों कि, वह निरन्तर भगवान् के अधरा-मृत पान में उन्मत्त थी। इतना ही नहीं अपितु श्री श्यामसुन्दर भी बंसी के अधीन हो चुके थे और बंसी का वियोग उन्हें क्षण भर के लिये भी असह्य हो जाता था।

एक दिन गुस्सेमें आकर श्रीराधिकाजी उसे तोड़नेका षड़यंत्र रच रही थी कि, इतने में बंसी ने चुपके से सब बात जान ली। अब जो राधिका जी चाहती थी वह पूर्ण न हो सकी उलटे बंसी बिगड़ पड़ी। प्रथम बंसी ग्रंथी से रहित थी। जब से राधिका जी के साथ विरोध हुआ तब से उसने उक्त कटुता की ग्रंथी को अपने भीतर रख लिया।

प्रथम उसकी ध्वनि श्री राधिका जी के हृदयकी अत्यन्त प्यारी थी। उसे सुनते ही व्रजेश्वरी उन्मादित हो उठती और अत्यन्त प्यार के साथ सत्कार करती। बाद में जब बंसी ने

राधिका जी से रुष्ट होकर अपनी ग्रन्थी को उल्टी करलिया तब से वह ग्रंथी बंसी के प्रथम रंध्र के समीप में रह कर, भगवान् श्याम सुन्दर के अधरामृत की धारा को राधिका जी के हृयद तक पहुंचाने में बाधा डालने लगी।

कुछ क्षण के बाद श्री राधिकाजी भगवान् श्रीकृष्ण के अधरामृतपान न मिलने से पागल हो उठी। अब करती भी क्या ? बात का बतगंड़ बन चुका था, और बँसी अत्यन्त कटुता के कारण ग्रंथी को श्याम सुन्दर के मुख के सामने करती हुई विरह की ज्वाला उगल रही थी। श्री राधिकाजी का कोमल हृदय उसे कहां सहनकर सकता था ? कोमल लतायें जिस प्रकार सूर्य की किरण से मुरझा जाती हैं उसी प्रकार से श्री राधिकाजी कृष्ण प्रेम में उन्मादित होकर बोलीः--

संचरदधर सुधा मधुर ध्वनि, मुखरित मोहन वंसम्।
चलित दृगंचल चंचल मौलिकपोल विलोल वतंसम्॥

गी. गो. २. १.

'सखी ! मनमोहन श्यामसुन्दर क बंसीने अधर सुधामृत-ध्वनिसे हम सबके हृदयको उन्मादित बना लिया है। जब नन्द नन्दन चपल मुख-चंचल भ्रुकुटी, कम्पायमान कुण्डल व मुस्कुराहट--हास के साथ उसे बजाते हैं तब उसे अपना बदला लेने का पूरा अवसर मिल जाता है और विरहानल की कराल ज्वाला से हम सबको जलाकर बँसी श्यामसुन्दर के अधरामृत को अकेली ही पान करना चाहती है।

श्री वृषभानु नन्दिनी राधिकाजी इस प्रकार अपनी सखी से कह रही थी कि, इतने में वँसी की ध्वनि निकुँजोपवन के अंचल से सुनने में आई। श्री राधिकाजी उसे सुनते ही बेहोस हो गई। समीप की एक सखी तत्काल उसे उठाकर अपने गोद में लेली और श्री राधिकाजी के कपोल पर अपना कोमल हाथ फिराकर उसे सचेत करने लगी।

—शाम और राधा का अनुराग—

एक ओर श्री राधिकाजी अधीर हृदय से बेहोश थी दूसरी ओर नन्दनन्दन भी व्रजेश्वरी के चिंतन में तन्मय थे।

कंसारि रपि संसार वासना वन्ध शृँखलाम्।
राधा माधाय हृदये तत्याज व्रज सुन्दरीः॥ गी.गो. ३. १॥

कालिन्दी (यमुना) तट-निकुँजोपवन में राधिकाजी के आगमन की प्रतीक्षा करते हुये श्यामसुन्दर को बहुत समय बीत चुका था, इधर प्रियतमा के वियोग से विहलित श्रीकृष्ण संसार रागानुरक्त इच्छाओंका, परित्याग करके 'समाधिमें योगी के समान' कुँजवन में पड़ी राधिकाजी के आकार को हृदय में धारणकर बैठे हुये थे। इतनेमें कुछ गोपीकाओंने वहां पहुंचकर राधिकाजी का संदेश उन्हें सुनाया। परन्तु उस समय तो सर्व राधा मयं जगत, हो चुका था। अर्थात्, राधिकाजी का मूर्तिमान् आकार ही सबमें समाया हुआ भगवान् कृष्ण को अनुभव हो रहा था। यद्यपि सखियों के प्रश्नों का उत्तर देने में श्यामसुन्दर स्वयं अधीर व असमर्थ थे तथापि वाष्पाकुलनेत्र,

रुद्धकण्ठ, एवं गद्‌गदायमान हृदय से 'विह्वलाकृति मनुष्य के समान' ही बोले ।—

तामहं हृदि संगतामनिशं भृशं रमयामि ।
किंवनेऽनुसरामितामिह किं वृथा विलपामि ॥ (गी.गो. ३.४)

श्री राधिके ! आपकी मनोहर मूर्ति मेरे हृदयाम्बुज में सदैव निवास करती है। मैं उसी की पूजा हमेशा करता रहता हूँ। तथापि आपके प्रत्यक्ष दर्शन बिना सब कुछ करना-धरना, खाना-पीना, चलना-फिरना व्यर्थ है। अतएव आपके कुँजवन में पधारने में यदि किंचित् भी विलम्ब हुआ तो इस जीवन का जीवित रहना असंभव है। इस प्रकार से प्रलाप करते हुये श्यामसुन्दर श्रीराधे ! कहकर निकुँजोपवन की पुष्पशय्या पर बेहोश पड़ गये। मनमोहन की इस प्रकार बिगड़ती दशा देखकर सब गोपी अत्यन्त विह्वल हो उठीं और तत्काल कालिन्दी का शीतल जल लाकर मुखपर सेंचन करते हुये सचेत किया।

श्री राधिकाजी के प्रति श्यामसुन्दर का स्नेहानुराग अत्यधिक बढ़ चुका था। जब वृक्ष--लता, नदी-पर्वत, वन-उपवन भी उक्त स्नेहानुराग में रंजित हो श्रीकृष्ण के समान विह्वल थे तब गोपियों की दशा कैसी रही होगी उसका वर्णन करना अत्यंत कठिन है।

जिस संदेशके वाहक बनकर गोपीकायें श्यामसुन्दरके पास आई थीं वह सब नन्दनन्दनके प्रेमानुरागमें बहता गया, उल्टी श्याम

सुन्दरके समान सबकी सब गोपी पागल हो उठीं और राधिकाजी के पास जाकर श्यामकी विरह दशाका वर्णन करने लगीं। परन्तु उनकी बात सुननेवाला कौन था ? श्री राधिकाजी, निकुँजकुँज विहारी श्यामसुन्दर को अपने हृदय में ध्यान लगाये मुनि के समान बैठी हुई थी। कभी कभी हृदयेश के प्रेमानुराग में पागल हो हंस पड़ती, और कभी रोती-नाचती, पागल के समान गाने लगती थी। राधिकाजी की दशा भगवान् कृष्ण से बढ़कर उन्मादित थी। अतः उन्हें समझाने की अपेक्षा से मोहन को यहां ले आने की आशा रखती हुई एक सखी, फिर से भगवान् कृष्णचन्द्र के समीप पहुँची और राधिकाजी की अन्तर्दशा का वर्णन करने लगी।

वहति च चलित विलोचन जलधरमाननकमलमुदारम्।
विधुमिव विकट विधुंतुददेत दलन गलितामृतधारं॥
सा विरहे तव दीना। गी. गो. ४. १॥

'हे प्रियतम ! श्रीकृष्ण ! जैसे चन्द्रमा स्वयं अमृत-धारण करता हुआ भी, कभी कभी राहु से ग्रसित हो जाता है वैसे ही राधिकाजी का मुखारविन्द स्वयं प्रेमामृतका आकार होता हुआ भी, श्यामसुन्दर के विरहाश्रुपात रूप राहूसे ग्रसित हो मलीन मालूम पड़ता है। 'श्यामसुन्दर' ! राधिकाजी के विषय में जो कुछ भी कहा जाय वह थोड़ा है।

वृषभानु नन्दिनी के द्वारा भेजी हुई सखी के प्रेमोद्गार को श्रवणकर श्याम अत्यन्त प्रसन्न हो बोले 'प्रिये ! मैं इसी कुंजमें

निवास करूंगा आप राधिका को प्रसन्न करके यहीं ले आओ। यह सुनकर सखी राधिकाजी के समीप चलकर सब सन्देश सुनाने लगी।

हे निकुँजेश्वरी ! जिस निकुँजोपवन में श्यामसुन्दर तुम्हारा ध्यान करके और तुम्हारे नाम जप करके संपूर्ण विश्व को मोहित करने की सिद्धि पा चुके हैं, उसी यमुनातटोपवन में बँसी बजाते तुम्हारे गुण-गायन करते बैठे हुये हैं।—

नामसमेतं कृतसंकेतं वादयते मृदु वेणुम्।
बहुमनुतेऽतनुते तनुसंगत पवन चलितमपि रेणुम॥
धीरे समीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली॥
—गी. गो. ५. १॥

श्यामसुन्दर मनोहर मुरली ध्वनि को धीरे २ तुम्हारे नाम (राधे-राधे) से संकेत करते हुए बजाते हैं और जिधर आप विराजमान हैं उसी दिशा की ओर से बहती हवा का अत्यधिक आदर करते हैं। जब उसी हवा में उड़ी हुई धुली श्यामसुन्दर के कोमल शरीर पर स्पर्श कर लेती है तब वे बहुत ही प्रसन्न होते हैं।

बंसी एवं गोपीप्रेम

भगवान् श्यामसुन्दर स्वपद पद्म पराग से वृन्दावन की पावन भूमि को चित्रण कर रहे थे। नटराज का शरीर अनंत नटाकृतियोंसे चित्रित था। कोमल व नव बालूकाओं से रंजित

यमुना का तट 'जो कि कुंजवन की लताओं से आकीर्ण था और उसकी कोमल शाखायें मन्द मारुत से कम्पायमान हो, यमुना जल को स्पर्श कर रही थीं, कि इतने में भगवान् कृष्ण वेणु रंध्र में अपने अधरामृत को आपूरित कर बंसी बजाये।

उधर से सब गोपीका वृषभानु नन्दिनी को किसी प्रकार से मनवाकर उन्हें आगे करके श्यामसुन्दर से मिलने के लिए जा रही थीं कि, इतने में राधे की ध्वनि लताओं की अंचलसे सुनाई पड़ी।

इति वेणुरवं राजन सर्वभूत मनोहरम्।
श्रुत्वा व्रजस्त्रिय: सर्वा वर्णयन्त्योभिरेभिरे॥
-श्रीमद्भा० १०.२१.६.

भगवान् नित्य निकुंजेश्वर, नित्य निकुंजेश्वरी राधिका जी के साथ नित्य वृन्दावन में सदैव विहार करते रहते हैं। उनकी बंसी अनुक्षण बजती रहती है। निष्काम प्रेमी भक्त के लिए सतत भगवान् के अधरामृत पानार्थ उक्तनाद का श्रवण कर लेना चाहिये।

यद्यपि श्यामसुन्दरका वेणु नाद सम्पूर्ण जड़ चेतन प्राणियों के मन को मोहित करने वाला था। तथापि गोपियों के मन पर ही उसका प्रभाव क्यों पड़ा? क्या इतर ग्वाले वहां न थे। उत्तर में-गोपियों का मन निष्काम कृष्ण प्रेम से रंगा हुआ था इसलिये बंसी की धुन उन्हें सुनाई पड़ी, और ग्वाले संसार के कार्य में व्यस्त थे, उनके मनपर भी कृष्ण प्रेम का महत्व उतना न था, अतः वे न सुन पाये।

निवास करूंगा आप राधिका को प्रसन्न करके यहीं ले आओ। यह सुनकर सखी राधिकाजी के समीप चलकर सब सन्देश सुनाने लगी।

हे निकुँजेश्वरी ! जिस निकुँजोपवन में श्यामसुन्दर तुम्हारा ध्यान करके और तुम्हारे नाम जंप करके संपूर्ण विश्व को मोहित करने की सिद्धि पा चुके हैं, उसी यमुनातटोपवन में बँसी वजाते तुम्हारे गुण-गायन करते बैठे हुये हैं।—

नामसमेतं कृतसंकेतं वादयते मृदु वेणुम् ।
वहुमनुतेऽतनुते तनुसंगत पवन चलितमपि रेणुम ॥
धीरे समीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली ॥
—गी. गो. ५. १ ॥

श्यामसुन्दर मनोहर मुरली ध्वनि को धीरे २ तुम्हारे नाम (राधे-राधे) से संकेत करते हुए बजाते हैं और जिधर आप विराजमान हैं उसी दिशा की ओर से वहती हवा का अत्यधिक आदर करते हैं। जब उसी हवा में उड़ी हुई धुली श्यामसुन्दर के कोमल शरीर पर स्पर्श कर लेती है तब वे बहुत ही प्रसन्न होते हैं।

बंसी एवं गोपीप्रेम

भगवान् श्यामसुन्दर स्वपद पद्म पराग से वृन्दावन की पावन भूमि को चित्रण कर रहे थे। नटराज का शरीर अनंत नटाकृतियोंसे चित्रित था। कोमल व नव बालूकाओं से रंजित

यमुना का तट 'जो कि कुंजवन की लताओं से आकीर्ण था और उसकी कोमल शाखायें मन्द मारुत से कम्पायमान हो, यमुना जल को स्पर्श कर रही थीं, कि इतने में भगवान् कृष्ण वेणु रंध्र में अपने अधरामृत को आपूरित कर बंसी बजाये।

उधर से सब गोपीका वृषभानु नन्दिनी को किसी प्रकार से मनवाकर उन्हें आगे करके श्यामसुन्दर से मिलने के लिए जा रही थीं कि, इतने में राधे की ध्वनि लताओं की अंचलसे सुनाई पड़ी।

इति वेणुरवं राजन सर्वभूत मनोहरम्।
श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योभिरेभिरे॥
-श्रीमद्भा० १०.२१.६.

भगवान् नित्य निकुंजेश्वर, नित्य निकुंजेश्वरी राधिका जी के साथ नित्य वृन्दावन में सदैव विहार करते रहते हैं। उनकी बंसी अनुक्षण बजती रहती है। निष्काम प्रेमी भक्त के लिए सतत भगवान् के अधरामृत पानार्थ उक्तनाद का श्रवण कर लेना चाहिये।

यद्यपि श्यामसुन्दरका वेणु नाद सम्पूर्ण जड़ चेतन प्राणियों के मन को मोहित करने वाला था। तथापि गोपियों के मन पर ही उसका प्रभाव क्यों पड़ा? क्या इतर ग्वाले वहां न थे। उत्तर में-गोपियों का मन निष्काम कृष्ण प्रेम से रंगा हुआ था इसलिये बंसी की धुन उन्हें सुनाई पड़ी, और ग्वाले संसार के कार्य में व्यस्त थे, उनके मनपर भी कृष्ण प्रेम का महत्व उतना न था, अतः वे न सुन पाये।

भावार्थ यह है कि श्यामसुन्दर का बंसीनाद सब के मनको मोहित करने के लिये था। परन्तु जिसका मन उसी ओर लगा हुआ था उसने तो गोपियों के समान, सुनलिया और जिसके मन उधर न थे वे नहीं सुन पाये। अभी भी श्याम-सुन्दर की बंसी वृन्दावन के आनन्द कानन में बजती है। जिसे इसकी धुन सुनकर 'भगवान् के अधरामृत पान करने की उत्कटाकांक्षा हो तो वह 'प्रथम अपने मनको निष्काम प्रेम रंग में रंग कर, उसे सुन सकता है। जिसे इस बात की परीक्षा करनी हो तो वह वृन्दावन में जाकर एकांत किसी लता के नीचे बैठ कर मन को निष्काम करे तो उसे तत्काल ही बंसी की धुन सुनाई पड़ेगी।

अस्तुः—गोपिकायें राधिकाजी के साथ कुंजवन में श्यामसे मिलने जा रही थीं कि इतने में मध्यमार्ग में ही उनकी बांसुरी (धुनि) सुनाई पड़ी। वे सब चित्रकी मूर्ति के समान वहां खड़ी हो गईं और एक दूसरे के प्रति बंसीनाद का महत्व वर्णन करती हुईं, परस्पर नाचने लगीं।

प्रथम दृश्यः—एक गोपी सबसे आगे खड़ी हो गई और कदम्ब की पुष्पित शाखा को एक हाथ में लेकर दूसरे हाथ से इशारा करती हुई सबको सम्बोधन करके बोली 'प्रिय सखी गण! मैं सच कहती हूं जो कोई सखी श्यामसुन्दर की सुन्दर मुखाकृति को निष्कामानुराग कटाक्ष से देखना चाहेगी वही सखी श्याम की अधिक प्यारी बन सकती है। अर्थात् नन्दनन्दन के अधर सुधामृत पान का प्रत्यक्ष फल उसी को मिल सकता

है जिसका मन निष्काम-प्रेमानुराग में ओतप्रोत हो।

द्वितीय दृश्यः—मध्यमार्ग में गोपियों का प्रश्नोत्तर चल रहा था कि, इतने में मोहन की बँसी राधा, की धुनमें गूंज उठी। उसे तो पिछला हिसाब करना था, श्री राधिकाजी इस बात को भूल चुकी थी। जैसे बालक अपने प्रतिबिम्ब को देख कर सबकुछ भूल जाता है, वैसे ही राधिका श्यामसुन्दर के हृदय में अपने नामांकित रूप को बँसी के द्वारा सुनकर सब-कुछ भूल गई। बंसी अपनी चातुर्यता से राधिकाजी को आने देना नहीं चाहती थी, इसलिये कि, श्यामसुन्दर उसे छोड़कर राधिकाजी को आलिंगन करेंगे और श्यामका अधरामृत उसे उतना न मिल सकेगा। इस भय के कारण बंसी अपनी अमृतोपम धुनि से राधिकाजी को मध्य मार्ग में ही रोके रखी थी। किन्तु राधिका एवं इतर गोपियों को इस बात का पता तक न था। वे सब सुमधुर वँसी की धुनि सुनते २ आगे चलने का मार्ग भूल गई और प्रथभ्रष्ट हरिणीके समान उन्मादित हो बंसी के गुण गाने लगी।

गोप्यः किमांचरदयं कुशलं स्म वेणु
दामोदराधर सुधामपि गोपिकानाम्।
भुंक्ते स्वयं यदवशिष्ट रसं हृदिन्यो
हृष्यत्वत्त्वचोऽश्रु मुमुचु स्तरवोयथाऽर्याः॥
श्रीमद्० १०.२१.९॥

'प्यारीगोपियाँः—बंसी की तपस्या बहुत बड़ी है। इसने

जो पुण्य संचय किये हैं उसे तो जरा देखो। यद्यपि स्वभाव से इसका जन्म जड़ प्रकृति से हुआ है, तथापि यह जो चेतन वत जान पड़ती है, इससे निश्चय कर लेना चाहिये कि, इस का पिछला पुण्य बहुत है। अन्यथा हम सब गोपीकाओं के समान श्रीश्यामसुन्दरके अधरामृतका पान कैसी कर सकती है ?

तृतीय दृश्य:—वेणु नाद का प्रभाव कितना महत्वपूर्ण है 'सखी ! देखो जरा इन योगी मुनियों को जिन्होंने अखण्ड निर्विकल्प समाधिके चिरस्थिर ब्रह्मानन्द का परित्याग कर, वृक्षों में चढ़कर बंसी की धुनि सुनने के लिये उत्साहित हैं।

प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्
कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतं।
आरुह्य येद्रमभुजानरुचिर प्रवालान्
श्रृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्य वाचः ॥ श्रीमद्. भा. १०.२१.१४

हे सखीगण ! प्रायः मुनिगण, 'जो निरन्तर तपश्चर्या में ही लगे रहते हैं और जिनका निवास सदा से उक्त वन में होता आया है, कृष्ण के मुखचन्द्रमा को देखने के लिये कितने उत्सुक हो रहे हैं। जिन मुनियोंने केवल श्यामसुन्दर के बंसी नाद सुनने के लिये ही संसार वार्ता का परित्याग कर मौन व्रत धारण कर चुके हैं, और सघन एवं सुन्दर कदम्ब वृक्षोंकी शाखा पर बैठकर अन्तःचक्षुद्वारा मन को एकाग्र करके निरन्तर बंसीनादका श्रवण करते हैं उन्हींका जीवन इस असार संसार में सारवत् है।

बंसी की ध्वनि में राधिका

आध्यात्म रहस्य

भगवान् कृष्ण संपूर्ण जड़चेतन प्राणियों के प्रत्यक् चैतन्य आत्मा हैं और सदैव जड़ व चेतन प्रकृतिके सहारे इस संसार में अवतरण हो अपनी लीला करते रहते हैं। उनकी जड़ (अष्टधा) प्रकृति स्वयं बंसी रूप में अवतरण हुई है। चिन्मय प्रकृति ही राधिका है। प्रत्येक मानव का मस्तिष्क ही, गोलोक वृन्दावन हैं जहाँ नित्य चैतन्य आत्मा कृष्णावतार धारण कर सदैव अपनी चिन्मयी शक्ति राधिका के साथ नृत्य करते रहते हैं।

अनहद्ध्वनि ही बंसी है जो सदैव बजती रहती है। इसके आठ छिद्र ही अष्ठधा प्रकृति है। अर्थात् भौतिक जड़ प्रकृति की अत्यन्त सूक्ष्म गति ही ध्वनि के रूप में प्रश्रवण होती है। जब मनुष्य एकाग्र मन (निष्काम प्रेमभक्ति) के प्रभात से उक्त बंसी नाद को सुन लेता है तब उसे भगवान् के अधरामृत पान करने को मिलता है। अर्थात् वह भगवान्के अचिन्त्य अप्रमेय स्वरूपको प्रत्यक्ष मूर्तिमान विग्रह के रूपमें देख सकता है। इसी दशामें मनुष्य अपनी आखों द्वारा भगवान् श्यामसुन्दरकी रूप माधुरी का पान कर सकता है; यही इस लेख का तात्पर्य भी है।



ॐ श्री रामतीर्थ योगाश्रम नियम ॐ

१–इस योगाश्रम में प्रविष्ठ होने के बाद साधक को बीड़ी-सिगरेट, शराब आदि व्यसनों से दूर रहना होगा। यदि ऐसे किसी दुर्व्यसन अथवा दुश्चरित्रता की बात संचालक को मालूम होगी तो उसे किसी अग्रिम सूचना के बिना आश्रम से हटा दिया जायेगा।

२–ली हुई फीस किसी भी दशामें वापस न होगी।

३–अभ्यासकाल में सबके साथ हिल-मिलकर रहना होगा तथा इस सम्बन्ध में कोई शिकायत होगी तो उसका निर्णय संचालक ही करेंगे, जो अन्तिम होगा।

४–अभ्यास प्रारम्भ करने के समय से निवृत्त होने के समय तक साधकको संचालकके आदेशानुसार आचरण करना होगा।

५–टूवाल, नोटबुक, नेति, धौति, ब्रह्मदातून आदि आवश्यक साधन की वस्तुयें उपयोग में लाने के बाद साफ कर निर्दिष्ट स्थान में रखनी होंगी।

६–सामान्य आरोग्य के साधारण अभ्यास में साधक यदि पारंगत समझे जायेंगे, तभी उन्हें योग के अन्तरंग अभ्यास की शिक्षा दी जायेगी इस सम्बन्ध में संचालक को पूर्ण संतोष होना आवश्यक होगा।

७–योगाश्रम के संचालक उचित और सात्विक दान स्वीकार कर सकते हैं और उसमेंसे एकत्रित सम्पत्ति संचालक की इच्छानुसार योगविद्या के प्रचारार्थ खर्च की जायेगी।

८–कमसे कम आठ वर्ष और इससे ऊपर की अवस्था वाले ही योगाश्रम में प्रवेश पा सकेंगे।

फीस सम्बन्धी नियम

आश्रम में प्रवेश करने की फीस ५ रु. है। रोगियों को रोग के आधार पर अधिक फीस देनी होगी। नीरोगियों के के लिये १ महीने की फीस १० रुपये और तीन मास के २७ रु.

है। योगाभ्यास-संबंधी वस्तुओं (नेति धौ ति आदि) का फीस से कोई संबंध नहीं। इनका प्रबन्ध साधक को खुद करना होगा। जितनी अवधि के लिये फीस भरी गई हो, उसका सम्बन्ध दूसरी अवधि की फीस से न माना जायेगा। योगाश्रम से एक बार निवृत्त होने के एक वर्ष के बाद पुनः प्रवेश पाने की इच्छा रखनेवाले साधक का नवीन प्रवेश समझा जायेगा। एक साल से पहले पुनः प्रवेश की इच्छा रखनेवाले साधकों की गणना पुराने साधकों में होगी। नवीन प्रवेश पहली या १५ को ही किया जाता है। बीच में प्रवेश करनेवालों की फीस पहली या १५ तारीख से प्रारम्भ मानी जायेगी। साधक को फीस अग्रिम देनी होगी। समय प्रात:काल ७ से ९ और सायंकाल ६ से ७॥ है। इन दो में से किसी भी समय को अपने अनुकूल बना सकते हैं। महिलाओं के लिये अपराह्न में ४ से पांच है। फीस पुरुषों के समान है। प्रात:काल आनेवाले साधकों को स्नान, सन्ध्या आदि से निवृत्त होकर आना चाहिये। इस योगाश्रम में योगशिक्षकों को भी प्रशिक्षित किया जाता है। एतदर्थ योग प्रवेश, योग मध्यमा और योग-पारंगत उपाधियां नियत हैं। योग-प्रवेश के अभ्यास क्रम की अवधि ३ महिने की है। योग-मध्यमा की साधना की अवधि ६ महिने की और योग-पारंगत की १ से ३ वर्ष की है। इस अवधि में योगाभ्यासी अपनी अभीष्ट भूमिका का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है और तदनुसार योग-शिक्षक बन सकता है। योगाश्रम में होनेवाले व्याख्यानों से सर्वसाधारण जनता निःशुल्क लाभ उठा सकती है।

योगाश्रम में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को नियमों का पालन करना अनिवार्य होगा जब तक वे योगाश्रम में रहें, शांति और सभ्यता का पालन करें, अन्यथा संचालक की आज्ञानुसार उन्हें आश्रम छोड़ देना होगा।



प्रार्थना

-एक प्रकाश स्तम्भ



ले०—रमाकांत दीक्षित बी.ए., बी.टी.
साहित्य रत्न, विद्यावाचस्पति

मनुष्य, पशुओं से कहीं अधिक संवेदनशील, जिज्ञासु और सज्ञान प्राणी है। सम्भवतः उसकी आत्मा शांतिपरक आध्यात्मिक स्निग्ध एवं तरल मधु-धारा का पान करने के लिये प्रागैतिहासिक काल से ही सतत प्रयत्नशील रही होगी और आज भी उसकी खोज ज़ारी है। वह अनन्त और अनादि शक्ति का पता लगा लेना चाहता है। उसकी मान्यताएं, उसके तथ्य समय समय की दीवारों से टकराने पर भी चकनाचूर नहीं हो पाए हैं, और न अभी उसकी साधना में ही कमी आ पाई है। मनुष्य की इस साधना से ही भक्ति और भावना आदि का रूप उज्वल होकर हमारे सामने आया है। भक्ति और भावना आदि के समन्वय से ही मानव-मन की गहराइयों को एक ऐसी शक्ति मिली है, मस्तिष्क को एक ऐसा बल मिला है, जिसने उसको थोथे विचारों के मायावी जाल से बचाये रखा है।

इसके अतिरिक्त कुछ विरोधमूलक विचारों ने 'आस्तिकता' पर प्रहार भी किया है। इसके विरोध में 'नास्तिक विचार' धारा ने जन्म लेकर इसके अस्तित्व को मिटाने का असफल प्रयत्न किया है। फिर भी आस्तिकों की संख्या में वृद्धि ही होती गई है और आज भी हो रही है।

यह निर्विवाद है कि मनुष्य को आस्तिक होना चाहिये। उसे ईश्वर में विश्वास रखना चाहिये। उसे प्रार्थना में लीन होकर अपने 'स्व' और 'पर' को एकाकार कर देना चहिये। तभी उसे सार्थकता की पदवी प्राप्त हो सकेगी और तभी तन-मन-प्राण सभी निर्मल हो सकेंगे।

ईश्वर, आस्तिकता और प्रार्थना का सम्बन्ध गंगा-यमुना और सरस्वती के संगम जैसा पावन माना जा सकता है। ये दोनों त्रिवेणियाँ शास्त्रसम्मत होने के कारण हिन्दुजाति (आर्य जाति) के जीवन में गौरव को अपनाये हुये हैं। हमें एक परम्परा ऐसी मिलती है जिसने प्रार्थना के बल पर अपने जीवन को नये साँचे में ढालने का कदम उठाया है। बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, दयानन्द और गाँधी सरीखे संतों ने प्रार्थना द्वारा अलौकिक प्रकाश प्राप्त किया और अपने अकाट्य अनुभव आने वाली पीढ़ी के लिये आदर्श रूप में रखे हैं। उनका जीवन आज भी जगमगा रहा है। क्योंकि प्रार्थना उनकी जीवन-सहचरी थी, जीवन-रक्षिका थी किसी से भिक्षा माँगना या रोटी आदि माँगना कभी भी अच्छा नहीं बतलाया। परन्तु ईश्वर के सम्मुख अपनी झोली फैलाकर माँगने में कभी भी लज्जा का

अनुभव नहीं किया। उनकी प्रार्थना इसीलिये प्रार्थना कहलाई कि वह स्वतः उनके हृदय से निःसृत हुई थी। प्राकृतिक झरने की भाँति फूट निकली थी। आज विनोवा तथा अन्य संत भी इस परम्परा में अपना योगदान दे रहे हैं।

ईश्वर में जिसका जितना विश्वास बढ़ता जाता है, उसकी प्रार्थना के प्रति उतनी ही अधिक लगन भी बढ़ती जाती है। धीरे-धीरे वह उसकी अनिवार्यता को समझने लग जाता है। एक बार भी ब्रह्मानन्द रस का आस्वादन करने पर वह उस स्वाद को भुलाने पर भी नहीं भूल पाता। प्रार्थना के लिये उसका आराध्य और इष्ट देव ईश्वर ही होता है जो अजर, अमर, अनादि, अनन्त, सर्वाधार सभी कुछ कहलाता है। अतः सर्वशक्तिसम्पन्न ईश्वर से प्रार्थना करना सुकर्म का परिचायक है। ऐसे ईश्वर से प्रार्थना करना किसी भी परिस्थिति में निन्दनीय नहीं माना जा सकता। मनसा-वाचा-कर्मणा ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये। श्रीमद्भागवत में भी लिखा है कि:—

व ाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौच कर्मसु
मनस्तवपादयोनः। स्मृत्यां शिवस्तव निवासजगत्प्रमाणे
दृष्टिःसतां दर्शनेऽस्तु भगवत्त नूनाम् ॥"

(श्रीमद्भागवत, १०।३।३७)

भगवन् मेरी वाणी आपके गुण-कीर्तन में लगी रहे। मेरे कान आपकी लीला-कथा में संलग्न रहें। मेरे हाथ आपकी सेवा के कार्य में और मन आपके चरणों के चिन्तन में तत्पर

रहें। मेरा मस्तक आपके निवासभूत जगत् को नमस्कार घरने के लिये झुका रहे और मेरी आँखें आपके स्वरूपभूत संतों के दर्शन में नियत रहें।

प्रार्थना करना सर्वश्रेष्ठ सुकर्मों में से एक अकेला ऐसा कर्म है जिसमें कोई झंझट नहीं न बाह्य उपकरणों की ही आवश्य-कता है, और न आडम्बर पूर्ण स्थान ही चाहिये। बिना साबुन और पानी के अपने स्वभाव को निर्मल करने के लिये सभी का प्रार्थनामय होना, जीवन पर्यन्त उपादेय एवं श्रेयस्कर है। सभी को महापुरुषों के पदचिन्हों पर चलकर प्रार्थना की पावन परम्परा को कायम रखते हुये अपनी धार्मिकता, सजीवता, उदारता का परिचय देना चाहिये और विकासोन्मुख होने में कभी भी पीछे नहीं रहना चाहिये। यह संतों की परम्परा है जो अनुभवों के आधारस्तम्भों पर टिकी हुई है। प्रार्थना की तुलना एक ऐसे प्रकाशस्तम्भ से जा सकती है जिसके प्रकाश में अनेक जहाज सागर की उत्ताल तरंगों से जूझ कर अपने लक्ष्य तक पहुंचने में सफल होते हैं। प्रार्थना के प्रकाश में भूले-भटकों को अपना मार्ग स्पष्ट दिखलाई पड़ने लग जाता है जीवन में सामंजस्यता लाना प्रार्थना का ही कार्य है। गाँधीजी ने प्रार्थना के विषय में अपने विचारों को अपनी आत्म कथा में इस प्रकार प्रकट किया है कि--"मुझे रोटी न मिले तो मैं व्याकुल नहीं होता पर प्रार्थना के बिना तो पागल हो जाऊंगा। मेरा सारा जीवन प्रार्थनामय ही है।...ईश्वर अनुभवगम्य है, इसलिये अनुभव से जाना जा सकता है। प्रार्थना द्वारा उसका

अनुभव होता है। जो अनुभव लेना चाहते हैं, जिन्हें शांति की आवश्यकता है, वे प्रार्थना करें।"

प्रार्थना में उपस्थित रहने का अर्थ अपने आप को ईश्वर की शरण में ले जाकर उससे सम्भाषण करना और 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की कामना करना है।

जिसके विचारों की शृंखला विच्छिन्न होकर बिखरना चाहती है। जिसकी विचार-शृंखला कलुषित है, उसे प्रार्थना शुचिता का प्रशस्त पथ दिखलाने में समर्थ है।

'जिसकी पाशविकता स्वयं के लिये अभिशाप है, उसे भी प्रार्थना, इन्सान बनाने में कृतकार्य है।'

जिसे स्वयं की कमजोरियाँ अपने जाल में फाँसे रहती है उसके लिये भी प्रार्थना शक्ति का अक्षय भण्डार है।

जिसका हृदय कुलिश से भी कठोर है और जो इस कठोरता से बचने का उपाय खोजते-खोजते थक गया है; उसके लिये भी प्रार्थना 'अहिंसा परमो धर्म' का संदेश लिये है। प्रार्थना में यह गुण है कि वह सबको यही सिखाती है कि सभी प्राणी समान हैं और उन्हें जीने का अधिकार भी समान है।

और अशांति का शमन करनेके लिये भी प्रार्थना रामबाण है। जिसे जीवन की जटिल समस्याओं ने बुरी तरह व्यथित कर रखा है, उसकी अशांत प्रकृति को शांत करने के लिये प्रार्थना का आह्वान किया जा सकता है।

प्रार्थना के रूप क्या-क्या हो सकते हैं और उन रूपों की कौन-कौन सी विशेषताएँ हो सकती हैं--यह जान लेना भी आवश्यक है। दूसरे शब्दों में-'प्रार्थना के कितने भेद हैं' यह भी कहा जा सकता है। सबसे पहले देखने की बात यह है कि प्रार्थना के कितने रूप सम्भव हैं ? मेरी दृष्टि में प्रार्थना के दो रूप द्रष्टव्य हैं---

(१) प्रार्थना का व्यक्तिगत रूप,
(२) प्रार्थना का सामूहिक रूप,

महाकवि गेटे ने जिस प्रकार ज्ञानार्जन हेतु एकान्तवास नितान्त आवश्यक बतलाया है उसी प्रकार प्रार्थी के लिये अकेले रहकर प्रार्थना करना अभिप्रेत समझा जा सकता है। इसको आत्मपरक प्रार्थना की संज्ञा भी दी जा सकती है। ऐसी प्रार्थना सभी को करनी चाहिये।

व्यक्तिगत प्रार्थना करने वालों के लिये सामूहिक प्रार्थना का भी कम महत्व नहीं है। सामूहिक प्रार्थना से ही सामूहिक जीवन का निर्माण होता है। फिर वर्तमान समय में तो सामूहिकता की ओर भी अधिक आवश्यकता प्रतीत होती है। हजरत मुहम्मद साहब ने मस्जिद में मुसलमानों के लिये सामूहिक नमाज की विधा प्रस्तुत की। आजकल विद्यालयों में भी पढ़ाई प्रारम्भ होने से पूर्व सामूहिक प्रार्थना का प्रचलन है। 'संघेशक्ति कलियुगे' के अनुसार भी प्रार्थना सामूहिक होनी चाहिये। इससे मनुष्यों को एक साथ आपस में प्रेम और मेल से रहने की प्रेरणा मिलती है। सर्वात्म शुद्धि और सच्ची शक्ति

प्राप्त करने के लिये सामूहिक प्रार्थना की आज के युग में कितनी आवश्यकता है-अकथनीय है। प्रार्थना के मर्म को समझने के लिये ज्ञान का आदान-प्रदान करने के लिये समूह की अनिवार्यता और भी समीचीन प्रतीत होती है।

प्रार्थना चाहे व्यक्तिगत रूप से की जाए अथवा सामूहिक रूप से की जाए, और यदि इसका कोई अन्य रूप भी बन सकता हो तो भी प्रार्थना, प्रार्थना ही कहलाएगी। बात तो प्रार्थना करने की है। यह विवाद उठाना व्यर्थ है कि प्रार्थना किस रूप में की जाए? प्रार्थना का जो रूप जिसको इष्ट हो और अपने अनुकूल जान पड़े, वही रूप उसके लिये उत्तम माना जा सकता है। लेकिन यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि अनेकता में ही एकता और एकता में ही अनेकता होनी चाहिये तभी जीवन का वास्तविक आनन्द मिल सकेगा। हमारे भारत की यही विशेषता रही है। इसी विशेषता को ध्यान में रखकर प्रार्थी को ईश्वर से प्रार्थना करने में संकोच नहीं करना चाहिये ऐसा करने से प्रार्थी का कल्याण तो होगा ही साथ ही दूसरों के कल्याण होने की सम्भावना का होना भी कुछ कम सुखद नहीं होगा। स्वर्ग की जो रंगीन कल्पनाएँ की जाती हैं, उनका आभास प्रार्थना के अलौकिक प्रकाश में सरलता से मिल सकेगा।

यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि प्रार्थना करने के लिये कौन सा समय उचित है और कौन सा अनुचित है? इसका उत्तर यह कहकर दिया जा सकता है कि प्रार्थना दिवस अथवा

रात्रि में किसी भी काल या कहीं भी आरंभ की जा सकती है। किन्तु सर्वोत्तम समय ब्राह्म मुहूर्त वेला अर्थात् प्रातः ४ बजे से लेकर सूर्योदय तक को माना जाता है। क्योंकि इस काल चतुर्दिक नवीनता का संचार रहता है। फिर संध्या में जबकि रात्रि और दिवस मिल रहे होते हैं। इस प्रकार दिन में कम से कम दो बार तो प्रार्थना अवश्य ही करनी चाहिये। इससे अधिक अपनी सुविधा एवं अवकाश पर निर्भर है। मुसलमानों में तो दिन में पाँच बार नमाज का पढ़ने विधान है। प्रार्थना चौबीस घंटे में जितनी बार भी करली जाए, उतना ही अच्छा है। उसी के अनुसार जीवन का विधायक पहलू सुदृढ़ होता है।

प्रार्थी को प्रार्थना के लिये अपना हृदय मलिन नहीं होने देना चाहिये। यदि इसके हृदय में मलिनता भरी होगी तो वह तदाकार तो कभी हो ही नहीं सकता और न प्रार्थना के योग्य ही समझा जा सकता है। प्रार्थना के लिये शुद्धि का होना प्रार्थी के जीवन में आत्मिक शक्ति को बढ़ाने के लिये इतना ही आवश्यक है जितना कि उपवास आवश्यक समझा जाता है। आत्मा का आहार प्रार्थना को ही ही माना जा सकता है। इसी से आत्मिक भूख मिट सकती है। इसी में मानवता का शुभ संदेश सन्निहित है। प्रार्थना सभी के लिये अपरिहार्य होनी चाहिए।





श्रीनाथजीकी यात्रा

लें०—श्रीराम पाटील

दीवाली के अवसर पर गोवर्धन पुजा का पर्व भारत भर में भिन्न २ रूप में मनाया जाता है। गोवर्धन पूजा याने समता क्रान्ति का सन्देश।

गोवर्धन पूजा का उत्सव नाथद्वारा में विशेष उत्साह से मनाया जाता है। इसे अन्नकूट भी कहते हैं। अन्नकूट का उत्सव नाथद्वारा में दीवाली के दूसरे दिन मनाया जाता है। इसको मेवाड़ में 'खेंकरा' कहते हैं।

नाथद्वारा राजस्थान के चित्तौड़गढ़ स्टेशन से पचपन मील पश्चिममें स्थित है। वहां श्रीनाथजीका प्रसिद्ध मन्दिर है। श्रीनाथजी याने गोपीनाथजी। श्रीनाथजीके दर्शन के लिये वहां सालभर में हमेशा ही मेला सा लगा रहता है। नाथजी की आर्थिक संपन्नता अपूर्व है। राजस्थानी जनों का मन बड़ा श्रद्धावान् होता है। नाथद्वारा में अन्नकूट, जन्माष्टमी, होली आदि उत्सव बड़े धूमधाम से मनाये जाते है। मेवाड़ में चार साल के वास्तव्य में मुझे कई बार ये उत्सव देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। उससे जो आनन्द प्राप्त उसको शब्दबद्ध करना आसान नहीं है।

चित्तौड़ से प्रस्थान करते वक्त साथ में खाने पीने की चीजें लेने की कोई जरूरत न थी। क्योंकि मेवाड़ में महंगाई अभी अपनी चरम सीमापर नहीं है। लेकिन साथ में ओढ़ने के लिये कुछ गरम कपड़े रखना जरूरी है। दीवाली के वक्त भी मेवाड़ में काफी ठण्ड रहती है।

रेल्वे स्टेशन पर उतर कर बस से नाथद्वारा शहरमें जाना पड़ता है। शहर स्टेशन से सात मील दूर है। रास्ते में अरावली की नन्हीं नन्हीं पहाड़ियां नजर आती हैं। इन उठानों के बीच में हलके पीले रंग के मिट्टी के खेत गन्ने से लहलहाते नजर आते हैं। मेवाड़ में मक्की, गेहूँ और गन्ना होता है। सड़क के दोनो ओर गन्ने के खेत प्रदेश की शोभा बढ़ाते हैं।

मोटर से उतरते ही होटल में जाकर पहले नास्ता कर लिया। सुबह गरम दूध और जलेबी का नास्ता राजस्थानी जनों को बहुत भाता है। जैसे पंजाब की लस्सी वैसे राजस्थान का दूध-जलेबी एक राष्ट्रीय पदार्थ है। दूध में रबड़ी डालकर खाना भी वे बहुत पसन्द करते हैं। दूध पीने के लिये अभी भी मिट्टी के कुल्हड़ ही दिये जाते हैं, जिसे बाहर से आनेवाले बहुत से यात्री पसन्द नहीं करते।

राजस्थान की आर्थिक सम्पन्नता जैसी प्रसिद्ध है, वैसी धर्म परायणता भी। नाथद्वारा जैसे छोटे से शहर में भी बड़ी बड़ी धर्मशालायें हैं। बड़े बड़े भवन पत्थरों के बने हुये है। पत्थरों के भवन राजस्थान की अपनी विशेषता है। पत्थर

फिर वह लाल, काला, सफेद, गुलाबी चाहे जैसा हो वह भवन बनाने के काम में जरूर आयेगा। पत्थर में कलात्मकता आयेगी और भवन में भव्यता। इस बात के सबूत शहर में से होते हुये मन्दिर की ओर जाते वक्त बार बार मिलते हैं। रास्ते और सड़कें कम चौड़ी हैं। दोनो तरफ के ऊँचे भवन उन रास्तों को और भी तंग और गहरे बनाते हैं। इन रास्तों पर भीड़ में चलनेवाले आदमी देखकर लगता है, मानो वे किसी गहरे और तंग दर्रे में से गुज़र रहे हैं।

मेवाड़ में ही नहीं वरन् राजस्थान में यह रिवाज सा है कि मकान के निचले हिस्से में कोई वास्तव्य करता नहीं। निचले हिस्सों में साधारणतः दूकानों के लिये व्यवस्था होती है यह उनके वाणिक वृत्ति का सबूत है। नाथद्वारा के भवन भी इसके लिये अपवाद नहीं है। जिस रास्ते से या गली में से होकर जाइये, उधर ही बाजार और दूकानें नजर आती हैं। चाय, दूध, मिठाई, किताबें, चित्र, चुड़िया, मुर्लिया, सोना-चांदी के जेवरात ऐसी सब तरह की छोटी बड़ी दूकानें नजर आती हैं।

नाथद्वारा छोटा सा शहर है। इसका महत्त्व श्रीनाथजीके मंदिर की वजह से ज्यादा है। नाथद्वारा वैसे भारत के पुराने पवित्र स्थानों में से नहीं है। मथुरा, हरिद्वार, प्रयाग, काशी और पुष्कर के सामने यह स्थान शिशु समान है। नाथजी का मन्दिर छोटा और सादा है। बाहर से देखने वाले को विशालता और सम्पन्नता का अन्दाजा नहीं लग सकता। चूँकि

यह गोपीनाथजी का मन्दिर है, इसलिये भक्तों को इसके पूरे दर्शन एकदम नहीं हो सकते। कुरुक्षेत्र में अर्जुन को विराट् रूप दिखानेवाले कृष्ण ने बचपन में गोप गोपियों को क्या अपना पूर्ण रूप दिखाया था? आखिर गोपाल ही ठहरे वह। उनका रूप अदृश्य, अनन्त है। वह भक्त को ही ढूँढ़ निकालना चाहिये। गोपालजी को भक्तों के साथ आंख मिचौली खेलने में मजा आता है। देखिये, ढूँढ़कर जब भक्त मीरा थक गई, तब उसने विनती की थी कि,

प्यारे दरशन दीज्यो आय, तुम बिन रह्यो न जाय।

ढूँढते हुये वह वृन्दावन तक चली गई, मगर कन्हैया को न देख सकी।

नाथजी नाथद्वारा में कैसे प्रकट हुये, इसकी भी एक बड़ी मनोरंजक कहानी है। नाथद्वारा में स्थित नाथजी की मूर्ति मूल वृन्दावन की है। वहां बल्लभी सम्प्रदाय के भक्त गणों ने उनकी अच्छी प्रतिष्ठा रखी थी। लेकिन बादशाह औरंगजेब के वक्त बुतशिकनो की बुत परस्तों पर गैरमर्जी हो गई। यह डर पैदा हो गया था कि कहीं वृन्दावन के नाथजी पर भी गैरमर्जी का प्रहार न हो जाय। इसलिये बल्लभी सम्प्रदाय के तत्कालिक मुख्य विठ्ठलनाथजी ने मूर्ति की रक्षा करने का निर्णय किया। मूर्ति को गाड़ी पर लादकर सुरक्षित स्थल की ओर प्रस्थान किया।

जिस भगवान् के बल पर भक्तों को अभयदान मिलता था, जिसके बल पर मीरा ने निडर होकर राणाजी को, 'सिसोदिया

रुठयों तो म्हारा काई कर लेगा' ऐसा जवाब दिया था, उसी भगवान् को अब स्वयं की रक्षा के लिये भक्तों पर निर्भर रहना पड़ा। खैर, लेकिन वक्त बांका था, इसलिये नाथजी निकल पड़े।

लेकिन ऐसे वक्त भगवान् को आश्रय देकर जहांपनाह औरंगजेब की गैरमर्जी लेना भला कौन पसन्द करेगा? मार्गक्रमण करते करते नाथजी आखिर मेवाड़ में प्रवेश कर गये। मेवाड़ में प्रवेश करते ही नाथजी अश्वस्त हो गये। उनको भरोसा था कि मेवाड़ में उनको जरूर आश्रय मिलेगा। वह जानते थे कि मेवाड़ याने तेज, दिव्य और कठोर कर्तव्य की अहंमन्यतापूर्ण प्रतिज्ञा है। उसका असिधैर्य निस्तेज जरूर हुआ है लेकिन मनोधैर्य अभी तक कायम है। इसलिये नाथजी ने मेवाड़ में वास्तव्य करना तय किया। मेवाड़ के राणा ने रक्षा का आश्वासन दिया।

लेकिन सिर्फ एक सुरक्षित स्थान समझकर ही नाथजी ने मेवाड़ में वास्तव्य किया हो, ऐसा समझना गलत है। सही कारण कुछ और ही था। वह था प्रायश्चित करने का।

सच तो यह है कि वृन्दावन से निकले गोपाल को स्वगृह में याने द्वारका में जाकर विश्राम करना चाहिये था। लेकिन मेवाड़ में आकर उनके रथके पहियों ने आगे चलनेसे बिलकुल इन्कार कर दिया। नाथजी अचरज में पड़ गये। भजन की ध्वनि उनको सुनाई दी।

सुनी मैं हरी आवन की बात।

अरे, यह क्या ? मेरे गुप्त आगमन की बात का किसको पता लग गया। उन्होंने ध्यान देकर सुना। वाह, यह तो भक्तन मीरा की आवाज है। हां, इसी मेवाड़ के राणावंश की तो वह कुलवधी। फिर भगवान् ने सुना—

वहुत दिन पै प्रियतम पायो, विछुड़न को मोहि डर रे।

मीरा को डर था कि बहुत दिन बाद मिले भगवान् का कहीं वियोग न हो जाय। मीरा के प्रेम ने उनको स्थानबद्ध कर दिया। इसलिये भक्त की प्रार्थना पर नाथजी ने मेवाड़ में वास्तव्य करने का निश्चय किया। मथुरा से प्रस्थान करते वक्त उनका अन्तस्थ हेतु मीरा के दर्शन करने का था। हेतु उन्होंने गुप्त रखा। क्योंकि वह तो अपने जमाने के माने हुये कूटनितिज्ञ थे।

इस तरह मेवाड़ में वास्तव्य करके नाथजी ने अपने किये का प्रायश्चित कर लिया। कैसा प्रायश्चित्त !

मेवाड़ में नाथजी का आगमन तो सत्रहवीं शताब्दी में हुआ है। लेकिन इसके पूर्व पन्द्रहवीं शताब्दी में मेवाड़ के राणावंश में भक्त मीरा का आगमन कुलवधू के रूप में हुआ था। वह नाथजी की अनन्य भक्त थी। भक्ति और क्रांति का संदेश वह लाई थी। उसने नाथजी को कई बार बुलाया, मगर नाथजी न आ सके। वह कहती थी, 'आवू आवू कहां गया सांवरा, कर गया कौल अनेक।'

मगर वह न आये। मीरा स्वयं वृन्दावन जाकर कहने लगी—'मीरा कू प्रभु सच्ची दासी बनाओ,
झूठे धंधा सू म्हारा फँदा छुड़ाओ।'

फिर भी मीरा की विनती न मानी गई तब उसने फिर कहा—मीरा के प्रभु जनम जनम के साथी।

भक्त की इस प्रतिज्ञा का ध्यान आते ही नाथजी आगे न बढ़ सके। नाथद्वारा में उनको स्थिर होना पड़ा। यही उनका प्रायश्चित है।

जहांपनाह औरंगजेब की नामर्जी की पर्वा न करते हुये महाराणाने नाथजी को वास्तव्य की अनुमति दे दी। महाराणा ने मन्दिर को पांच लाख रुपये की जागीर और खर्चे के लिये तीन लाख रुपये मंजूर किये। कोटा, प्रतापगढ़ रियासतों के राजाओं ने एक लाख रुपये आय वाले गांव मन्दिर को जागीर में दिये। व्यापारी आय पर मन्दिर के लिये विशेष कर मान्य किया गया। इस तरह नाथद्वारा में श्रीनाथजी के मन्दिर की प्रतिष्ठापना हुई। जिस भूमि को मीरा ने अपनी भक्ति से सराबोर किया उसी भूमिमें वास्तव्य करनेका भाग्य श्रीनाथजी को प्राप्त हुआ।

नाथद्वारा के मन्दिर का अन्तस्थ प्रबन्ध तभी से वल्लभी सम्प्रदाय के गुरु के अधीन है। वल्लभी सम्प्रदाय से मन्दिर को सलाना तीन लाख रुपये मिलते हैं मन्दिर का रोजाना का खर्च एक हजार रुपये से ज्यादा का है।

मन्दिर के मुख्य गुरु को महन्त श्री तिलकरायजी कहते हैं। उनका अधिकार परम्परा से चलता है। इस वक्त महन्त तिलकराय श्री गोविन्दलालजी है। मन्दिर की व्यवस्था पर महाराणा साहब की नजर रहती है। महन्त की मदद के लिए एक वैष्णव समिति है।

नाथद्वारा लाखों वैष्णव भक्त जनों का श्रद्धास्थान है। गुजरात, कच्छ, सौराष्ट्र और अफरीका तक के भक्तगण नाथजी को हजारों रुपये का दान रोजाना चढ़ाते हैं। इसलिए नाथजी का भण्डार भारत के सम्पन्न देवस्थानों में से एक है। १९५७ में जब महन्त श्री जवाहिरातों की कीमत आंकने के लिये दिल्ली जा रहे थे तब उनके पास तीन मोटर ट्रक हीरे-जवाहरात और अन्य कीमती चीजों से भरे हुये थे। इससे भण्डार की संपन्नता का अंदाजा लग सकता है। लेकिन प्रत्यक्ष नाथजी का मंदिर जैसा पुराना नहीं है, वैसा वह भव्य और विशाल भी नहीं है। स्थापत्य कला की दृष्टि से उसकी तुलना दक्षिण के मंदिरों के साथ नहीं की जा सकती। मंदिर का बाहरी सादापन कृष्ण के जीवन से अच्छा मेल खाता है। भगवान् कृष्ण समता के पुजारी थे। सादा रहन-सहन और ऊँचे विचार उनका आदर्श था। लेकिन नाथद्वारा में मंदिर के बाहरी और अन्तस्थ रूप में बहुत विरोध है। अपने प्रत्यक्ष जीवनकाल में कई बार राज्योपभोग के मोह को त्यागनेवाले श्रीनाथजी के, नाथद्वारा में स्वयं के लाखों रुपयेके हीरे, मोती और अन्य कीमती आभूषण हैं। उनके लिये रोजाना हजार

रुपये से भी ज्यादा कीमत का भोग, प्रसाद, पूजा और दान का खर्चा होता है।

मन्दिर की ओर जाते वक्त जनमानस में व्याप्त उत्साह के दर्शन होते थे। पहले ही दीवाली का त्योहार तिसमें खेंकरा का उत्सव। स्थानीय जनता का उत्साह बाहरसे आये यात्रियों की तुलना में कुछ ज्यादा ही नजर आता था।

केशरिया साफा, धोती, जोधपुरी गलाबन्ध कोट, गुच्छेदार मूंछ ऐसे पहराव में मेवाड़ी युवक चलते-चलते 'जयरामजी री सा' कहकर अपने परिचितों का अभिवादन करते सुने जाते थे।

स्त्रियोंका उल्लास कुछ और ही था। लाल, पीले, गुलाबी, केशरिया रंग के सूती और रेशमी वस्त्र, घाघरे, चुनरिया, अंगिया परिधान किये महिलायें आ जा रही थीं। चमकते हुये किनारी गोटे के सलमा सितारे वस्त्रों की शोभा बढ़ा रहे थे। गहने उनके रूप और उत्साह में चार चाँद लगा रहे थे। मेहन्दी अपने रंग से हाथ और पैरों की सुन्दरता और कोमलता को बढ़ावा दे रही थी। घूंघट में से चंचल आंखों से झांककर युवतियां गर्दी में से अपनी सहेलियों को पहचानकर पूछतीं, 'क्यों दारी काई खरीदवा जाई री है।' और उत्तर पाकर आगे को बढ़ जाती।

इन दृश्यों को देखते हुये मंदिर की ओर हम जा रहे थे। बाजार में एक विशेष तरह की दूकानें देखने को मिलीं, जो

अन्य यात्रा स्थलों में देखने को नहीं मिलतीं। ये दुकानें हाथ से बनाये चित्रों की हैं। हाथ से चित्र बनाकर, चित्रकार इन चित्रों को बाजार में बेजते हैं। नाथद्वारा के चित्रकारों के चित्र राजस्थान और मालवा में बहुत बिकते हैं। सस्ते देखकर यात्री लोग भी इन चित्रोंको बहुत खरीदते हैं। प्रसिद्ध चित्रकार रविवर्मा के बाद नाथद्वारा के चित्रकारों को ही रसिक और भाविक जन ज्यादा पसन्द करते हैं। राजपूत शैली की राजस्थानी परम्परा के ये चित्र होते हैं। सस्ते और बहुत मिलते हैं। इसलिए इनकी बिक्री भी काफी होती है। नाथजी के चित्र, निसर्ग दृश्य, धार्मिक प्रसंग और देवी-देवता आदि का चित्रांकन इनमें होता है।

मन्दिर के पास आने पर ऐसा लगता हैं, मानो हम किसी जागीरदार के बाड़े के पास आ गये हों। बाहर का बड़ा दरवाजा देखकर यही अनुमान लगाया जा सकता है। मंदिर का विस्तार भी किसी जागीरदार के बाड़े से कम नहीं। प्रत्यक्ष नाथजीके लिये छाया करनेवाला मंदिर तो छोटा सा है।

बाहर के बड़े दरवाजे से अन्दर प्रवेश करते ही देखा तो चौक मैदान में खेकरा उत्सव की तैयारी चल रही थी। उत्सव शुरू होने में अभी देरी थी इसलिये हम अन्दर मंदिर देखने चले गये।

नाथजी का आसन छोटे से मन्दिर में है। सामने सभा मण्डप है, जिसमें खड़े होकर भक्तजन नाथजी के दर्शन करते

हैं। श्री नाथजी स्नान के लिये गए थे, इसलिए दर्शन बन्द था। यहां नाथजी का संसार यथावत् वैसे ही चलता है, जैसे प्रत्यक्ष उनके जीवनकाल में वह चलता होगा। वल्लभी सम्प्रदाय के भक्ति कल्पना की यही विशेषता है। नाथजी की सेवा, वह प्रत्यक्ष है यही समझकर की जाती है। इसमें नाथजी सोते हैं, भोजन करते हैं, क्रीड़ा करते हैं आदि सब क्रियाकलाप दिनभर चलते रहते हैं। जब किसी निजी कार्य में नाथजी व्यस्त होते हैं, तब वे भक्तों को दर्शन नहीं देते।

इसलिए इस वक्त हम भी दर्शन न ले सके। कृष्णजी अपने जमाने के माने हुये कूट-नीतिज्ञ थे। इस वक्त भी उनकी मुलाकात विशेष नियत समय पर ही ले सकते हैं, यह इस जमाने के किसी बड़े कूटनीतिज्ञ के समान ही है। इसे एक योगायोग ही समझना चाहिए।

कई भक्तगण इकट्ठे हुये थे। कुछ निराश होकर लौट गए। कुछ द्वार पर लगे बड़े ताले को ही प्रणाम करके खुश हो गए।

थोड़ी देर बाद नाथजी आ गए। तब फिर दर्शनार्थियों की भीड़ इकट्ठी हो गई। मण्डप में खड़े रहने तक की जगह नहीं थी। नाथजी को देखकर उनका जो रूप सामने आया उसका क्या वर्णन करें! उसका वर्णन करने में सिर्फ कवि ही समर्थ हैं। देखिये—

मुख मुरली मन मोहन मूरत, देखत नैन सिरावत हैं।
ग्वाल बाल संग वृन्दावन ते, वेणू बजावत आवत हैं॥

नटवर भेष अलौकिक शोभा, कोटिन मदन लजावत हैं।
निरखि निरखि बलवन्त श्याम छबि, रैन दिना सुख पावत हैं॥

यही मुग्ध रूप था, जिसे देखकर भक्तगण मुग्ध हो गये थे।

दर्शन लेकर मन्दिर का विस्तार देखने निकल पड़े। छोटे मन्दिर के चारों तरफ लम्बा चौड़ा बाड़ा और उसमें अलग-अलग मकान हैं। बहुत सारा भाग दुमंजिला है। फूल घर में हार तैयार होते हैं। प्रसाद गृह में प्रसाद तैयार होता रहता है। नाथजी को बढ़िया पकवानों के भोग चढ़ते हैं। कुछ भक्तगणों के लिये प्रसाद बाहर गांव और विदेशों में भी भेजा जाता है। प्रसाद गृह के सामने खुली जगह में बहुत सारे यात्रीगण बैठकर साग-भजी और अनाज साफ करने में मदद दे रहे थे। यह यात्री भक्तजनों का श्रमदान कहलाता है।

मुख्य बाड़े के बाहर सामने नाथजी का कृष्ण भण्डार है। इस भण्डार में अनाज, दही, दूध, घी और तेल यह सब भरा पड़ा है। वृन्दावनसे आये नाथजी प्रथम इसी जगह पर ठहरे थे। बाद में जब मंदिर बन गया, तब यहां से उठकर वे अन्दर मन्दिर में चले गये। तभी से वहीं विराजमान हैं।

तेल और घी से भरी बड़ी टंकियां देखकर भक्तजन अचरज में पड़ जाते हैं। नाथजी के लिये काम में आनेवाली केशर और कस्तुरी पिसने की जो चक्कियां हैं उनपर सोने और चांदी के पतरे चढ़े हुए हैं। नाथजी के लिए पानी की व्यवस्था एक विशेष कुयें से की जाती है। इस कुयें को कोई छू नहीं सकता। सिर्फ ब्रह्मचारी पुजारी स्नान करने के बाद ही इस कुएँ का पानी नाथजी के लिए भरते हैं।

मन्दिर देख चुके तब तक बाहर मैदान में खेकरा देखने

के लिए बहुत भीड़ इकट्ठी हो चुकी थी। इसको अन्नकूट भी कहते हैं। गोवर्धन पूजा कृष्ण लीला की स्मृतियों की झांकी है। कृष्ण ने गोपजनों को इन्द्र के एकाधिकार से मुक्त किया था उसी की यह स्मृति है। घर घर से आये ग्वाल--बालों के अन्न को एकत्र कर कृष्ण ने अन्नकूट बनाया। सबको बांटकर खा गये। यही अन्नकूट है। अन्नकूट और गोवर्धन पूजा याने प्रेम, समता और सहानुभूति का सन्देश। अन्नकूट याने नाथजी का समता रस से भरा प्रसाद। मैदान में गोबर का एक बहुत बड़ा सा गोवर्धन पर्वत बनाकर रखा गया था। बाद में एक साधारण ऊँची सी जगह पर गायों को सजाकर इकट्ठा किया गया। वहां से गायों को गोबर के गोवर्धन पहाड़ पर चढ़ाया गया। सब गायें जब पहाड़ पर चढ़ गई, तब चारों ओर से भक्त गणों ने गायों को वहीं रोक रखा। बाद में भीलों को गायों के बीच में पहाड़ पर भेजा गया। वहां जाकर भील गण गायों के साथ खूब नाचते रहे, गाते रहे। घुटनों तक गोबर में नाचते रहे। नाथजी के ग्वाल--बाल होने का आनन्द उन्होंने मनाया।

नाचने और गानेके बाद भीलोंसे बहुत सारे चावल लुटाए गये पकाये हुए चावलका भात एक बड़ी कड़ाईमेंसे उनको प्रसाद के रूप में बांट दिया गया। अन्नकूट का यह प्रसाद भील और अन्य भक्त जनों ने प्रेम से स्वीकार किया। इस उत्सव में अन्य नागरिकजनों के साथ भीलगण भी बड़े उल्लास से अपनी भूमिका अदा करते हैं। महन्त श्री पुजारी गणों के साथ सब प्रबन्ध करके प्रेम लुटते हैं। और इस बीसवीं शताब्दी में भी नाथजी को अपने बीच पाकर जीवन में उल्लास भर देते हैं।

'मीरा के प्रभु गिरिधर गोपाल' की तो यही विशेषता है। इसलिए उनका अस्तित्व भी 'संभवामि युगे युगे' रहता है।

एक गुजराती से अनुदित प्रसंग कथा

सत्यकाम जाबाल

मूल ले०-श्री धूमकेतु
अनुवादक-जगदीश चन्द्रिकेश

[कितनी ही कथाएँ ऐसी होती हैं जो कि पढ़ने के साथ ही समझने की भी होती हैं। सत्यकाम जाबाल की कथा भी ऐसी ही है। —सम्पादक]

एक स्त्री थी। उसका नाम था जबाला। वह बिचारी भरी जवानी में ही निराश्रित हो गई। इधर उधर दौड़-भाग कर दासी कर्म कर अपने पेट को पालती थी।

ऐसे भागा-दौड़ी के जीवन में ध्यान रहे तो ठीक, नहीं तो कहीं उल्टा सीधा पैर पड़ जाय तो जिन्दगी ही से हाथ धो बैठना होता है।

चतुराई हो तो इन भूल भुलइयों के मार्ग में से भी रास्ता मिल सकता है और अगर समझ न हो और मन व्यथित हो जाय तो मनुष्य इन्हीं में सारा जीवन हार जाता है। बाद में वह जीता तो है लेकिन मुर्दे की तरह।

जबाला का भी जबानी में कहीं उल्टा सीधा पैर पड़ गया। उसके एक लड़का हो गया। धीरे धीरे बढ़ने हुये उस लड़के का गुरु के घर जाने का समय भी आ पहुँचा।

उस समय आज की तरह के स्कूल नहीं थे। फीस नहीं थी। मोटे मोटे पोथे नहीं थे। आचार्य अपने अपने घरों

पर ही पाठशालायें चलाते थे। ऋषि मुनि होते थे तो जंगल में पाठशालायें चलाते थे। वहीं विद्यार्थी पढ़ने के लिये आते थे। वहीं रहते थे। वहीं खाते, पीते, गुरुका काम करते। विद्याध्ययन पूरा हो जाता था तब गुरु घर लौट जाने की आज्ञा दे देते। तब वह घर चले जाते थे परन्तु इतने समय में उन्हें पूरी विद्या मिल जाती थी।

अगर पहुँचाने योग्य हो तो गुरु दक्षिणा भेज देते थे। न पहुँचाने योग्य हों तो गुरु वैसे ही बिना कुछ लिये ही पढ़ाते थे। पढ़ाना आचार्य का धर्म था। आज की तरह उस समय यह उनकी नौकरी नहीं थी।

जबाला का पुत्र गुरु के घर जाने के लिये तैयार तो हुआ, लेकिन उस समय एक बात की बहुत जाँच की जाती थी। गुरु जिसे विद्या देते थे उसकी जाति देखकर विद्या देते थे। कहीं किसी कुजाति के हाथ विद्या न पड़ जाय इस बात का बहुत ध्यान रखते थे।

आज जिस तरह पुलिस की नौकरी के लिये सीने की माप ली जाती है ऐसी ही यह बात हुई बिना गुणवान के चाहे जिसे विद्या देना मना था। और यह तो होता ही नहीं था? इसमें तो वेद विद्या उसे ही मिलती जो पवित्र होता था।

जबाला के पुत्र ने गुरुके यहाँ जानेकी तैयारी की। लकुटी ली। पोटली बांधी। कोपीन लगाया। सतुआ खाने के लिये साथ बांधा। लेकिन उसने सुना कि गुरु मुझ से पहला ही सवाल पूछेंगे, तेरा क्या गोत्र है? तू किसका पुत्र है? किस वंश का है? तो मैं क्या जबाब दूँगा? मैंने तो पिताजी को

किसी दिन देखा नहीं। हैं भी कि नहीं इसकी भी मुझे खबर नहीं।

इसके लिये वह मां के पास पहुँचा। जाकर मां से कहा– "मा! मैं विद्याभ्यास करने जा रहा हूँ, लेकिन वहाँ मुझ से आचार्य मेरा नाम पूछेंगे, गोत्र पूछेंगे तो अपना गोत्र क्या है? अपनी वंशावलि कहाँ से निकली है? उसका क्या नाम है ?"

जबाला बोली हे बेटे! अपना गोत्र क्या और अपना वंश क्या? जवानी में भरण पोषण के लिये दासी का काम करते करते मैंने तुझे पाया है। तेरा नाम तो सत्यकाम है इसलिये अगर तुम से कोई पूछे तो कहना कि मैं जबाला का पुत्र सत्यकाम हूँ। सत्यकाम जाबाल।

लड़का तो बिलकुल निर्दोष था, उसे विद्या से लग्न थी। वह उसी लग्न ही लग्न में जाकर गौतमऋषि के पास खड़ा हो गया।

नन्हा सा शरीर है, सिर पर चुटिया रखी हुई है, हाथ में लकुटिया है, माथे पर भस्म लगी हुई है। यह नन्हा का बटुक साहस के साथ जाकर महामुनि गौतम के सामने खड़ा हो गया। दोनों हाथ जोड़कर आचार्य से बोला "हे भगवन्! मैं आपके पास विद्यार्थी की भांति आया हूँ मुझे स्वीकार करो।"

पढ़ने के लिये विद्यार्थी आये और उसे मना करना उस समय महापाप माना जाता था।

गौतम मुनि बोले " हे बालक! तू शान्त और सौम्य दिखलाई पड़ता है। तू भला आया। तेरा कौन सा गोत्र है ?"

सत्यकाम ने बहुत ही निर्दोष भाव से कहा–'हे भगवन्!

मेरा गोत्र क्या है यह तो मैं नहीं जानता। मैंने मां से पूछा तो उसने कहा "मुझे खबर नहीं। जवानी में मैं इधर-उधर भाग-दौड़कर पेट भरती थी, तब तेरा जन्म हुआ। अब जो कोई गोत्र तुझे भगवान् दे वही तेरा गोत्र है। इसलिये हे भगवन्! अपना गोत्र तो मैं जानता नहीं। मैं सत्यकाम, मेरी मां का नाम जबाला; इसलिये मैं सत्यकाम जाबाल हूँ।'

लड़के की बात सुनकर महामुनि गौतम विचार में पड़ गये इसकी कौन जात होगी यह किसे पता? लेकिन तुरन्त ही उनके दिल में एक नया विचार आया कि जो इतने निर्दोष भाव से सत्य बोलता है उसकी जाति क्या पूछना? जो इस प्रकार निर्दोष भाव से सत्य का आचरण करता है। वह ब्राह्मण ही है और क्या हो सकता है?

ब्राह्मण किसे कहते हैं-इसकी एक स्पष्ट गूँज इस कथा में मिलती है कि—

'जो निर्दोष हो, सत्य का अचरण करता हो वह ब्राह्मण।'

गौतममुनि ने तुरन्त ही कहा 'आ, बेटा! तू ही खरा ब्राह्म- है। विद्या तेरे जैसे के लिये ही है।" और उन्होंने उसे शिष्य की भांति स्वीकार कर लिया।

कथा को जरा समझा जाय तो अपने मन का समाधान हो जाता है जैसा कि कहीं न कहीं हरेक बात में होता है।

इस कथा में ही एक बात का समाधान है कि जन्म से ब्राह्मण हो और असत्य का आचरण करे, तो वह ब्राह्मण नहीं, इसका अर्थ यह हुआ कि आचरण ही सबसे मुख्य वस्तु है। यह जानने के बाद तो अब आचरण करना रह जाता है।

एक उद्‍बोधन—

आप कहां जा रहे हैं ?

ले०—रामस्वरूप खरे 'दीपक'

आप किसी सड़क पर चले जा रहे हैं। आपसे कोई पूछता है—'आप कहां जा रहे हैं ?' आपका उत्तर होता है, 'सब्जी लेने बाजार जा रहा हूं।' या किसी मित्र के घर जाने को कहते हैं। आप रेलगाड़ी में बैठे हैं। कोई पूछता है, 'आप कहां जा रहे हैं ? 'लखनऊ जा रहा हूं।' आपका उत्तर होता है। बाजार, मित्र के घर या लखनऊ जाने से पूर्व आपका कुछ निर्धारित लक्ष्य था। बाजार को निकलते समय आपने सब्जी लाने के लिये कुछ पैसे जेब में रख लिये होंगे। मित्र के घर जाने से पूर्व कुछ वार्तालाप सम्बन्धी विचार अवश्य ही आपके मन आये होंगे। लखनऊ को प्रस्थान करने से पूर्व भी इसी प्रकार कुछ भूमिका बना ली होगी। ऐसी अनेकों सामान्य बातें हैं, जिनमें आप कुछ लक्ष्य सामने रख कर कार्य करते हैं।

मैं भी आप से पूछता हूं, 'आप कहां जा रहे हैं ?' उपरोक्त उत्तर देने में तो आपको आपत्ति नहीं थी, पर यहां कुछ उलझन है। मैं कहां हूं और आप कहां हैं ? पता नहीं किस समय आपने मेरा यह प्रश्न सुना है। न जाने उस समय आपकी स्थिति कैसी है ? फिर भी मैं तो पूछता हूं, आप कहां जा रहे

है !' मेरा आशय आपसे सबसे लम्बी यात्रा के सम्बन्ध में पूछने का है। वह है जीवन यात्रा। क्या आपने अपने जीवन का कोई उद्देश्य समझा है ? क्या जीवन में कोई प्रमुख लक्ष्य निर्धारित किया है ? क्या आपने कभी विचार किया है कि यह मानव योनि किसलिये है ? हमारे परम पिता (प्रभु) ने हमको विशेष बुद्धि प्रदान कर पशुओं की श्रेणी से ऊपर उठाया है। उस बुद्धि का सम्यक् उपयोग कैसे किया जाना चाहिये ? इन्हीं बातों पर विचार करने पर हमें अपना गहन लक्ष्य दृष्टिगोचर होने लगेगा।

वास्तव में जीवात्मा का अन्तिम लक्ष्य मुक्ति प्राप्त करना है। वैसे विश्वके समस्त चराचर जीव एक जैसे ही हैं। सबका जीवात्मा उसी प्रखर ज्योति का अंश है। सभी का देह पंच-तत्व से निर्मित है। हां, विशेष बुद्धि धारण करने के कारण मानव को संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहा गया है मानव योनि मोक्ष मंदिर का सुगम मार्ग है। एक जन्म में यदि अभीष्ट सिद्ध नहीं होता तो भी यह चिंता या निराशा का विषय नहीं है। एक जन्म में भूमिका तो बन ही जायगी। जितने सोपान चढ़ना है वे चढ़ने ही पड़ेंगे, आज चढ़े या कल। अपने मार्ग में जितना बढ़ जायेंगे उतना ही कम चलने को रह जायगा। जितना आगे हम बढ़ते जायेंगे उतना ही हमारा साहस और विश्वास बढ़ता जायगा। जटायु एक दिन में ही उड़ान भर कर मोक्ष मन्दिर तक नहीं पहुंच गया था। हनुमान जी छलांग लगाकर इतने उच्च स्थान पर आसीन नहीं हुए थे। जिन्होंने

धार्मिक ग्रंथ देखे हैं वे जानते हैं कि वहां तक पहुंचने वालों के पास उनके अनेकों जन्म की पून्जी साथ थी। कोई एक दिन के व्यायाम करने से पहलवान नहीं बनता। वर्षों के सतत अभ्याससे देह सुदृढ़ व बलिष्ट बनती है। 'शुभमति शीघ्र" का सर्वमान्य उपदेश हम जानते हैं। उर्दू में एक मिस्रा है, 'गया वक्त फिर हाथ आता नहीं।' यह अकाट्य सत्य है। इसलिये आज ही और अभी विशेष विचार से कोई शुभ संकल्प करके अपने लक्ष्य की ओर प्रयाण कर दें। अपने लक्ष्य की ओर सतत लगन लगी रहनी चाहिये। आप रेलगाड़ी में बैठ कर लखनऊ जा रहे हैं। यदि मार्ग में आप यह भी भूल जांय कि आपको लखनऊ पहुंचना है, तो क्या होगा? इधर-से उधर भटकते फिरते रहेंगे। यही बात जीवन यात्रा की भी है। जहां-जहां आपको गाड़ी बदलना है अर्थात् जब-जब जो २ कर्तव्य पालन करने हैं तब २ औचित्य को अपनाइये।

यह लक्ष्य, वस्तुतः बहुत महान् है। इसका मार्ग दुर्गम है फिर भी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करते हुए जीवन यात्रा करना मानव का ही काम है। आपने लक्ष्य तो निर्धारित कर लिया, पर कुछ उपयुक्त साधनों का भी विचार किया है? गीता का सदुपदेश, 'कर्मण्ये वाधिकारस्ते माफलेषुकदाचन्' सदैव स्मरण रखना चाहिये। फल जो भी हो, कर्म करना कर्तव्य है। यह संसार एक रंग मंच है और समस्त जीव अभिनय कर्ता। जो कार्य जिसको दिया गया है वह उसे कुशलता से करता रहे, यही सफल अभिनय है। या यों कहिये

कि अपना कर्तव्य पालन करना ही अभिनय में सफलता है। सफल अभिनेताओं को पुरस्कार मिलता रहता है। सतत साधना से वे एक दिन नाटक मण्डली के निर्देशक बन जाते हैं। हम बराबर देखते हैं कि प्रत्येक युग में कुछ महापुरुष जगत् के मार्ग दर्शक होकर हमारे समक्ष आते रहते हैं। ऐसे ही महात्मा यथासम्भव विश्व का कल्याण करते हुए लीला संवरण कर महान् पद प्राप्त करते हैं। वे समस्त ब्रह्माण्ड के स्वामी होते हैं। प्रभु की दिव्य ज्योति से प्रस्फुटित वह किरण पुनः उसी प्रकाश में विलीन हो जाती है। इसी को चिरशांति कहते हैं।

अपना कर्तव्य पालन करते रहना ही महान् तपस्या है। इसी एक शब्द (कर्तव्य) के अन्तर्गत सब कुछ आ जाता है। गृहस्थी होते हुए आपका क्या कर्तव्य है ? आप अपने आश्रित सदस्यों को छोड़ कर पलायन कर दें, फिर भले ही आप विशुद्ध जीवन बिताते हुए वन में तप करते रहें; तो भी यह आपका कर्तव्य पालन नहीं है। पलायनवाद तो कर्मवाद के ठीक विपरीत दिशा में है। कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन का कर्तव्य युद्ध करना था। श्रीकृष्ण ने उनको विचलित देख कर कर्तव्य पालन का उपदेश दिया था। एक गृहस्थ का कर्तव्य अपने घर को ही स्वर्ग बना देना है। क्या गार्हस्थ्य में योग साधन असम्भव है ? कदापि नहीं, वरन् अत्यन्त सुगम है। हां, गृहस्थी में अधिकांश समय धनोपार्जन तथा अन्य अनेक छोटे-मोटे कामों में व्यतीत होता है। पर हर काम यदि

निस्वार्थ भाव से किया जाय और अपने किसी काम से दूसरों का अहित न हो तो वह काम तपस्या के रूप में ही जानना चाहिये। कहा है। (वर्क इज वरशिप) 'कार्य ही पूजा है।' भगवान् ने गीता में कहा है, 'तू अपने सब काम मुझे ही अर्पित कर दे, बस तू मुक्त हो जायेगा।' कितना सरल और सारगर्भित उपदेश है। दम्भ रहित होकर परोपकारार्थ जो कार्य किया जाता है वह भगवान् को अर्पित हो जाता है। अगणित महापुरुष इस पृथ्वी पर ऐसे अवतारी हुए हैं जिन्होंने समाज के सम्पर्क में रह कर, जग-जीव की सेवा करते हुए आत्मज्ञान प्राप्त किया हैं। सेवा को जो अपना कर्तव्य समझ लेते है वे ही महान् हैं। उनके जीवन को ही सफल जीवन कह सकते हैं।

आपको विश्व की सेवा करने का बीड़ा उठाना है। एक ही प्राणी को जब कभी आप कुछ सुख देते हैं, तो आपको जितना संतोष होता है वह आप स्वयं जानते होंगे। सभी के जीवन में न्यूनाधिक ऐसे अवसर आते रहते हैं तथा उस समय संतोष का अनुभव होता है। सेवा का श्रीगणेश आपको अपने घर से ही करना है। जिन अबोधशिशुओं को समर्थ बनाना बहुत कुछ आपके हाथ में है। उनकी सेवा करना, उनके लिये साधना करना आपका प्रमुख कर्तव्य है। बच्चों के चारित्रिक निर्माण के लिये सर्व प्रथम अपने आपको ही बनाना पड़ता है। अनुकरण प्रवृत्ति के आधार पर बच्चे स्वतः आप जैसे बन जायेंगे।

एक बात और कह दूं 'काल करे सो आज कर।' आपने ऐसे कितने ही वृद्ध जन देखे होंगे जो अन्तिम सांसें गिनते हुए मृत्यु शैय्या पर पड़े होते हैं। उस समय का उनका मनोभाव समझें। उनके जीवन पर विचार करें। अंत समय कितना पश्चाताप होता है। 'कुछ न कर पाये, हाय राम।' उनका वह क्षण हमारे लिये एक चेतावनी है, एक उद्‌बोधन है महान् शोक ! इस चेतावनी की अवहेलना करने के फलस्वरूप एक के पश्चात् एक उसी पश्चाताप की अग्नि में भस्मीभूत होकर यह दुनियां छोड़ते जा रहे हैं तथा कुसंस्कारों के बीजों की गठरी लेकर पुनः पृथ्वी पर आ रहे हैं।

सत्य का सहारा लेकर अपना कर्तव्य पालन करना जीवन का मूल मंत्र है। यही वह मार्ग है जो चौरासी लक्ष भूल भुलैयों में से निकाल कर वांछित लक्ष्य तक सकुशल पहुंचा देगा।



योग शिक्षा कक्षायें

श्रीरामतीर्थ योगाश्रममें योगाभ्यास की व्यवस्थित तथा विधिवत् शिक्षा दी जाती है। शरीर की आन्तरिक और बाह्य शुद्धि तथा स्वच्छता के लिये मलशोधन कर्म नेति, धौति, नौलि, बस्ति (आज की एनिमा), कपालभाति, त्राटक तथा शीर्षासन स्वस्तिकासन, पद्मासन, पूर्ण पद्मासन, ऊर्ध्व सर्वांगासन, हलासन, भुजंगासन, मयूरासन, वज्रासन, कुक्कुटासन, मत्स्येन्द्रासन, गोमुखासन आदि ८४ आसनों की शिक्षा दी जाती है। इन आसनोंमें से कुछ प्रमुख आसनों का सतत अभ्यास करते रहने से साधक शारीरिक शक्ति तथा मनोबलसे भरपूर होता है तथा रोगमुक्त दीर्घायु प्राप्त करता है अनुलोम, विलोम-सुर्यभेदन, चन्द्रभेदन, भस्त्रिका आदि प्राणायामोंकी भी सुयोजित शिक्षा दी जाती है। प्राणायाम के अभ्याससे साधक अपनी श्वास-क्रियापर पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है और परिस्थिति के अनुसार उसका संचालन करता है। यौगिक क्रियाओंके साथ सूर्य-नमस्कार, स्नायु-बल-संवर्धन, उदर बल संवर्धन आदि उत्कृष्ट व्यायाम भी सिखाया जाता है। कुण्डलिनी शक्ति जगाने और संयम आदिका अभ्यास कराकर साधकको शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति की ओर प्रवृत करता है। शनिवार को सायंकाल ५ बजे और रविवारको प्रातः १० बजे आश्रममें योगाभ्यास, प्राकृतिक चिकित्सा, शारीरिक और मानसिक उन्नतिकी ओर प्रवृत्त होने की प्रेरणा देनेकी दृष्टिसे संचालक या अन्य विद्वानोंके अनुभव और ज्ञानपूर्ण व्याख्यान भी होते हैं।

[जुलाई अंक से आगे]

सूर्य किरण चिकित्सा

लें०—डा. ज्वाला प्रसाद वर्मा
डी. एन. एच. एम. डी. एस.

—रोगी परीक्षा—

चिकित्सा के पूर्व रोग को पहिचानना अति आवश्यक है। रोग की जानकारी के लिये उसके कारण का भी जानना आवश्यक है। इस चिकित्सा पद्धति की यह विशेषता है कि यदि दवा ठीक है तो रोग घटने लगता है वर्ना रोग में वृद्धि होने लगती है। रोग दो प्रकार के होते हैं, एक शारीरिक दूसरा मानसिक। शरीर वात, पित्त एवं कफ के मेल से बना हुआ है।

वात प्रकृतिवाले पुरुष को स्त्री-संग की रुचि कम होती है। इसका कारण है अल्पधातु तथा वायु की प्रबलता होते हुये भी शरीर में शक्ति का अभाव। उसके बाल बहुत कम होते हैं। शरीर दुबला-पतला एवं निस्तेज होता है। वह वाचाल एवं चंचल होता है। वात के कुपित होने पर अनेक रोग होते हैं। वात प्रकोप की उत्पत्ति के कारण-कड़वी, तीखी, कसैली वस्तुओं का सेवन, ठण्डे अन्न का निरन्तर सेवन, जागरण, उपवास, शोक, व्यायाम, मल-मूत्रादि का अवरोधादि होते हैं।

वात प्रकोप के चिन्ह-मस्तक, नेत्र, भौंह, हृदय, ठोढ़ी, कान, गोदी, कंधे, जोड़, हड्डियों में दर्द, मलबद्धता, पेटफूलना, अनिद्रा, शरीर के जोड़ोंमें शैथिल्य, शरीर का पीला या लाल पड़ जाना, पित्त, पीठ, अण्डकोष, एवं गुदा में अनियमित पीड़ा होना है। यह पीड़ा कभी कम, अधिक, कभी असमात्र होता है।

पित्त प्रकृतिवाला पुरुष अधिक विषयी होता है। उसे शरीर का शृंगार अधिक पसन्द है। शरीर में धातु-वीर्य अल्प होता है। स्त्री-प्रसंग के पश्चात् नेत्रों में जलन, इन्द्रियों में पीड़ा, शिरदर्द आदि हो जाते हैं। शरीर से पसीना बहुत निकलता है। बुद्धिमान् परन्तु स्वभाव से क्रोधी होता है। तिल, शहद, दही, मिर्च, मसाला, गर्म वस्तुयें खाने पर या बहुत क्रोध होने पर, धूप में बैठने पर, उपवास करने पर पित्त कुपित होने पर कष्ट देता है। पित्त के कम होने से चक्कर, जलन, मूर्च्छा, प्यास, सुस्ती, पतले दस्त, पसीना अधिक निकलना, बकवास करना, चेहरा, नेत्र, मूल मूत्रादि पीतवर्णके हो जाते हैं, जी मिचलाता है। चेहरा श्वेत हो जाता है।

कफ प्रकृतिवाला पुरुष अधिक विषयी होता है। धातु की अधिकता होती है। वह दही, दूध, खारी, खट्टा, घी, तिल, दाहशामकपदार्थ, जड़ पदार्थ, तली हुई वस्तुयें, मधुर-रस का अधिक सेवन करता है। उपवास, कम सोना, अधिक व्यायाम करने से, कफ कुपित हो जाता है, जिससे शरीर में जड़ता, सूजन, शिथिलता, अधिक निद्रा, कब्ज, अरुचि एवं खुजली आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

'वात, पित्त, कफ के उत्पादक रस तथा उनका रंग'

मीठा, खट्टा मिश्रित रस कफ कहलाता है। शरीर को शक्ति एवं शांति देनेवाला है। परन्तु इसके अधिक सेवन करने से, मेदविकार, अग्निमान्दता, मूर्च्छा, मेद, वात तथा कुष्ठरोग हो जाते हैं। इसका रंग नीला है। आम्लरस से बना खट्टारस वात कहलाता है। अग्निप्रदीपक व उष्णवीर्य होता है। इसके अधिक सेवन से शरीरमें शिथिलता, चक्कर, आंखों के सामने अंधेरा, पीलिया शरीर पर दाग एवं फोड़े फुँसी हो जाते हैं। इसका रंग पीला है कसैला, चरपरा एवं कड़वा रस से बना रस पित्त होता है। यह अरुचिनाशक, कृमि, विषमज्वर एवं कफ विकार नाशक, शक्तिदायक, बुद्धिदायक, पाचक, एवं भीतरी विकारों को निकालनेवाला, फोड़ा, फुँसी, गांठ, सूजन को नष्ट करनेवाला होता है। इस रस के अधिक सेवन से प्यास, धातु एवं बल क्षीण होकर मूर्च्छा, कम्प, पीठ एवं कमर में पीड़ा होती है। इसका रंग लाल है।

नाड़ी परीक्षा

नाड़ी लक्षण एवं अष्ट विधान (नाड़ी, मल, मूत्र, शब्द, जिह्वा, स्पर्श, नेत्र और रूप परीक्षा) द्वारा रोग का पूर्ण रूप से निदान करने के बाद चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिये।

नाड़ी परीक्षा के लिये प्रत्यक्ष सैकड़ों रोगियों की नाड़ी पर अभ्यास करना चाहिये। तेल की मालिश, स्नान अथवा भोजन किये हुये मनुष्य की नाड़ी ठीक समय में नहीं आती।

इसलिये सबेरे उठकर थोड़ी देर बैठने वाले मनुष्य की नाड़ी देखनी चाहिये पुरुष के दाहिने तथा स्त्री के बायें हाथ को लम्बा करके रोगी के अंगूठे की जड़ के नीचे वैद्य को अपनी तर्जनी, मध्यमा और अनामिका उँगली नाड़ी पर रखकर देखनी चाहिये। यदि तर्जनी के नीचे नाड़ी उछलती हो तो बात दोष, मध्यमा के नीचे पित्त दोष, और अनामिका के नीचे कफदोष सूचक नाड़ी समझनी चाहिये नाड़ी एक ही होते हुये विभिन्न दोषों के कारण अलग अलग गतिवाली होती है। स्वस्थ मनुष्य की नाड़ी झूले की तरह धीरे--धीरे और पुष्ट गति से चलती है। वातदोष होने पर तिर्छी, सर्पाकार, तर्जनी को छूती है। पित्तदोष में नाड़ी मेंढ़क, कौवे या चिड़िया की तरह जमीन पर दोनों पाँव जोड़कर फुदकते हुये मध्यमा के नीचे मालूम देती है। कफदोष में नाड़ी बतक की तरह अधिक स्थिरता के साथ अनामिका के नीचे ज्ञात होती है। मिश्रित दोषोंमें मिश्रित गति से चलती है। त्रिदोष में तेज अथवा धीमी गतिसे तीनों उंगलियों के नीचे ज्ञात होती है।

सन्निपात की नाड़ी रह रह कर चलती है और तीनों उंगलियों के नीचे स्पष्ट मालूम देती है। कभी ठण्ड, कभी गर्म, कभी रुक रुककर चलती है। कभी कभी जल्दी चलकर एकदम बन्द हो जाती है। स्पर्श में कठिन, उलझनयुक्त, क्षणभर जगह छोड़कर फिर पुन जगह पर आनेवाली होती है।

साधारण ज्वर में नाड़ी गर्म और तेज चलती है। कामज्वर तथा क्रोध की नाड़ी अत्यंत वेगवती होती है। चिन्ता एवं भय

की नाड़ी क्षीण, मंदाग्नि तथा धातु-क्षीण होनेपर मंद एवं अल्प मालूम देती है।

गर्भिणी की नाड़ी गम्भीर, मन्द, पुष्ट एवं हल्की होती है। प्यासी, सोईहुई, सुखी एवं आलसी, सोकर तत्काल उठी स्त्री की नाड़ी बहुत ही स्थिर एवं मल-मूत्र से व्याप्त होनेपर ज्वर के समान चलती है।

असाध्य नाड़ी अंगूठे के मूल से छूटी, गहरी, क्षीण, अति-शीतल, तथा मंद होती है। गति छोड़कर शीघ्रता से चलने वाली नाड़ी एक ही दिन में प्राण लेनेवाली होती है। जो नाड़ी अत्यन्त कुपित, कुछ हिलती तथा लुप्त एवं पुनः चलने-वाली होती है उसे भी असाध्य समझना चाहिये जिसकी नाड़ी सर्प गति से चलती हुई गर्म मालूम देती है तथा कण्ठ में कफ जमा हो जाता है वह रोगी भी नहीं बच जकता। जिस रोगी के हाथ में नाड़ी मालूम न होकर केवल पैर में होती है और मुँह से साँस लेता है उसे भी मृत्यु के मुँह में समझना चाहिये।

नाड़ी की चाल साधारण आरोग्य मनुष्य की ७०-७५ होती है एवं शरीर का तापक्रम ९८. ४' होता है। एक डिग्री ताप बढ़ने पर नाड़ी एक मिनट में दस बार बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न अवस्था में निम्न प्रकार होती है।

अवस्था	नाड़ी की एकमिनट की चाल
जन्म के समय	१३०-१४० तक
प्रथम माह	१२०-१३०

छ: माह तक	१३०
वर्षभर तक	१२०
दो वर्ष तक	१००-११५
तीसरे वर्ष	९०-१००
सातवें वर्ष	८५-९०
चौदहवें वर्ष	८०-८५
प्रौढ़ावस्था	७०-७५
वृद्धावस्था	६०-७०

श्वासोच्छ्वास की गति प्रति मिनट निम्न प्रकार होती है।

अवस्था	श्वासोच्छ्वास की एक मिनट की गति
जन्मकालसे प्रथम-	
तीन सप्ताह	३१ से ५०
एक वर्ष के भीतर के बच्चे	२५ से ३५
दो वर्ष ,, ,, ,,	२८
४ से १५ वर्ष तक	२०-२५
युवावस्था एवं तत्पश्चात्	१८

आकृति परीक्षा

आकृति की दशा	रोग का अनुमान
(१) न ओंठ हिलते हों न आँख उठाकर-देखता हो	कमजोरी
(२) शर्मीला, आंख मिलाकर बात न करे	वीर्य क्षीणता
(३) चेहरे का रंग लाल	गर्मी की अधिकता
(४) रंग सीसा धातु के समान	पेट में फोड़ा

(५) चेहरे का रंग नीला एवं फीका	हैजा
(६) ,, ,, मटमैला	गर्मी या कब्ज
(७) ,, ,, मैला तथा फीका	तिल्ली का रोग
(८) रोगी भयभीत हो	पागलपन या कुत्तेका काटना
(९) निराश हो	पागलपन
(१०) सुस्ती तथा मूर्खता	मिर्गी
(११) भयावना चेहरा	पागलपन
(१२) बैंगनी रंग	मिर्गी के पूर्व का चिन्ह
(१३) लाल लाल धब्बे ओंठ नीला	खूनीक्षय (सिलरोग)
(१४) पीला	पीलिया

नेत्र परीक्षा

आंखों की दशा	रोग का अनुमान
(१) आंखों की चारों तरफ काला घेरा	प्रदर या प्रमेह
(२) पपोटे में सूजन	गुर्दा या नेत्ररोग
(३) लाल नेत्र	मस्तिष्कदाह जुकाम या नजला
(४) धुंधला दिखाई देना	मूर्च्छा या मृत्यु के पूर्व
(५) रोशनी बढ़ी हुई	पागलपन या वातप्रकोप
(६) पुतली का सिकुड़ना	अफीम का जहर या मस्तिष्कदाह
(७) पुतली का एक तरफ को खिंचना खराब चिन्ह है।	
(८) वस्तु आधी दिखाई दे	मस्तिष्क रोग या कब्ज
(९) चिनगारी दिखाई देना	,, ,,
(१०) आंख के सामने काला-भुनगा दिखाई देना	,, ,,

(११) पपोटे गिर जाना	फालिज की बीमारी
(१२) पलकों का फड़कना	वायुगोला
(१३) रोशनी कम होना	रगों की कमजोरी
(१४) आंख बैठ गई हो	हैजा या सिलरोग, उपवास
(१५) पुतली की स्थिरता	मृगीरोग, क्लोरोफार्मका प्रभाव
(१६) पुतली का फैलना	धतूरे का जहर, मोतियाबिंद,-जलोदर
(१७) पीली	पीलिया
(१८) पुतली का ऊपर चढ़ना	मस्तिष्क-प्रदाह
(१९) बच्चों की पुतली एक-तरफ खिचना	मस्तिष्क रोग, मुट्ठोंकी कमजोरी
(२०) प्रकाश का सहन-न होना	मस्तिष्क प्रदाह

सर्दी से नेत्र का रंग श्वेत, रूखा, धुयें के समान हो जाता है। नींद अधिक आती है। पानी अधिक निकलता है।

गर्मी से नेत्र लाल, गुलाबी, हरे से हो जाते हैं। नींद कम आती है।

नोटः— मस्तिष्क सम्बन्धी कार्य करनेवालों के नेत्र लाल होते हैं इसे रोग नहीं समझना चाहिये। इसके अतिरिक्त बच्चों एवं ठण्डे प्रदेश के निवासियों के नेत्र स्वभावतः नीले होते हैं।

वायु प्रकोप में नेत्र निस्तेज, धूम्रवर्ण, दाहयुक्त, चंचल, तथा भयानक हो जाते हैं। पित्त प्रकोप में पीले या मटमैले

रंग के, दाहयुक्त दीपक को देखने में असमर्थ। कफ विकार में सफेद, निस्तेज, स्रावयुक्त, तथा चिकने होते हैं। त्रिदोष में लाल एवं कालापन लिए हुए शिथिल होते हैं। नशेबाज की लाल एवं भूत-प्रेतबाधामें पागल की तरह घूमते हैं।

जिह्वा परीक्षा

वात दोष में ठण्डी, खुरदरी तथा फटी हुई पीले रंग की होती है। पित्त दोषमें लाल होते हुए भी कुछ काली एवं कफ दोष में श्वेत-गीली, चिकनी तथा फूली हुई। त्रिदोषमें काली, कांटेदार सूखी होती है। वात दोष में स्वादरहित, पित्त दोष में कड़वा, कफदोष में मीठापन मालूम देता है।

सर्दी से रंग काला, आर्द्र, पानी गिरना, प्यास कम, जीभ मोटी, हकलाहट एवं ऊपर सफेद तह जम जाती है।

गर्मी से लाल या पीला, फटी सी सूखी, पतली ऐंठन होती है। प्यास अधिक, छाले पड़ जाते हैं। ठण्डी वस्तु अच्छी लगती है। मसूढ़े सर्दी की अधिकता से सूज जाते हैं। पानी लगता है। लाल लाइन तथा सूजन पारे के जहर से और नीली लाइन सीसे के जहर से पैदा होती है। गर्मी की अधिकता से मसूढ़े लाल रंग के हो जाते हैं। सर्दी की अधिकता से थूक अधिक आता है। राल बहती है। थूक ठण्डा, गाढ़ा नीले रंग का झागदार होता है। गर्मी की अधिकता से थूक खुश्क, हल्का पीला नमकीन, राल झागदार होती है।

नाखून सर्दी से सफेद या काले और गर्मी से लाल या पीलापन लिए हो जाते हैं।

मल परीक्षा

सर्दी से सफेद, झागदार, फूला हुआ या गांठ दार होता है विना दर्द के बार-बार होता है। मात्रा में अधिक, जलन रहित, मवादयुक्त आता है। गर्मी से मल का रंग लाल या पीला, मल पतला और आंव की तरह पीला होता है। बार-बार जलन के साथ आता है

(१) जब मल में सफेदी हो तो आंतों का दर्द या पीलिया समझना चहिए।

(२) जब मल पीव युक्त या काला, लाली लिए हो तो शरीर दुर्बल हो जाता है ऐसा प्राय: आराम तलब लोगों को होता है।

(३) मल पतला हो तो अग्निमन्दता।

(४) मल लसदार या चिकना हो—चिकनी खुराक लेने वाले या शरीर का भाग धुलने से होता है।

(५) बदबूदार-शरीर के भाग गलने का चिन्ह है।

(६) मल सख्त हो-तो यकृत व गुर्दे की बीमारी या कब्ज।

नोट:-स्वस्थ मनुष्य का मल पीला सा, आसानी से आने वाला होता है।

वात दोष में मैला झागदार, पित्त दोष में पीला, हरा तथा दुर्गंध युक्त, तथा कफ दोष में सफेद। त्रिदोष सभी लक्षणों से युक्त होता है।

मूत्र परीक्षा

सर्दी की अधिकता से-सफेद, झागदार पतला, हरे रंग का, मात्रा, में अधिक, दुर्गंध रहित या जलन के साथ बार २ आता है। इच्छा बनी रहती है।

गर्मी की अधिकता से-लाल या पीला, थोड़ा २ बार २ जलन युक्त, बदबूदार होता है। इच्छा बनी रहती है।

(१) स्त्रियों का मूत्र पुरुषों की अपेक्षा अधिक सफेद व गंदला होता है।

(२) बच्चों व बूढ़ों का मूत्र गाढ़ा होता है।

(३) जवान आदमी २४ घंटे में १·२५ सेर से १·७५ सेर तक मूत्र त्याग करता है। परन्तु अस्वस्थ होने पर कम या अधिक। पानी कम या अधिक पीने से भी घट, बढ़ जाता है। पसीना आने पर भी कम होता है।

स्वस्थावस्था में मूत्र पानी के समान पतला पारदर्शक हल्का पीला होता है। मूत्र परीक्षा करने के लिए रात के पिछले पहर में २ घंटे रात रहते पर ही रोगी का मूत्र किसी शीशे या पत्थर के बर्तन में प्रथम एवं अन्तिम धार छोड़ कर लेना चाहिए। सूर्योदय के बाद परीक्षा करनी चाहिए। सफेद रंग का हो तो वात दोष, लाल या केशरी हो तो पित्त दोष एवं झागदार हो तो कफ दोष समझना चाहिए।

इसी प्रकार मिश्रित दोषों में मिश्रित रंग होते हैं। त्रिदोष

में कुछ कालापन होता है। इसके अतिरिक्त मूत्र को चार घड़ी तक धूप में रखना चाहिए। तदुपरान्त एक बारीक-घास के तिनके से तेल की बून्द मूत्र में डालनी चाहिए। तेल की बून्द तत्काल फैलने से साध्य, जगह पर ही स्थिर रहने पर कष्ट साध्य एवं बर्तन के पेंदे में बैठने पर असाध्य समझना चाहिए। वात विकार में सर्पाकार, पित्त विकार में छाती की तरह एवं कफ विकार में मोती के समान आकार बन जाता है

मूत्र	रोग का अनुमान
(१) मूत्रके पूर्व रक्त आना	मूत्रेन्द्रिय रोग
(२) रक्त के समान लाल	यकृत या गुर्दे की गर्मी
(३) बकरीके मूत्रके समान बू हो	अपचरोग
(४) बदला हो	पथरी रोग
(५) पानीका रंग एवं चींटी लगे	शक्कर जाना
(६) मूत्राधिक्य	वायुगोला
(७) मूत्रावरोध	गुर्दे का दर्द, हैजा
(८) मूत्रमें काला या धुयें सा रक्त	गुर्दे से रक्त आना
(९) अल्पमात्रामें रक्त वर्ण जलनयुक्त	दर्द गुर्दाके मुंहपर रसौली का चिन्ह है
(१०) मूत्रके अन्तमें रक्त लिए हो	मसाना या गुर्दे की पथरी
[११] मूत्र टपकते रहना कफ-युक्त, दुर्गंध से	धड़ के निचले भाग पर फालिज वृद्धावस्था की कमजोरी, पेडूके भाग की वृद्धि, मसाने की सुस्ती।

[१२] मूत्र की धार बारीक पुराना सुजाक

शरीर का रंग

सर्दी से काला, कड़ा, खुरदरा, मोटा व ठंडा हो जाता है रोंगटे खड़े हो जाते हैं। सुस्ती रहती है।

गर्मी से नीला, पीला, हरा, लाल, पसीजा हुआ, जलन, कमजोरी।

सांस से पंच तत्वों की पहिचान

एक सफेद शीशे पर नाक से सांस मारने पर निम्नांकित आकृतियां बनेंगी और तत्वकी अधिकता का ज्ञान होगा।

१–यदि आकृति	गोल हो तो	वायु तत्व	की	अधिकता	होती है।
२– ,,	चौकोर ,,	पृथ्वी	,,	,,	,,
३– ,,	तिकोनी ,,	अग्नि	,,	,,	,,
४– ,,	अर्द्ध चन्द्राकार ,,	पानी	,,	,,	,,
५– ,,	कान की हो ,,	आकाश	,,	,,	,,

नोट—पंच तत्वों का रंग पूर्व के लेख में बताया जा चुका है जिससे यह पता लग जाता कि कौन सा रंग बढ़ गया है, फिर भी जान लें कि वायु का रंग हरा, पृथ्वी का पीला, अग्नि का लाल, पानी का नीला, आकाश का नीला।

इसके अतिरिक्त सभी रंगों के कागज के टुकड़े काट कर रोगी के सामने रखना चाहिए। जिस रंग की उसे आवश्यकता होगी वही रंग पसन्द करेगा।

भोजनमें भी विभिन्न फल तरकारियों आदिका नाम बताकर

पूछना चाहिये यदि वह गर्म चीज पसन्द करेगा तो सर्दी, ठंडी चीजें पसन्द करेगा तो गर्मी की अधिकता समझनी चाहिये।

"सर्दी खुश्की के रोग और उनका स्थान"

मेदा, कमर, रान, कान, हड्डी, खाल, गर्दन से ऊपर के भाग, हिचकी, श्वास, मन्दाग्नि, अतिसार, वायुगोला, आंत, हैजा, गुर्दे के रोग।

"सर्दी तरी के रोग और उनका स्थान"

आमाशय, सीना, गला, सिर, जोड़, मेदा, आंतें, नाभि-स्थान।

'गर्मी खुश्की के रोग तथा शरीर में स्थान'

यकृत, प्लीहा, हृदय, नेत्र, समस्त शरीर एवं चर्म, नाभी से ऊपर का भाग।

'गर्मी तरी से रोग तथा शरीर में स्थान'

चर्बी, पेट बढ़ना, हड्डियाँ।

'देश का शरीर पर प्रभाव'

सदा पानी बहने वाले देश में कफ, गर्म खुश्क देश में पित्त तथा जंगली देश में वायु बढ़ा हुआ होता है।

शरीर के अंगों के रंगों के अनुसार औषधि'

अंगों के नाम	रंग	अंगों के नाम	रंग
१ चोटीकी जगह	गहरा नीला	९-हलक	गहरानीला
२ मुह	हल्कानीला	१०-हृदय	पीला

३-दांई आँख	पीला	११-मेदा	फालसाई
४-बांई आँख	गहरा नीला	१२-यकृत	हरा
५-दायाँ कान	हरा	१३आंतें	हरा
-बायां कान	लाल	१४-गुर्दे	हरा
७-दायां नथुना	नारंगी	१५प्लीहा	पीला
८-वांया	जामुनी	१६-फेफड़े	फालसई

१७-लिंग	लाल
१८-शरीर का बायां भाग	लाल
१९- ,, दायां ,,	गहरा नीला
२०- ,, सामने का भाग	—,,—
२१- ,, पृष्ठ का भाग	लाल

"वैद्यों के अनुसार दोषों की पहिचान"

वायुदोष–बुढापेमें दिन ढले या रात ढले खानेके बाद वर्षा की मौसममें नाभीके नीचे रहता है।

पित्तदोष–जवानी में दो पहर को खाते समय जाड़े गर्मी की मौसममें हृदय के नीचे रहता है।

कफदोष–बचपनमें सबेरे खाने के शुरू में बसत ऋतुमें हृदयके ऊपरी भागमें रहता है। क्रमशः



हमारी स्वस्थता

ले०—पूरनचन्द जैन 'सुमन' एम. ए. बी. टी.

आत्मविश्वास, स्वावलम्बन और राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों और दायित्वों को पूर्ण रूप से सफल बनाने के लिये समाज में प्रत्येक व्यक्ति का स्वस्थ रहना आवश्यक है। क्योंकि किसी भी राष्ट्र का उज्वल भविष्य उसके स्वस्थ नागरिकों के ऊपर निर्भर है स्वास्थ्य राष्ट्र और समाज की अमूल्य सम्पत्ति है।

"स्वास्थ्य माद्यं खलु धर्म साधनम्" इस सुभाषित के अनुसार व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन की सफलता अच्छे स्वास्थ्य के ऊपर ही निर्भर है। व्यक्तिगत वृद्धि और उन्नति की कुञ्जी स्वास्थ्य ही है। व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज और राज्य सभी की यह अभिलाषा रहती है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति निरोग एवं स्वस्थ रहे। स्वास्थ्य मुख्यतः दो प्रकार का होता है। प्रथम शारीरिक स्वास्थ्य और दूसरा मानसिक स्वास्थ्य। शारीरिक स्वास्थ्य उत्तम जलवायु, पौष्टिक भोजन, हल्का पानी, विशुद्ध आबहवा और व्यायाम आदि पर निर्भर रहता है तथा मानसिक स्वास्थ्य स्वस्थ मनोवृत्ति पर अवलम्बित रहता है।

स्वास्थ्य के बिना जीवन की सारी उपयोगिता, कार्यशीलता और आनन्द नष्ट हो जाता है। अस्वस्थ दशा में कोई भी काम भारी मालूम होता है और सदैव मानसिक तथा शारीरिक अशान्ति बनी रहती है। यदि किसी देश के नागरिक स्वस्थ और ताकतवर नहीं है तो वह राष्ट्र कभी भी उन्नति नहीं कर सकता। अतः समाज में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का भली भांति पालन करना आवश्यक है।

यदि कोई व्यक्ति समाजमें रहकर स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का उल्लंघन करता है। तो उसे प्रकृति उसी प्रकार दण्ड देती है। जिस प्रकार शासकीय नियमों का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को उस देश की सरकार देती है। स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमोंका उल्लंघन करने से रोगी मनुष्य को केवल मानसिक और शारीरिक पीड़ा का ही अनुभव नहीं करना पड़ता अपितु वह अपनी दैनिक आवश्यकताओंकी पुर्ति करने में भी अपने को असमर्थ पाता है। दूसरे, उस व्यक्ति के परिवार के एक-दो मनुष्यों को अपना दैनिक कार्य त्याग कर उसकी परिचर्या और देख भाल में बहुत समय व्यतीत करना पड़ता है जिससे राष्ट्रीय आय की क्षति होती है। इसके अतिरिक्त कुछ रोग ऐसे भी हैं जिनके समाज में फैलने का भय रहता है और पड़ोसी लोगों को रोगी एक चिन्ता का विषय बन जाता है। जब एक बार मनुष्य का स्वास्थ्य गिर जाता है तो उसे प्राप्त करने के लिये पर्याप्त धन और समय नष्ट करना पड़ता है और एक लम्बे समय तक विश्राम की आवश्यकता पड़ती है। इसलिये व्यक्ति का स्वहित, परिवार, निकटवर्ती समाज और अपने देश के

समाज के हित में स्वास्थ्य के महत्व को जानना और उसके अनुसार नियमित एवं संयमी जीवन व्यतीत करना अत्यावश्यक है। जीवन-मरण के बीच होनेवाले विभिन्न प्रकार के रोगों में स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों के पालन और उल्लंघन का बड़ा भारी हाथ रहता है। स्वास्थ्यरक्षाके लिये रोगप्रतिबंधक, रोग निवारक और स्वास्थ्य वर्धक साधनों को प्रयोग में लाना आवश्यक है।

हमारे शरीर का अस्तित्व शुद्ध और पौष्टिक भोजन पर निर्भर है। भोजन की गड़बड़ी से अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। भारतीय कहावत है—"जैसा खावे अन्न वैसा रहे मन" अर्थात् अन्न और जल की शुद्धता के अनुसार मन की पवित्रता रहती है। इसलिये भोज्यपदार्थ शुद्ध, सात्विक और पौष्टिक होना आवश्यक है। भोजन के साथ वायु और जल अपरिहार्य तत्व है। भोजन से हमारा शरीर विकसित, स्वस्थ और वलिष्ठ होता है। इसलिये भोजन सदैव ताजा नियत समय पर भूख लगने पर ही करना चाहिये। कभी भी भूख से अधिक नहीं खाना चाहिये क्योंकि इससे अजीर्ण हो जाता है और आलस्य छाया रहता है।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि बहुत से व्यक्ति दावतों, प्रति भोजों, पार्टियों और निमंत्रणों में लोभवश बहुत अधिक खा लेते हैं जिससे उनके शरीर में चर्बी बढ़ जाती है और पेट में विभिन्न प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। भूख से अधिक मात्रा में खा लेने पर कुपच हो जाता है। पेट फूलने लगता है

और कोष्ठबद्धता की शिकायत उत्पन्न हो जाती है। इसलिये निरोग रहने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को भूख से अधिक कभी भी नहीं खाना चाहिए और भोजन खूब चबा चबा कर करना चाहिए। संतुलित भोजन करने से सदैव स्वास्थ्य ठीक रहता है। संतुलित भोजन से तात्पर्य उस आहार से है जिसके ग्रहण करने से व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक विकास में कमी प्रतीत न हो। भोजन करने से व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक विकास में कमी प्रतीत न हो भोजन करने के पश्चात् दौड़ना, सवारी करना, व्यायाम, व्यवसाय, युद्ध, गायन-पठन, आदि क्रियाओं को एक मुहूर्त के लिए त्याग देना चाहिए।

सप्ताह में एक दिन का अथवा एक समय का उपवास करना भी स्वास्थ्य के लिये लाभदायक रहता है। शरीर के अन्दर छिपे हुये विकारों को निकालने, गहरे छिपे रोगों को निमूर्ल करने, रक्त को संशोधित करने, और शरीर को विश्राम देते हुये उसे नया करने के लिये उपवास एक गुणकारी साधन है। उपवास के दूसरे दिन हल्का भोजन करना चाहिये। अन्धाधुन्ध और विकार पूर्ण भोजन करने से लाभ के स्थान पर हानि होती है क्योंकि शरीर निर्विकार होकर फिर विकार पूर्ण होने लगता है। उपवास में जो कमजोरी मालूम होती है उसका कारण यह है कि पाचन क्रिया के स्थगित हो जाने से शरीर के अन्दर सिर्फ एक ही क्रिया जारी रहती है। विकारों का निकलना। शरीरके हर अंग से, हरकोषसे विकार निकल कर खून में आ जाते हैं और पसीना तथा पेशाब के

रूप में बाहर निकल जाते हैं। परिमित उपवास करने के बाद आंतों की ताकत तथा कार्य करने की शक्ति बढ़ती है एवं शरीर के भीतर के सभी विकार नष्ट हो जाते हैं। उपवास के दिन नीबू का रस पानी में मिलाकर दिन में २,३ बार पीने से लाभ होता है।

स्वास्थ्य की दूसरी सीढ़ी स्वच्छता है। शारीरिक स्वच्छ-ता से व्यक्ति का शरीर और मन स्वस्थ एवं प्रसन्न रहता है। शरीरकी भीतरी सफाईमें भोजनकी नली तथा आंतोंकी सफाई निहित है। मल के देरतक आंतों में रहने से, आंतें जरूरत से अधिक रस चूस लेती हैं। जिससे मल कड़ा हो जाता है और पेट साफ नहीं होता है। धीरे २ कब्ज की शिकायत हो जाती है और रोग बढ़ने लगता है कब्ज बड़ा भयंकर रोग है। इस रोग के रोगी को सदैव मानसिक असंतोष बना रहता है और किसी भी काम में जी नहीं लगता। बाह्य स्वच्छता में दांतों की सफाई आंख, कान, नाक, हाथ पैर और त्वचा की सफाई का समावेश होता है। प्रतिदिन नियमित समय पर मलमूत्र त्याग करने से और शरीर के सम्पूर्ण अवयवों की स्वच्छता का सदैव ध्यान रखने से मनुष्य शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार से स्वस्थ रहता है।

स्वास्थ्य रक्षा के लिये प्रतिदिन प्रातःकाल भ्रमण करना भी अति आवश्यक है। प्रातःकाल ओस की बूंदों से भीगी हरी-हरी घास पर नंगे पांव टहलना स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभदायक है। इससे सिरदर्द, कोष्ठबद्धता, गले का दर्द, नेत्र

रोग तथा पेट के समस्त रोगों में लाभ होता है। प्रतिदिन प्रातःकाल नियमित रूप से भ्रमण करने से शरीर में एक नई ताज़गी, फूर्ति और चेतना आ जाती है जो सारे दिन तक बनी रहती है। रक्त की वृद्धि होती है, बिगड़ी हुई पाचन शक्ति ठीक हो जाती है और मन प्रसन्न रहता है। प्रातःकालीन सूर्य की किरणें अपूर्व बलकारक तथा आरोग्यकारक होती हैं। किरणों के सेवन करने से विभिन्न रोगों के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। इसके प्रभाव से रक्त के लाल कण तथा श्वेतकण अधिक कार्य करने की क्षमता प्राप्त करते हैं।

स्वास्थ्य रक्षा के लिये प्रतिदिन प्रातःकाल नियमित रूप से व्यायाम करना भी आवश्यक है। शरीर को निरोग रखने के लिये परिश्रम करना ही होगा। व्यायाम स्वास्थ्य रक्षा और सम्बर्धन का प्राकृतिक उपाय है। जो लोग नियम से प्रतिदिन व्यायाम करते हैं वे स्वस्थ रहते हैं और आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं।

प्रातःकाल भ्रमण करना, विभिन्न खेलों को खेलना, आसन लगाना, तैरना, कसरत करना एवं किसी भी प्रकार का शारीरिक परिश्रम करना व्यायाम के विविध रूप हैं। इनमें से किसी भी प्रकार का व्यायाम नियमित रूप से करने से स्वास्थ्य ठीक रहता है। व्यायाम करने से फेफड़ों, मस्तिष्क, आमाशय, जिगर, आंत आदि संस्थानों पर भी हितकारी प्रभाव पड़ता है, फलस्वरूप शरीर निरोग रहता है। व्यायाम करने से शारीरिक शक्ति में अपूर्व वृद्धि होती है। शरीर की शक्ति

बढ़ाने पर ही स्वस्थ शरीर रोगों का प्रतिकार कर सकता है। नियमित रूप से व्यायाम करने से सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि हृदय मजबूत हो जाता है और खूनका दौरा स्वाभाविक रूप में होता रहता है। प्राणवायु फेफड़ों में पहुँचकर समस्त शरीर का पोषण करती है। पाचन क्रिया ठीक बनी रहती है, इसी कारण हमारा स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य बनता है जिससे हम हर क्षण प्रसन्न दिखलाई पड़ते हैं।

जो लोग व्यायाम नहीं करते और आलस में पड़े रहते हैं ऐसे लोगों का शरीर निस्तेज हो जाता है चेहरे पर कान्ति नहीं रहती, स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है। व्यायाम न करने से शरीर में चर्बी बढ़ जाती है। शरीर में चर्बी बढ़ जाने से स्नायु-संस्थान ढीले पड़ जाते हैं, जबकि व्यायाम करने से शरीर के सभी अंग स्वस्थ और सुडौल बनते हैं। आसन लगाने से शारीरिक एवं मानसिक शक्ति में वृद्धि होती है।

व्यायाम सदैव शक्ति के अनुसार ही करना चाहिये। शक्ति से अधिक व्यायाम करने पर लाभ के स्थान पर उल्टी हानि होने लगती है। जिस प्रकार अधिक भोजन कर लेने से शरीर स्वस्थ नहीं रह सकता, उसी प्रकार अपनी शक्ति से अधिक मात्रा में व्यायाम करना भी हानिकारक होता है। इसलिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्ति का अनुमान लगा-कर शक्ति से कम ही व्यायाम करे तभी लाभ हो सकेगा।

स्वस्थ रहने के लिए प्रतिदिन नियमित रूप से शीतल

जल से स्नान करना भी आवश्यक है। परन्तु व्यायाम के तुरन्त बाद स्नान नहीं करना चाहिए बल्कि थोड़ा विश्राम करने के बाद स्नान करना चाहिए। प्रतिदिन नियमित रूप से स्नान करने से शरीर स्वच्छ रहता है, पाकस्थली मजबूत होती है। किसी भी प्रकार के कीटाणु शरीर के अन्दर प्रवेश नहीं करने पाते तथा खुलकर भूख लगती है। स्नान करने से चित्त प्रसन्न रहता है, चेहरे पर रौनक बनी रहती है और उदासी दूर भाग जाती है। स्नान करने के बाद तौलिये से रगड़ २ कर शरीर को पोंछना चाहिए।

हमारे शरीर में सहत्तर प्रतिशत पानी है। शरीर का यह जलीय भाग मलमूत्र तथा पसीने के साथ बाहर निकलता रहता है। इसका सन्तुलन बनाए रखने के लिए थोड़ा पानी का होना नितान्त आवश्यक है। पानी में पेट साफ करने की असाधारण शक्ति है। वर्षा ऋतु में कम से कम जल का प्रयोग करना चाहिए, सर्दी में आवश्यकतानुसार तथा ग्रीष्म ऋतु में खूब जल पीना चाहिए। दिन भर में ५-६ गिलास पानी पीना बहुत जरूरी है। इससे आंतें ठीक प्रकार से काम करती हैं और व्यक्ति रोगी नहीं होता।

स्वस्थ रहने के लिए मनुष्य को कम से कम ६ घण्टे जरूर सोना चाहिए और रात्रि को अधिक समय तक जागरण करने से स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। रात्रि को मुँह ढककर सोने से फेफड़े कमजोर हो जाते हैं इसलिए रात्रि को सोते समय मुँह खुला रखना चाहिए। जिससे शुद्ध वायु का आवागमन हो सके। जिस कमरे में आप सोते हों, उसमें शुद्ध एवं ताजी वायु के आवागमन के लिये खिड़की या रोशनदान होने

आवश्यक हैं। मनुष्य की चिन्ताओं से विमुक्त होकर सोना चाहिए। चिन्ताओं से विमुक्त होकर सोने से गहरी तथा तथा अच्छी नींद आती है।

गहरी नींद सोने से प्रातःकाल नवीन स्फूर्ति और ताजगी मिलती है। और काम करने की नई शक्ति प्राप्त होती है। ग्रीष्म ऋतु को छोड़कर अन्य ऋतुओं में दिन को नहीं सोना चाहिये। स्वास्थ्य रक्षा के लिये विषैले एवं हानिकारक पदार्थों का उपयोग नहीं करना चाहिए। कुछ समय पूर्वतक वैज्ञानिकों की यह धारणा थी कि मांसाहार सबसे बढ़कर है किन्तु वर्तमान समय में यह बात सिद्ध हो चुकी है कि मांसाहार से मनुष्य में तामसिक वृत्तियों की वृद्धि होती है। अतः अब अधिकांश चिकित्सकों की यही सम्मत्ति है कि मांस के स्थान पर अन्न से ही शुद्ध और उत्तम प्रकार का प्रोटीन प्राप्त किया जाय। हमारे देश के कर्णधार महात्मा गांधी ने भी सदैव-शाकाहार पर जोर दिया। मांसाहार से व्यक्ति हिंसात्मक भावनाओं पर विजय प्रात नहीं कर सकता। आज समय, संस्कृति और देश की मांग है कि शाकाहार की भावनाओं और प्रवृत्त्तियों को प्रोत्साहित किया जाय।

स्वस्थ, सुन्दर, सुडौल तथा आकर्षक बनने के लिये मनुष्य को अपने दैनिक आहार में दूध और फल लेना भी उतना ही आवश्यक हैं जितना प्राकृतिक भूख लगने पर भोजन। दूध और फलों में विटामिनों की बाहुल्यता होती है। जिससे हमारा शरीर पुष्ट हो जाता है। हरी सब्जियों का उपयोग भी गुण कारक होता है। हरी सब्जियों में प्रकृति ने अनुपम विटामिनों का सम्मिश्रण किया है। हरी पत्तियों के सागों में

सबसे अधिक उपयोगी पालक के साग को माना गया है। पालक में विटामिन 'ए' 'बी' 'सी' और 'ई' के अतिरिक्त प्रोटीन, सोडियम; चूना, फासफोरस क्लोरिन तथा लोहादि पर्याप्त मात्रामें पाया जाता है। हरी सब्जियों में पाये जानेवाला खाद्-ओज रक्त के रक्ताणुओं में रंजक कार्य करते हैं। अधिकतर इनमें प्रोटीन उत्पादक एमिना-एसिड पाया जाता है। हरी पत्तियों वाली सब्जियों में लवण खनिज भी बहुत मात्रा में पाया जाता हैं जो गुणकारी होता हैं। स्वास्थ्य के नियमों पर चलने से मनुष्य स्वस्थ एवं सुखी होकर शतवर्षायु का होता है और सदैव प्रसन्नता का अनुभव करता है। प्रसन्नचित्त रहने से मस्तिष्क अच्छा काम करता है और रोग कोसों दूर भाग जाते हैं जैसा कि शास्त्रों में लिखा है।:—

वामशायी द्वि भुञ्जानः षणमूत्री द्वि पुरीषकः।
स्वल्प मैथुन कारी च शत वर्षाणि जीवति॥

अर्थात् वाम पार्श्व से लेटने वाला; दो बार नियमित रूपसे भोजन करनेवाला, छः बार पेशाब (मूत्रत्याग) और दो बार मल त्याग करने वाला तथा कम मैथुन करने वाला व्यक्ति सौ वर्ष तक जीवित रहता है। प्रसिद्ध विद्वान् बाण भट्ट ने भी आरोग्यता सम्बन्धी निम्नांकित श्लोक लिखकर स्वास्थ्य रक्षा और शरीर सम्बर्द्धन के लिये हमें प्रेरणा प्रदान की है।:—

नित्यंहिताहार-विहार सेवीः।
समीक्ष्यकारी विषयिश्व शक्तः॥
दाता स मा सत्य परः क्षमावान्।
आप्तोपसेवी च भवत्य रोग्यः॥

卐卐卐卐卐卐卐卐卐

वैराग्य शतक

卐卐卐 卐卐卐

लें० शिवेन्द्र प्रसाद गर्ग

卐卐卐卐:卐卐卐卐卐卐 卐

महाराज भर्तृहरि

दो हजार वर्ष पूर्व राजपूताने के मालवा प्रांत की उज्जयिनी नगरी [उज्जैन] में उच्च कोटि के विद्वान्, नीति कुशल, न्याय परायण, प्रजावत्सल, सर्व गुण सम्पन्न नृपति महाराज भर्तृहरि राज्य करते थे। इनके छोटे भ्राता विक्रम भी विद्वान्, न्यायपरायण, धर्मात्मा एवं राजनीति कुशल थे। वे विक्रमादित्य के नाम से सुख्यात हैं एवं आज तक चलता हुआ विक्रम-सम्वत् उन्हीं के आधार पर है। आप [महाराज भर्तृहरि] 'पर दुःख भंजन' की उपाधि से विभूषित थे। अपनी पुत्रवत् प्रजा का भार विक्रम सरीखे अनुपम भ्राताके कन्धों पर छोड़ कर आप निश्चिन्त हो गये थे। प्रजा उनके राज्य में सर्व सुख सम्पन्न थी। रामराज्य का प्रत्यक्ष रूप उस समय विद्यमान था।

एक दुःखद घटना का बीजारोपण:—

[पिंगला से विवाह एवं कुमार का निष्कासन]

'होता वही है जो मन्जूरे खुदा होता है' के अनुसार एक अकल्पनीय दुर्भाग्य जनक घटना घटित हो गई। उसका बीजारोपण महाराज भर्तृहरि का चौथा विवाह अनुपम सुन्दरी रूप लावण्य सम्पन्ना, अप्सरा सदृश राजकुमारी पिंगला से करने में हुआ। महाराज पर उसकी रूप माधुरी का कुप्रभाव पड़ा। वे जहांगिर की भांति पिंगला रूपी नूरजहां के हाथों की कठपुतली हो गये। राज्य की सर्वेसवा वह हो गई थी। महाराज पिंगला पर अत्यधिक अनुरक्त थे। परन्तु भावी के प्रबल होने के कारण पिंगला स्वच्छंद होने से कुकर्म करने पर उतारू हो गई। वह दुश्चरित्रा एवं असती रानी अस्तबल के दारोगा से प्रेम करती थी। महाराज के सम्मुख वह प्रेम का ढोंग करती थी। परन्तु उनकी अनुपस्थिति में दारोगा के साथ व्यभिचार करती थी। महाराज इस त्रिया चरित्र से सर्वथा अनभिज्ञ थे कहा भी गया है।

नृपस्य चित्तं कृपणस्य वित्तं मनोरथं दुर्जन मानवानां।
त्रियाश्चरितं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानति कुतो मनुष्यः॥

शनैः शनैः यह पापाचार प्रगट होने लगा। राज कुमार विक्रम इस रहस्य से अवगत हो गये। उन्हें असह्य वेदना तथा अपरिमित दुखः हुआ। एक रोज साहस कर उन्होंने यह रहस्य अपने अग्रज के सम्मुख प्रगट किया। दुर्भाग्य की प्रवंचनावश महाराज भर्तृहरि को इस पर तनिक भी विश्वास नहीं हुआ। पिंगला के रंग में रंगे महाराज कुछ नहीं जान पाये। उन्हें ज्ञात नहीं था कि स्त्रियां मनोहर बातें करती हैं, परन्तु

तीक्ष्ण चित्त से प्रहार करती हैं। बातों में मधु एवं हृदय में इनके हलाहल रहता है।

सुमुखेन वदन्ति वल्गुना प्रहरन्त्येव शितेन चेतसा !
मधु तिष्ठति वाचि योषिताम् हृदये हालाहलं महाद्विषम् ॥

'कुमार मेरे पापाचार से अवगत हैं, वे मेरा रहस्य जानते है'—यह बात पिंगला को विदित हो गई थी। उसने कुमार पर महाराजा के सम्मुख सर्वथा मिथ्या दोषारोपण किया। उसने नगर सेठ को डरा धमका कर कुमार के विरुद्ध दूषित चरित्र का आरोप लगा कर भरी सभा में अपील करने को कहा। महाराज अपनी सती रानी के कथन से विक्रम को दुराचारी एवं व्यभिचारी समझने लगे थे। सेठ ने सभा के बीच कुमार पर चरित्रहीनता का दोषारोपण किया एवं विक्रम ने अपने सुचरित्र के नाना प्रमाण दिए परन्तु महाराज भर्तृहरि ने कुमार को अपशब्दों के साथ अपने राज्य से बाहर निकाल दिया। फिर कुछ वर्षों तक कोई घटना घटित नहीं हुई।

एक नूतन घटना—कुछ वर्षों उपरांत एक अकिंचन विप्र को एक देवता ने उसकी अत्यंत दृढ़ व कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर एक अमर फल दिया। उस फल खाने वाला अमर हो जाता था। ब्राह्मणने अपनी पत्नी से परामर्श कर वह फल महाराज भर्तृहरि को भेंट किया, व बदले में एक लक्ष मुद्रा प्राप्त कर लौटा। महाराज ने फल खा कर स्वयम् अमर एवं सदैव स्वस्थ और यौवनशाली बनने की अपेक्षा अपनी प्राण-

प्रिया पिंगला को वह फल खिलाना चाहा। उन्होंने वह फल पिंगला को दे दिया। पाठकगण! पिंगला के हाथों वह अमर फल अपने उपपति दरोगा के पास पहुंचा एवं दरोगा ने वह अमर फल अपनी प्रणयिनी एक वेश्या को दिया। वेश्या ने फल को स्वयम् खाकर अमरता एवं चिरयौवन प्राप्त कर आजीवन पाप करते रहने की अपेक्षा इस फल को महान् राजा भर्तृहरि को खिला कर उन्हें अजर अमर बनाना श्रेयस्कर समझा। वेश्या के हाथ में फल को देख कर एवं उसकी बातें सुन कर महाराज आश्चर्यान्वित हो गये। उन्होंने फल ले लिया एवं अनुसन्धान द्वारा सारा भेद जान लिया। अपनी प्राणप्रिया के विश्वासघात ने उनका दिल घायल कर दिया। उन्हें संसार से भारी विरक्ति हो गई।

उन्होंने कहा—'यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता, साप्यन्यमिच्छति जनं सजनोऽन्यसक्तः। अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या, धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च।'

महाराज द्वारा वैराग्य ग्रहण—महाराज भर्तृहरि ने राज्य भार मंत्री को सम्भाल कर एवं अपने निर्दोष अनुज विक्रम को त्याग देने पर भारी शोक करते हुए, रानी एवं दरोगा को बिना दण्ड दिए राज्य तथा धन दौलत को सदा सर्वदा के लिये त्याग दिया व वैराग्य ले लिया।

वैराग्य-शतक—इस प्रकार महाराज भर्तृहरि महान् भूपाल से अत्यंत उच्च कोटि के संत व ऋषि हो गये। उन्होंने ३ अति अमूल्य ग्रन्थों की देववाणी संस्कृत में रचना की।

१-नीति-शतक, २-शृंगार शतक, ३-वैराग्य शतक। ये तीनों ग्रन्थ रत्न वस्तुतः अमूल्य शतक हैं। वैराग्य शतक में उन्होंने नाना प्रकार की ज्ञान चर्चा की है। उन्होंने उदाहरण दे दे कर अपने विचार स्पष्ट किये हैं। वैराग्य शतक की एक-एक पंक्ति अगाध ज्ञान गंगा से सिञ्चित है। आपके सम्मुख वैराग्य शतक के कुछ श्लोक, उदाहरण या विचार प्रस्तुत किए जाते हैं। आप उन पर विहंगम दृष्टिपात करें।

उदाहरण:—

१. भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न याता वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

विषयों को हमने नहीं भोगा परन्तु विषयों ने ही हमारा भोग किया। तप ने हमें तप लिया, काल स्वयं समाप्त नहीं हुआ बल्कि उसने हमें समाप्त कर दिया। तृष्णा का बुढ़ापा न आया अपितु हमारा बुढ़ापा आ गया।

२. चेहरे पर झुर्रियां, सिर के केश श्वेत, सारा गात ढीला, फिर भी तृष्णा तो तरुण ही रहती है। 'वलिभिर्मुखमाक्रातं पलितैरंकितं शिरः। गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैकातरूणायते' ठीक इसी प्रकार की बात महर्षि शंकराचार्य जी ने 'मोहमुद्गर' में कही है। 'अंगं गलितं पलितं मुण्डम् दन्त विहीनम् यातं तुण्डम्। कर धृत कंपित शोभित दण्डम्, तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम्॥

आत्म पुराण में काम देव की क्षमता के बारे में कहा गया

है= कामेन विजितो ब्रह्मा, कामेन विजितो हरिः।
कामेन विजितः शम्भुः, शक्रः कामेन विर्जितः॥

३. स्तनौ मांसग्रन्था कनक कलशा वित्युपमितौ,
मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशांकेन तुलितम्।
स्त्रवन्मूत्रत्क्लिन्नंकारे वर कर स्पोर्धं जघन,
महा निन्द्यं रूपं कविजन विशषैर्गुरूकृतम्॥

'स्त्रियों के स्तन मांस के पिंड हैं, परन्तु कवियों ने उन्हें स्वर्ण कलश की उपमा दी है। स्त्रियों के मुह (वस्तुतः कफ का घर) चन्द्रमा के समान वतलाया गया। उनकी जांघों को जिनमें रज, पेशाव आदि गन्दगियां बहती हैं, श्रेष्ठ हाथी की सूंड के समान कही गई हैं। स्त्रियों का रूप घृणा योग्य है। परन्तु कवियों ने उसकी अत्यधिक प्रशंसा की है।'

४. विषयों के सेवन में रोगों का, कुल में दोष हो जाने का, धन में राजा के छीन लेने का, चुप रहने में दीनता का, बल में शत्रुओं का एवं सौन्दुर्य में बुढ़ापे का भय है। शास्त्रों में प्रतिवाद का, गुणों में अवगुणों का, शरीर में मृत्यु का भय है। विश्व की समस्त वस्तुओं में मनुष्य को भय है। केवल 'वैराग्य' में ही किसी प्रकार का भय नहीं है।

'सर्व वस्तु भयान्वितं भुविनृणां वैराग्यमेवाभयम्।'

सच्चा सुख तो वैराग्य में ही है। स्त्री आफतों की जड़ व वैराग्य साधन में बाधक है।

५. गंगा स्वर्ग से शिवजी के मस्तक पर, वहां से हिमालय पर्वत पर, हिमालय से पृथ्वी पर एवं पृथ्वी से समुद्र में गिरती है। इस से विदित होता है कि विवेकहीनों का पद पद पर सैकड़ों प्रकार से पतन होता है।

६. देहधारियों के भोग और विषय सुख सघन मेघों में चमकने वाली सौदामिनी की तरह चंचल एवं क्षणिक हैं। मानव की उम्र वायु द्वारा छिन्न-भिन्न हुए जलधरों के सलिल के सदृश नाशवान् है। यौवनावस्था की उमंग भी स्थिर नहीं है। इसलिए हे विज्ञों! धैर्य से चित्त को एकाग्र करके उसे योगसाधन में लगाओ। क्यों कि 'मोहमुद्गर' के अनुसार कमल पत्र पर पड़ा हुआ जल विन्दु एवं मानव जीवन अत्यंत चंचल हैं। -विश्व में दुःख ही दुःख हैं।

नलिनी दलगत जलम् हितरलं, तद्वज्जीवितमतिशय चपलम्।
विद्धि व्याधि व्यालग्रस्तं, लोकं शोक हतञ्च समस्तम्॥

६. (अ.) शास्त्र, नृप एवं युवती का विश्वास करना ठीक नहीं। 'स्त्रीणां विश्वासो नैव कर्त्तव्यः।'

७. अत्यधिक प्यासा व्यक्ति शीतल जल का, अत्यन्त भूखा मनुष्य अन्न का सेवन करता है तथा कामातुर व्यक्ति स्त्री का प्रगाढ़ आलिंगन करता है। विचार कर देखने से ज्ञात होता है कि जल, अन्न एवं स्त्री का आलिंगन क्रमशः प्यास, क्षुधा एवं कामवासना रूपी बीमारियों की एक २ औषध हैं। इन्हें सुख समझना भारी भूल है।

८. इस जगती तल में कोई भी किसी का नहीं है व्यर्थ की चिंता करने से कोई लाभ नहीं।

'का तव कान्ता ? कस्ते पुत्रः ? संसारोऽयमतीव विचित्रः।'

९. इस संसार में तनिक भी सुख नहीं है। माता के गर्भ में कष्ट मिलते हैं। यौवनावस्था एवं वृद्धावस्था में स्त्रियों का वियोग एवं उनके द्वारा अपमान होता है।

इस संसार को देख कर सन्तोष कैसे हो सकता है ? पुनः जन्म का दोष स्पष्ट है।

यावज्जननं तावन्मरणं, तावज्जननी जठरे शयनम्।
इहि संसारे स्फुटतर दोषः, कथमिह मानव ! तव सन्तोषः।

इन ज्ञानगरिमा से ओत प्रोत उदाहरणों के अवलोकन से हमें ज्ञात होता है कि महाराज भर्तृहरि का वैराग्य शतक असीम ज्ञान का आगार है। इस ग्रन्थ में बहुत कुछ कहा गया है। उन समस्त बातों का सारांश यही है कि 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैवनाऽपरः।' अर्थात् ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है तथा जीवन ब्रह्म का रूप है।

इस प्रकार के उच्चकोटि के ग्रन्थ रत्नों का संकलन प्रत्येक हिन्दू के घर में होना चाहिए। यदि एक शिक्षित व्यक्ति भी इन अनुपम ग्रन्थों का अध्ययन नहीं करता है। तो उसका जीवन निष्फल होकर व्यर्थ ही गया, ऐसा लेखक का मत है।

—:o:—



ले०—कालूभाई बसिया



* स्वप्नवाद *

अखिल विश्व में जो कुछ भी जड़-चेतन तत्त्व दृष्टिगोचर होता है, वह सब मिथ्या है, स्वप्न है। उसमें किंचिन्मात्र सच्चाई नहीं है। जो कुछ दिखाई देता है, वह आंखों का भ्रममात्र है।

विश्वमें दिखाई देनेवाली प्रत्येक वस्तु मायाजाल में लिपटी हुई है। फिर भी हम सबको ऐसा आभास मिलता है, मानों सब कुछ सत्य है। परन्तु वह सत्य नहीं। सच्चाई

जैसा कुछ होगा सही, परन्तु वह हमारी आंखों से परे है और बुद्धि की समझसे भी बहुत दूर है। अतः यह सभी दृश्यमान् पदार्थ स्वप्न है।

अज्ञेयवाद

विश्व अज्ञेय है । ईश्वर-आत्मा सब कुछ अज्ञेय है और विश्व की विधान-रचना भी अज्ञेय है। जब विश्व का निर्माण हुआ, तब मानव का बीज भी नहीं था। अतः मानव विश्व के सम्बन्ध में जो कुछ कहता है, वह केवल कल्पना और तर्क ही है। वास्तविकता क्या है, यह बताने का सामर्थ्य मानव में नहीं है। विश्व के मूलतत्त्व का वर्णन नास्तिक जन नकारात्मक भाव से और आस्तिक जन हकारात्मक भाव से करते हैं। परंतु निश्चयात्मक भाव से कोई भी मानव इसका वणन कर नहीं सकता। तत्त्वज्ञान का सिद्धान्त यह है कि मानव को अपने अस्तित्व के सिवा अन्य किसी बात का न तो अनुभव हो सकता है और न विश्वास। इसलिये यदि कुछ दृष्टिगत होता है, वह विश्वसनीय नहीं। विश्व स्वयंभू है, उसे किसीने उत्पन्न नहीं किया-यह कथन भी अविश्वसनीय है-अज्ञेय है।

अतिमानसवाद (अरविन्द-दर्शन)

अखिल विश्व एक ही प्राणवान् व्यक्ति है, जिसमें मानव विराट् व्यक्तिका अंग है। उसमें अखंड, विराट् पूर्णता से ही अखिल विश्व का निर्माण हुआ है। विश्व-मानव व्यक्ति के प्रकाश से ही प्रकाशमान् है, अतः ईश्वर से भी परे पहुंच कर

मानव का विराट् व्यक्तित्व धारण करना ही सच्चा पुरुषार्थ है और भक्ति तथा ईश्वर साक्षात्कार का सच्चा अर्थ है। जड़ और चेतन एक ही व्यक्ति के अन्तर-बाह्य ये दो रूप हैं। अमृतत्व, एकत्व, मुक्ति-यह सब मानव-व्यक्तिमें ही विद्यमान पाया जाता है। इस पूर्णता को आत्मा में प्रकट करना चाहिये, क्योंकि इसी से व्यक्तिमें पूर्णता एकत्र होती है। विश्व व्यक्तिमें ही समाया हुआ है। महर्षि अरविन्द का कथन है कि अस्तित्व के लिये विचार आवश्यक नहीं। वह इसका कारण भी नहीं। वह तो मूल भावका एक साधन मात्र है। मैं अपने आप में जो कुछ अवलोकन करता हूँ, वही बन जाता हूँ। विचार मुझे जो कुछ निर्देश करते हैं वह मैं कर सकता हूँ। विचार मुझ में जो कुछ सोचते हैं, वह मैं हो सकता हूँ। सब कुछ व्यक्ति के अन्दर ही विद्यमान है। ईश्वर की सत्ता भी व्यक्ति के अन्दर ही है। वह एक विराट् व्यक्ति है। यही अरविन्द का अति-मानस-सिद्धान्त है।

रूपान्तरवाद

विश्व का सब से महान् नियम रूपान्तर है। दृष्टिगत अखिल विश्व रूपान्तर है। प्रत्येक वस्तु का रूपान्तर होता होता है, नाश नहीं होता। वस्तु का शक्ति में और शक्ति का वस्तु में रूपान्तर होता है। अतएव एक तत्त्व का स्थूल और सूक्ष्म दोनों रूपों में रूपान्तर होता है। ऐसे ही मानव को ईश्वर में रूपान्तरित होना परम कर्तव्य है। मनुष्य का रूपा-न्तर विज्ञान के जड़ यन्त्रों के साधनों द्वारा होना कदापि

सम्भव नहीं, परन्तु उसका परिवर्तन दृढ़ इच्छा संकल्प शक्ति और प्रबलतम वैचारिक बल द्वारा होता है। योगसाधना का यही उद्देश्य है—उपासना का उद्देश्य भी यही है।

इच्छा का रूपान्तर ज्ञान में और ज्ञान का रूपान्तर ध्येय में हो सकता है। इच्छा और विचार शक्ति की गति को केन्द्रित कर ध्येय में लगाने से ध्येय रूप बन जाता है। यही योग का सिद्धान्त है।

मन की शक्ति सूक्ष्म से सूक्ष्म आकाशतत्त्व के प्रकाश तक पहुँच सकती है और प्रवुद्धावस्था (मान) आकाश के परम प्रकाश में जाग्रत बनता है और त्रिकाल ज्ञान प्राप्त करता है। इस अवस्था पर पहुँचने के पश्चात् मन स्वेच्छानुसार रूप और गठन की रचना कर सकता हैं और सभी काम संकल्प बल से कर सकता है जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में भी स्थित है। मानवमात्र पूर्णता रूप में ईश्वर ही है। पूर्णता की भूमिका पर पहुँचना ही सच्चा धर्म है और रूपान्तरण प्रकृति का संविधान है। इस संविधान या कानून के अनुसार अखिल विश्व का निर्माण रूपान्तर से हुआ है और रूपान्तर ही है, अन्य कुछ भी नहीं।

व्यवस्थावाद

विश्व में नियमबद्ध व्यवस्था सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। विश्व का संघटन और निर्माण किसी विशेष नियम और व्यवस्था के अनुसार होता है। सूर्यग्रहण जिस दिन और जिस वर्ष

होता है, उसी दिन और उसी वर्ष पुन: नहीं होता है। उसके समय में घट-बढ़ नहीं होती। इसी नियमके अनुसार सृष्टि की क्रिया भी एक ही रूप में और एक ही पद्धति पुरस्सर होती है। किसी विशेष परिस्थिति में अमुक घटनाएँ पुनः-पुनः होती रहती हैं। अणुओं में परमाणु निहित होते हैं और उनमें भी कार्बन, हाइड्रोजन, और आक्जिन के परमाणु विद्यमान रहते हैं। यह सब संतुलित रूप से संयोजित होकर नियमबद्ध विश्व की रचना करती हैं अतः व्यवस्था से ही विश्व सृष्टि का निर्माण हुआ है। यदि नियम और व्यवस्था नहीं तो सर्वत्र अन्धाधुन्धी और अराजकता का ही साम्राज्य सर्वत्र व्याप्त हो जाये। अतः अखिल विश्व व्यवस्था से बँधा हुआ है।

उल्कावाद

उल्काओं के उल्कापात से समग्र विश्व की रचना हुई है। उल्का-अर्थात टूटनेवाले तारे। जिस प्रकार धूलका ववण्डर रज-कणों से भरपूर होता है, उसी तरह समग्र आकाश सर्वप्रथम उल्काओं से आकीर्ण था-छाया हुआ था-इन उल्काओं के संयोजन से संयोगजन्य कारण से सूर्य-मण्डल, पृथ्वी का गोला और अखिल विश्व की रचना हुई है—सृष्टि हुई है।

—क्रमशः





स्वरोदय-विज्ञान योग-विद्या का ही एक प्रकार है। आज के भौतिक युग में स्वरोदय-विज्ञान लुप्त प्राय हो गया है। जिस विद्या का जीवन से गूढ़ और अन्योन्याश्रित संबंध है, उसी विद्या का जीवन के लाभ के लिए कहीं उपयोग होता दिखाई नहीं दे रहा है।

स्वर ब्रह्म है। स्वर प्राण है। स्वर ही इस पार्थिव, नश्वर देह में जीव-रूप है। यदि देह से स्वर दूर हो जाये, तो देह निर्जीव हो जाए। चूंकि स्वर ब्रह्म है, अतः उसमें ब्रह्म की समस्त शक्ति छिपी हुई हैं। खेद की बात है कि जो अपार शक्ति हमारे ही अन्दर विद्यमान हो और हम उससे किसी प्रकार का लाभ न उठायें! और इस के प्रति अविश्वास कर इसकी उपादेयता की उपेक्षा करें!

शरीर में स्वरों का स्थान

स्वर दो होते हैं- सूर्य तथा चंद्र। सूर्य स्वर जब चलता

है तब शरीर में पिंगला नाड़ी कार्य करती है। यह नाड़ी मूलाधार केन्द्र से आरंभ होकर, रीढ़ की हड्डी की दायीं ओर से ऊपर को होती हुई कपाल के पीछे से आंखों तक इसकी शिरायें फैलीं रहती हैं। खान-पान एवं शारीरिक गुण-धर्मों के फल स्वरूप ही ये नाड़ियां अदल-बदल कर अपना कार्य करती हैं। पिंगला के कार्यरत रहते सूर्य-स्वर ही चलता। इस स्वर की प्रकृति उष्ण है। देह जब शीतांकित होता है तो पिंगला स्वयमेव ही उसे उष्णता देने के लिये कार्यरत हो जाती है।

चंद्रस्वर की नाड़ी इड़ा है। यह नाड़ी अधिष्ठान चक्र से रीढ़ की बायीं ओर से होती नाक के नीचे कपोलों तक फैली रहती है। तथा इसकी कुछ शिराएँ उपस्थ की ओर भी फैली रहती हैं। यह नाड़ी शीत-प्रकृति होती है। देह में जब अनावश्यक उष्णता उत्पन्न होती है तब उसे शांत करने के लिये यह नाड़ी स्वमेव कार्य करने लग जाती है, इसकी प्रकृति शीतल है। इसके कार्य-शील रहने से किसी प्रकार का ताप नहीं सताता।

तीसरा स्वर-सुषुम्ना

जब इड़ा तथा पिंगला दोनों एक साथ कार्य करना बंद कर देती हैं, तब सुषुम्ना चलती है। यह मूलाधार से भोहों के बीचतक फैली रहती है। इसके द्वारा ही कुण्डलिनी और ब्रह्म

रंध्र का सम्बन्ध जुड़ा रहता है। इसमें प्राणों को स्थिर रखकर ध्यानस्थ होने से कुण्डलिनी जाग्रत होती है तथा इस साधना से समस्त सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

किस स्वर में कौन सा कार्य करना चाहिये

सूर्य में करने योग्य कार्य

जब एक स्वर से दूसरा स्वर चलने लग जाता है तो उस आरंभ होनेवाले स्वर के लिये उदय कहा जाता है। जैसे चंद्र के बंद होनेपर सूर्य के आरंभ हाने पर सूर्योदय कहा जायेगा।

जब खुल कर भूख लगती है तो प्रायः हम देखते हैं-सूर्य चला करता हैं। जब यह स्वर चले तो भोजन करना चाहिये तथा मल त्याग करना चाहिये। चूंकि मल त्याग करते समय भी सूर्य चलता है। इस स्वर में भोजन करने से अपच हो नहीं सकता। इसके चलने पर भोजन करने तथा इसके चलने पर मलत्याग करने का निश्चय कर लेने पर पेट का किसी भी प्रकार का रोग नहीं होगा। तथा इस साधना से पुराने से पुराने पेट सम्बन्धी रोग दूर हो जायेंगे।

जब सूर्य चले तो चरकार्य करने चाहिये। इस स्वर में चर कार्य ही लाभान्वित होते हैं। जैसे यात्रा करना, घोड़े आदि की सवारी, वाद-विवाद, पत्र-लेखन, राजनैतिक वार्ता, व्या-याम, चोरी, झूठ बोलना, पापाचार करना' जुआ खेलना आदि समस्त चरकार्य सूर्य में ही करने चाहिये। संभोग आदि कार्य

सूर्य में ही करने चाहिये। गायनादि कविता पाठादि भी इसी स्वर में करने चाहिये।

सूर्य के वार तथा तिथि

इस स्वर का पक्ष कृष्ण तथा वार रवि, मंगल तथा शनि होते हैं। तथा तिथियां, १, २, ३, ७, ८, ९, १३, १४, ३० कृष्ण पक्ष की और ४, ५, ६, १०, ११. १२ शुक्ल पक्ष की होती हैं। सूर्य में किये जानेवाले चर कार्य उपरोक्त वार तथा तिथियों में अधिक फलदायक होते हैं। वैसे प्राय: कठोर कार्य तथा चरकार्य सूर्य में ही करने चाहिये। इस स्वर की दशायें उत्तर-पूर्व होती हैं।

चंद्र स्वर में करने योग्य कार्य

इस स्वर में स्थिर तथा कोमल कार्य ही करने चाहिये। यह स्वर चले तब जल पीना चाहिये या पीने के अन्य पदार्थ सेवन करने चाहिये। पर इस स्वरमें मदिरादिपान कभी न करे। मदिरादि पान सूर्य में ही करें।

इस स्वर में मित्रों से मिलना, विवाह-सगाई आदि शुभ कार्य सम्पन्न करना। पूजा हवन आदि करना, दान दक्षिणा देना। इस स्वर में, स्वर खेंचकर दान किया हुआ तुरंत फल-दायक होता है। मकान की नींव इसी स्वर में भरनी चाहिये। नवीन ग्रन्थ लेखन इसी स्वर में करना चाहिये। व्यापारिक प्रतिष्ठान का आरंभ भी इसी स्वरमे करना चाहिये। तथा अन्य स्थिर और शुभ-सौम्य कार्य इसी स्वर में करने चाहिये। स्थापना तो केवल इसी स्वर में करनी चाहिये। सूर्य में स्थापित किया हुआ प्रतिष्ठान स्थिर नहीं रह सकता।

चंद्रस्वर की तिथि वार और दिशायें

इस स्वर का पक्ष शुक्ल तथा वार सोम, बृहस्पति और शुक्र है। तिथियां शुक्ल पक्ष की १, २, ३, ७, ८, ९, १३, १४, १५, तथा कृष्ण पक्ष की ४, ५, ६, १०, ११, १२, होती हैं। इसकी दिशायें दक्षिण तथा पश्चिम होती हैं। चंद्रकी वार-तिथि को इसकी दिशामें गमन करने पर सफलता मिलती है। तथा सूर्य की वार तिथि में उसकी दिशा में गमन करने पर सफलता मिलती है

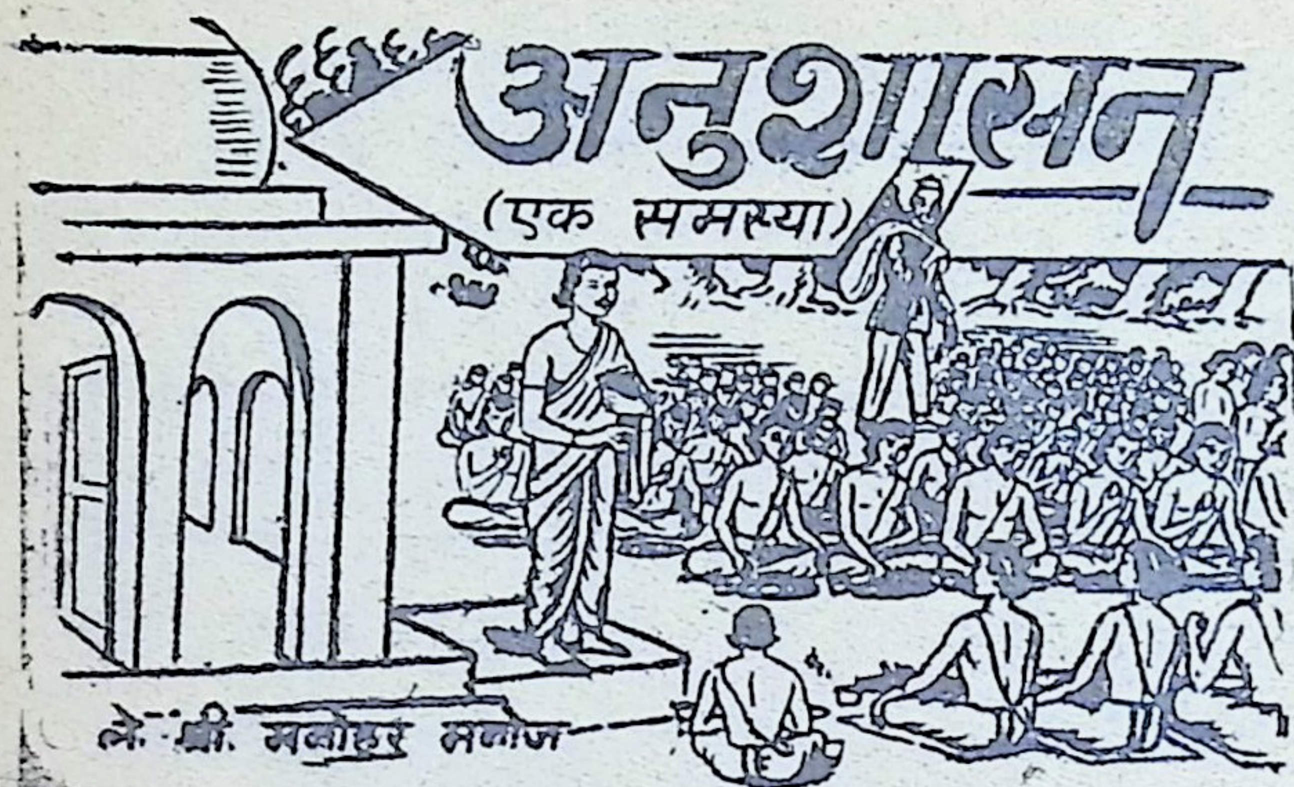
सुषुम्ना के कार्य

इस स्वर में किसी प्रकार का स्थिर और चर कार्य नहीं करना चाहिये। क्योंकि इस स्वर में किये गये किसी भी कार्य में सफलता नहीं मिलती।

इस स्वर का समय अभिजित मुहूर्त का समय होता है। यह स्वर कुछ क्षण ही चला करता है। इस स्वर का वार बुध वार होता है। इस स्वर की तिथि नहीं होती। इस स्वर में केवल भगवद् ध्यान ही करना चाहिये। इस स्वर में औषधि सेवन करने पर रोगी की मृत्यु अवश्य होती है। इस स्वर में संभोग करने से पुरुष नपुंसक हो जाता है। हमेशा दिन में चंद्र और रात्रि में सूर्य चलना चाहिये। रात्रि में बायें करवट सोने से सूर्य ही चलेगा। यदि स्थायी होगा तो नहीं बदलेगा। क्रमशः

अगले अंक में—

स्वर विज्ञान द्वारा सौभाग्य प्राप्ति तथा भविष्य ज्ञान।



आये दिन हम समाचार पत्रोंके मुख पृष्ठों पर पढ़ते रहते हैं, प्रधान मंत्री नेहरू की आम सभा में शोर मचाया गया अथवा अमुक सभा पर पथराव भी किया गया। दूसरी ओर सुनते हैं:—एक स्कूल के अध्यापक ने छात्रों को पीट दिया। अभी २ मुस्लिम यूनिवर्सीटी में छात्रों में सांप्रदायिक दंगा फैल गया। इन सबका चित्र जब हमारे सामने उपस्थित होता है तो हर्ष वर्धन काल की ओर हमारी दृष्टि चली जाती है। उस समय ह्वेनसांग प्रसिद्ध चीनी यात्री अपनी डायरी के एक पन्ने पर लिखता है:—

'मैं नालंदा विश्व विद्यालय देखने गया। प्रातः के लगभग १० बज रहे थे। वहां के विद्यार्थियों का यह समय भोजन करने का था। अतः मैं उनकी गति विधियों को देखने एक तरफ खड़ा हो गया। नालंदा के उस विशाल प्रांगण में ६० हजार विद्यार्थी बैठे थे। समस्त विद्यार्थियों के सामने भोजन

परोसा जा चुका था। आचार्य जी ऊँचे आसन पर विराजमान थे। विद्यार्थी यह प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब आचार्यजी आदेश दें और मंत्रोच्चार के पश्चात् हम भोजन प्रारम्भ करें। उसी समय आचार्यजी आदेश देते हैं कि जिस विद्यार्थी ने आज के पाठका अभ्यास न किया हो वह भोजन पाने का अधिकारी



नहीं। उनमें से ३० या ३५ विद्यार्थी अपनी परोसी हुई थालियों पर से उठकर, गुरुजी को प्रणाम करके, अमराइयों में पाठ याद करने चले गये। मेरे आश्चर्य का उस समय कोई छोर न था। यह दृश्य देखकर मेरी आंखों में आँसू आ गये। धन्य हो ऐसी भारतीय संतान जिसे स्वयं पर इतना नियंत्रण था।'

यह मेरे अथवा आपके नहीं, किसी भारतीय लेखक के भी नहीं, बल्कि एक विदेशी चीनी यात्री के शब्द हैं। क्या उस भारतीय संतान पर भारतीयों को गर्व का अनुभव नहीं होता

होगा ? किन्तु उससे हम शिक्षा नहीं लेते । इसलिये जब हम इन दोनों परिस्थितियों को सामने रखते हैं, तो ऐसा अनुभूति होने लगती है कि हम विश्व गुरु भारत में नहीं बल्कि अन्य किसी देश में आ गये हैं वैसी भारतीय संतान ही उत्पन्न होना बंद हो गई है जो हर्षवर्धन काल में होती थी । इन सबको दृष्टि में रखते हुये यदि हम इसके अंतर में झांके तो हमें कुछ कमी महसूस होगी और वह कमी है केवल अनुशासन की । आज 'अनुशासन-अनुशासन' की पुकार किस ओर से नहीं आ रही ? बालक और वृद्ध, समाज और शासन में चारों ओर अनुशासन का बोलबाला है, और सबसे अधिक शिक्षा विभाग में जो राष्ट्र की नींव खड़ी करता है ।

क्या कभी हमने अनुशासत के पतन के कारणों तक पहुंचने की कोशिश की है ? केवल 'अनुशासन-अनुशासन' चिल्लाने अथवा बड़े २ नेताओं के भाषणों में प्यारे बालको ! 'देश की समस्या बड़ी विकराल है आज हमें अपने देश की ही नहीं विश्व की स्थिति में सुधार लाना है । इसलिये अनुशासन में बंधकर चलो इससे विदेशों में हमारा नाम बढ़ेगा ।' इतने कहने मात्र से अपने कर्तव्यों की इति श्री समझ लेने से अनुशासन नहीं आयेगा । उसके मूल तथ्यों पर गंभीरता से मनन करके उन्हें दूर करने से ही अनुशासन रहेगा यदि कभी किसी ने सोचने का यत्न भी किया तो वह कागजों तक ही सीमित रह गया, व्यवहार में उसके द्वारा परिवर्तन नहीं लाया गया । बड़े २ विद्वान् इस समस्या में उलझे और उन्होंने उसके कई कारण खोज निकाले, किन्तु उनके निवारणार्थ

कुछ नहीं किया गया विद्वानों द्वारा खोजे हुये कुछ कारणों का संक्षिप्त निवेदन यहां अनुचित न होगा।

सामाजिक विषमता—यह समस्या समाज में अनुशासन हीनता फैलाती है। एक मनुष्य दिन रात परिश्रम करता है, किन्तु शाम को वह पेटभर अन्न नहीं पाता और दूसरी ओर एक धनवान व्यक्ति दिनभर गद्दियों की कमर तोड़ा करता है, किन्तु उसे कोई चिन्ता नहीं। यह परिस्थिति मनोवैज्ञानिक रूप से अनुशासन ही नाम का कारण बनती है। कारण तो बहुत अच्छा खोजा, वास्तव में ऐसी स्थितिमें नियंत्रण रखना कठिन हो जाता है। किन्तु इसके निवारणार्थ क्या किया? क्या हमने गरीब और अमीर के भेदभाव को मिटा दिया? क्या हमने प्रत्येक व्यक्ति की रोटी, रोजी और निवास का ठीक प्रबन्ध किया? क्या हमने श्रम को उसके सम्मानोचित पद पर प्रतिष्ठित कर दिया? ऐसी वैमनस्यता का प्रादुर्भाव होने से बालक शाला में चीजें चुराता है, मारपीट होती है और वह अपमानित बन जाता है। श्रम और रोटी की इस विषमता से जवानों का खून खौलता है और वे डाकू एवं चोर के नाम से विख्यात हो जाते हैं।

राजनैतिक दल:—यह देश के बालकों में अनुशासन हीनता फैलाते हैं। ऐसा क्यों होता है? जहां भी बड़े २ राजनैतिक दलों का जुलूस निकला कि बच्चे सबसे आगे! बालक नारे लगाते हैं 'इस शासन की क्या पहिचान? नंगा भूखा हिन्दुस्तान।' दूसरी ओर से दूसरी पार्टी का जुलूस

निकला। बालक फिर दौड़े और नारे लगाने लगे 'अमुक पार्टी का बोल बाला, विरोधियों का मुह काला।' इन विरोधी विचार धाराओं में बालक स्वयं उच्छृंखल होने की पृष्ठ भूमि तैयार कर लेता है। दूसरी ओर हम देखते हैं कि प्रजातन्त्र प्यासा पड़ा है विशुद्ध राजनीति की कोई शिखा उसे आलोकित नहीं करती। नवयुवकों को यदि शुद्ध, स्वस्थ राजनीति नहीं सिखलाई गई तो वे अच्छे नागरिक और देश के नेता कैसे बन सकेंगे ?

शिक्षाः-सामाजिक पतित अवस्था, ट्यूसन करने की प्रथा, अध्यापक में योग्यता का अभाव, शिक्षा सामग्री का अभाव, शिक्षा सम्बन्धी विषय पर अध्यापक का पूर्ण अधिकार न होना ये सब परिस्थितियां बालकों में अनुशासन हीनता को जन्म देती हैं। इस क्षेत्र में भी समाज में आज वही ऊँच-नीच का भेद-भाव बढ़ता जाता है। इसका व्यवहारिक पहलू अभी तक अधूरा पड़ा है। ट्यूशन की प्रथा आजके युग में पहले से कहीं अधिक प्रचलित है। शिक्षक स्कूल में ठीक ढंग से शिक्षा नहीं देते इस कारण अनुशासन भंग हो जाता हैं। इसके लिये शासन ने कोई कड़ा कानून नहीं बनाया और हमने भी अपने बच्चों की प्रगति के मोह में ट्यूशन करना बन्द नहीं किया अध्यापक केवल नाम के होते हैं। काम के नहीं। उनको अपने बनाव श्रृंगार से ही अवकाश नहीं मिलता। शिक्षा सामग्री का अभाव तथा अव्यवस्था इतनी है कि कहीं शाला में श्याम पट्ट नहीं है; कहीं चाक नहीं मिलती, कहीं अध्यापक को अपने विषय का पूर्ण ज्ञान ही नहीं है। और जब

वे बालकों को पढ़ाते हैं तो बालक ही उनकी त्रुटियां पकड़ लेते हैं, इस प्रकार बालकों पर उनका प्रभाव ही नहीं रह जाता है। बताइये, अनुशासन हीनता न होगी तो क्या होगा?

इन कारणों का निराकरण ही अनुशासन की समस्या है, और इनका सुलझना ही उसका राज है। बालक अपने घर से ही प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करता है। यदि बचपन से ही उसके माता-पिता उन्हें अनुशासन की महत्ता से प्रभावित करें, उन्हें अनुशासन का पालन करना सिखायें तो वे अनुशासन प्रिय होंगे। अनुशासन दो प्रकारके होते हैं (१) आन्तरिक अनुशासन (२) बाह्य अनुशासन।

आन्तरिक अनुशासनः-इससे बालक का भविष्य निर्मित होता है इससे प्रेरित होकर बालक स्वयं यह जान लेता है कि उसे अनुशासन में क्यों रहना चाहिये? साथ ही अच्छे और बुरे का भी उसे ध्यान रहता है। कौनसा नियम गलत है और कौनसा सही है, उसकी पहिचान वह स्वयं करता है और इसीसे वह अपने चरित्र का निर्माण कर लेता है। वास्तव में ऐसे अनुशासन प्रिय बालक ही राष्ट्र की थाती हैं जिनसे देश को आशाएं हैं।

बाह्य अनुशासनः-यह अनुशासन मिलिटरी जैसा होता है जो बच्चों पर समाज और हित के लिये थोपा जाता है। इससे बालकों में विद्रोही भावना बन जाती हैं जिससे वे आगे चल कर अनुशासन हीन बन जाते हैं इस प्रान्त में शिक्षा शास्त्रियों

ने इसका विरोध किया।

माता-पिता को चाहिये कि राष्ट्र की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये बालकों को अनुशासन के सांचे में ढालें। बालकों का यह कर्तव्य है कि वे आन्तरिक अनुशासन की ओर अधिक लक्ष्य दें। वे राष्ट्र की भलाई और नियमों को अपना समझें। तब कहीं जाकर राष्ट्र की इस ज्वलंत समस्या का हल हो सकता है अन्यथा हमारे राष्ट्र की भावी सन्तान उच्छृंखल और अनियमित होकर 'शिक्षित भेड़िया समाज' में परिवर्तित हो जायेगी।

वास्तव में इस व्यापक अनुशासन हीनता की जड़ों में बहुत कुछ हमारी कमजोरी ही है। आज हम अपने ही बनाये हुये नियमों की स्वयं अवहेलना करते हैं। जिसका प्रभाव आगामी पीढ़ी पर पड़े बिना नहीं रह सकेगा। स्वतन्त्र होने के बाद इस विषय में हमारी जिम्मेदारी अधिक बढ़ गई हैं हमें अनुशासन का पग-पग पर ध्यान रखना होगा, नहीं तो स्वतन्त्रता अक्षुण्ण न रह सकेगी।





धारावाहिक उपन्यास

ले. साहित्याचार्य
पं. देवेश्वर शर्मा बी. ए.
साहित्यरत्न आदि।

इससे पूर्व पाठक पढ़ चुके हैं कि किस प्रकार वीणा रंगूबाई के द्वारा पूने में पर्वती के पास से लाई जाकर और उसके द्वारा तिरष्कृत किये जानेपर सेवक राम के आश्रय में पहुँची और आते ही एकाएक बीमार पड़ गई। उससे आगे का विवरण प्रस्तुत है:

(२)

वीणा बिस्तर पकड़ चुकी थी। एक महिला पास में बैठी कुछ बुन रही थी। उसके चेहरे से व्यग्रता झलक रही थी। वह यदा कदा वीणा की ओर नजर फेर लेती थी। कभी-कभी उसके शरीर को हाथ लगाकर देख भी लेती थी। फिर बुनने लग जाती। कुछ देर बाद वीणा ने आँखें खोलीं। वह देख रही थी। आंखें बन्द करे और खोले। उसके वे बड़े बड़े नेत्र! बुखार होने पर भी वे तेजस्वी लग रहे थे।

'मुन्नी कैसी हो ? क्या थोड़ा सा दूध पीओगी ?

'हाँ जी'

'अच्छा थोड़ा गरम करके लाती हूँ।'

वह महिला गई और कटोरे में कुछ लेकर आयी।

'मुख खोल, मैं चिम्मच से देती हूँ।'

'यह क्या है ?'

'साबूदाने की खीर। वैद्यजीने खिलाने को कहा है।'

'दीजिए'

चिम्मच भर भर कर उसने वह खीर खिलादी।

'बस हो गया।'

'अच्छा फिर दूँगी थोड़े समय से। पड़ी रहो।'

उस महिला ने वीणा का मुख साफ किया। उसके शरीर पर उसने साफ चद्दर ओढ़ादी और वह फिर बुनने के लिये बैठ गई।

'आपका परिचय ? सेवक काका कहाँ गये ?'

'वे बाहर गये हैं। तुम्हारे पास में मुझे बैठने को कह गये हैं।'

'क्या आप पड़ोस में ही रहती हैं।'

'हमारा घर बाजू में ही है। सेवक काका पर सबका ही प्रेम है। वे सबके काम आते हैं। उनका वसुधा भर ही परिवार है। उनका लौकिक परिवार ही कहाँ है ? हम उन्हें देव पुरुष की संज्ञा देते हैं।'

'आप भी क्या अकेली ही हैं ?'

'मैं अकेली नहीं मेरा लड़का है पतिदेव हैं। हम तीन हैं।'

'आपके पुत्र का नाम क्या है ?'

'देवदत्त'

'देवदत्त ! कितना बड़ा है।'

'है कोई बारह तेरह वर्ष का। मुन्नी तू बोल नहीं। तकलीफ बढ़ न जाये। चुप पड़ी रह।'

'आपका देवदत्त क्या मेरे साथ खेलेगा ?'

'पहले तू अच्छी हो जा; फिर दोनों खेलना।'

'आप यह क्या बुन रहे हैं ?'

'स्वेटर'

'किसके लिये ?'

'तेरे लिये। सेवक काका ऊन लाये हैं। तेरे लिये स्वेटर चाहिये न ?'

'अच्छी ऊन है।'

'तू अब बोल नहीं।'

'मैं अब अच्छी हूँ ! क्या ऐसी ही आंखें बन्दकर पड़ी रहूँ।

'अवश्य ही।'

वीणा चुपचाप पड़ी रही। थोड़ी देर में सेवकराम आगया।

'जानकीबाई ! कैसी है वीणा ?'

'कुछ अच्छी है। थोड़ीसी साबूदाने की खीर उसे दी। फिर अच्छी तरह बात करती रही। अब वह अच्छी हो जायगी, ऐसा मालूम होता है।'

'आप को भी कष्ट.........'

'सेवक काका ! आपने इस अनाथ को सनाथ किया, हम क्या इतनी भी आपकी मदद न करें ? यह स्वीटर तैयार हो

रही है। सांझतक तैयार हो जायगी। फिर उसे पहना दें। मैं अभी जाती हूँ।'

'अवश्य! तुम्हारा भी घर का काम है। देवदत्त अभी पाठ-शाला से नहीं आया ऐसा लगता है।'

'वह चित्रकार की परीक्षा में बैठने की तैयारी में है। उसके लिये उसे देरतक ठहरना पड़ता है।'

'जानकीबाई तुम्हारी कठिन तपस्या चल रही है। जब कभी तुम्हारा देवदत्त तैयार होगा तब की बात जुदा है।'

'अपना कर्तव्य करते रहना चाहिये। आपका उदाहरण हमारे सामने है। मैं जाती हूँ। किसी चीज की जरूरत पड़े तो जरूर कहिएगा। रात को देवदत्त भी बैठने को आयेगा; जाग-रण करने को। अच्छा! किसी प्रकार का संकोच न करना। नहीं तो तुम्हारे बीमार पड़ने की आशंका है। दमा का झटका लग सकता है। जाती हूं।'

'अच्छा जाइये।'

जानकीबाई चली गई सेवकराम वीणा के पास प्रेम से बैठ गया। उसके सिरपर उसका हाथ फिरता था। नीचे झुक कर उसने उसका प्यार भरा चुम्बन किया। तभी वीणा ने आंखें खोलीं। उसने दोनों हाथों की माला से सेवक राम का गला शोभित किया।

'मुझे छोड़कर कहां गये थे? अब न जाइयेगा। नहीं तो ऐसे ही पकड़ कर बैठूंगी। पकड़कर रहूंगी।'

'जानकीबाई थीं न पास में।'

'हाँ जी वो तो थीं। उन्होंने खीर खिलाई और मेरे

लिये स्वेटर बुनती थीं। अच्छी ऊन है।'

'आज ही तुझे स्वेटर पहनाऊँगा।'

सायंकाल हुआ। वीणा बिस्तर पर बैठ गई तो सेवकराम ने उसे स्वेटर पहनाया।

'बहुत अच्छी है। अब ठंडी कहाँ?'

'वीणा सांझ को बाहर जाना ही पड़ेगा। बत्तियां जलाने को नहीं जाऊँ क्या? जाना चाहिये।'

'तुम इस प्रकार कितने दिन काम कर सकोगे। आपके पैर नहीं थकते? मैं जब बड़ी हो जाऊँगी, तो आपका काम करूँगी। कंधे पर लट्ठ लूँगी और सब बत्तियाँ जलाऊँगी। लोगोंको अंधेरेमें प्रकाश मिलेगा। क्यों सेवक काका?'

'तू अधिक न बोल।'

'फिर जानकी माता मेरे पास बैठेगी?'

'उनका देवदत्त बैठेगा'

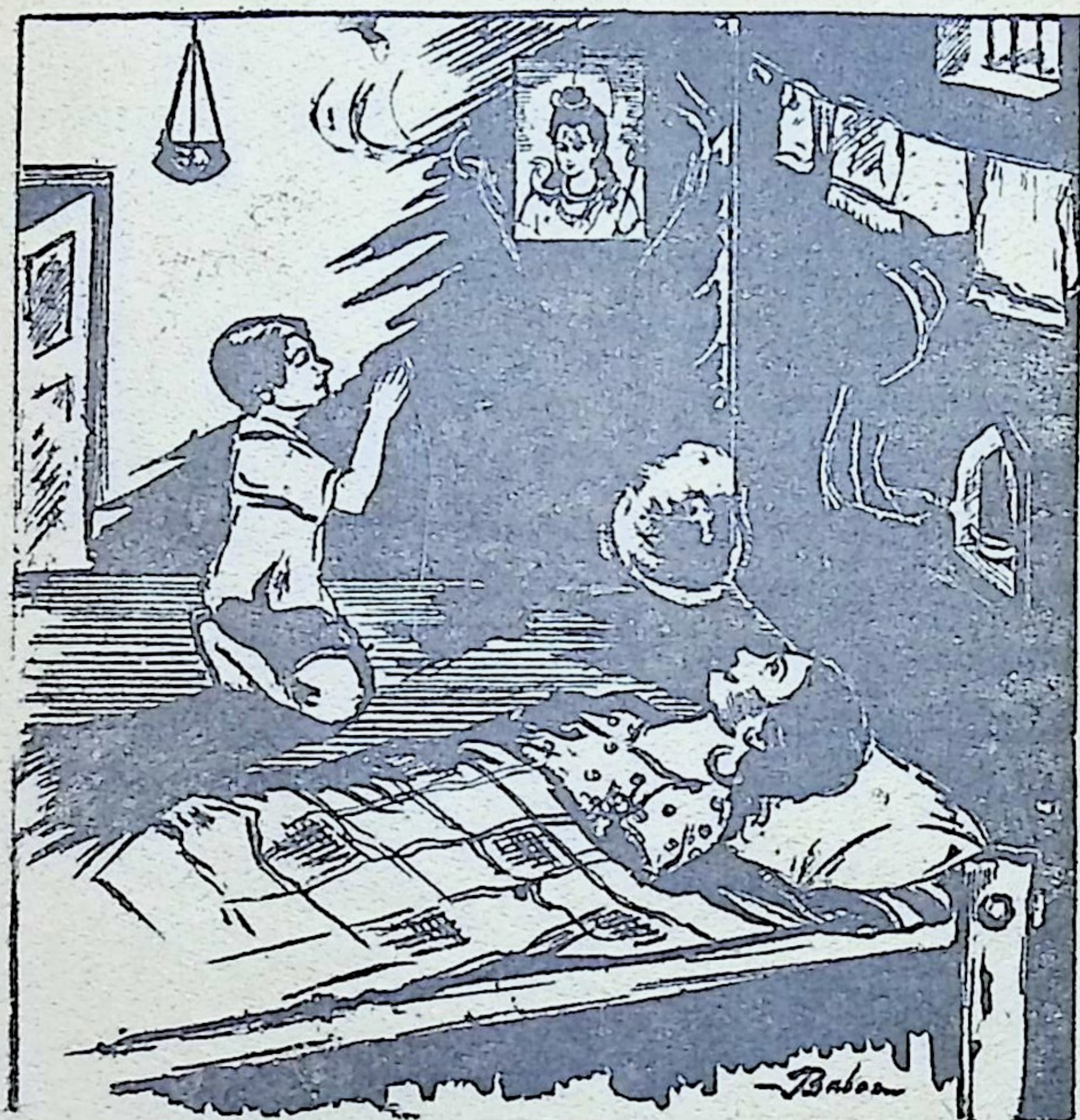
'देवदत्त अच्छा लड़का है?'

'उससे अच्छा लड़का मैंने देखा नहीं।'

'वीणा कैसी है?'

'अच्छी है। अब सोजा। अभी शरीरमें बुखार है। हवा न लगने देना। ओढ़नी शरीर पर ओढ़े रहना।'

वीणा बिस्तर पर लेटी रही फिर उसे सुषुप्ति लग गई। सांझको सेवकराम अपना लंबा लट्ठ कंधे पर रखे बत्तियाँ जलाने चला गया, देवदत्त वीणाके पासमें बैठा था। उसने घर में दीपक जलाया, साथ में अगरबत्ती जलायी। प्रार्थना करने



लगा। अन्त में बोला 'हे प्रभो वीणा का दुःख दूर कर दे। सेवक काका को प्रसन्नता प्रदान कर। उनके प्रयत्न व श्रम को यशस्वी होने दे।'

'तू क्या देवदत्त है?' वीणा ने आँखें मीचते हुए कहा।

'हाँ! नींद पूरी हो गई?'

'देवदत्त! मुझे पसीना आया है।'

'मैं पोंछता हूं। पहले खिड़की बन्द करता हूं। हवा नहीं लगनी चाहिये।'

देवदत्त ने खिड़की बन्द की। उसने वीणा का स्वीटर निकाला उसके शरीर का सारा पसीना अच्छी तरह से पोंछ दिया। फिर उसे स्वेटर पहना दिया।

'वीणा अभी पड़ी रहो। क्या तुमको गरम लेमन टी पिलाऊँ?'

'लेमन टी क्या होती है? उसे कौन बनायेगा?'

'मैं बनाऊँगा मुझे बनानी आती है।'

'मुझे बना दे। रंगूबाई स्वयं काफी पीती थी। मुझे कभी नहीं देती थी। फिर लेमनटी भी पीती होगी। भगवान् जाने!'

'लेमन टी से क्या होता है?'

'उससे बुखार शान्त होता है। भूख लगती है?'

देवदत्त अपने घरसे लेमन टी बनाकर लाया। वीणाने उसे गरम गरम पी लिया और ओढ़ना ओढ़ करके पड़ गई।

'देवदत्त तू मेरे साथ खेलेगा?'

'जरूर'

'मैं तुझे अच्छी लगूंगी?'

'अच्छे लगने में क्या है? तू क्या बुरी है?'

'रंगू माँ मुझे बुरा कहती थी। नाम रखती थी। बड़ आँख्या कहा करती थी।'

'मुझे तो बड़े नेत्र अच्छे लगते हैं। छोटे नेत्र वाले व्यक्ति तो दुष्ट प्रवृत्तिवाले होते हैं।'

'और बड़ी आंखोंवाले?'

'वे प्रेमी होते हैं तथा सुन्दर होते हैं।'

'तू पाठशालामें जाता है न?'

'हाँ तू जाती थी क्या?'

'मुझे पाठशाला कौन भेजेगा?'

'अच्छे हो जाने पर सेवक काका पाठशाला भेजेगा। मैं तुझे सिखाऊँगा। अक्लवर बनो। सेवक काका को हर काम में सहायता दे।'

'तू मुझे सिखा। तेरी मां सिखायेगी।'

'अब तू अधिक न बोल।'

'मैं आँखें बन्द करके पड़ी रहूंगी तू भजन गा।'

'कैसे भजन?'

'पहले जैसे। मैं सुन रही थी। प्रभु प्रार्थना की है न!'

'हां।'

'प्रभु किधर रहता है?'

'बहुत ऊँचे आकाश में। बोलो नहीं मैं भजन कहता हूं। सेवककाका का सिखाया हुआ भजन। सेवक काका का मन पसन्द भजन।'

तेरी शरण में आयके फिर आस किसकी कीजिए?
नहिं दीख पड़ता है मुझे दुनियां में तेरी शान का।
गंगा किनारे बैठ कर क्यों कूप का जल पीजिए। १।
हरगिज नहीं हूं लायक मैं गरचे तेरे दरबार का।
मेरी खता को माफ कर दीदार अपना दीजिये। २॥
पतित पावन नाम सुनके मैं शरण तेरी आ पड़ा।
अब सफल कर उस नामको अपना मुझे कर लीजिये॥ ३॥

मिलता है ब्रह्मानन्द जिसका नाम लेने से सही।
ऐसे प्रभु को छोड़ कर फिर कौन से हित कीजिये ॥ ४ ॥

देवदत्त की उम्र कोई अधिक न थी पर कितनी तन्मयता से उसने वह भजन गाया। सेवक राम के सानिध्यने उसके हृदय में भक्ति का बीजारोपण किया था। देवदत्त तो देवदत्त ही बन गया था।

वीणा सो गई थी। देवदत्त अपनी पाठ्य पुस्तक लेकर पढ़ने लगा। अपना काम पूरा कर सेवक राम आया। लट्ठ रखने की आवाज आई। फिर एक दो बार खांसने के बाद वह अन्दर आया।

'देवदत्त मुझे देर हो गई?'

'सेवक काका वीणा को पसीना आया था मैंने उसे अच्छी तरह पोंछ दिया। गरम गरम लेमन टी उसे पीने को दी। अब वह फिर सो गई है।'

'आज बुखार भाग जायगा। तुम सबकी मेरे को कितनी सहायता है, नहीं तो मैं अकेला कितना कर पाता?'

'सेवक काका तुम अकेले नहीं। तुम्हारे प्रेमियों की गिनती नहीं। तुम तो विश्वबंधु हो। मैं जाता हूं।'

सेवक राम अपने साथ कड़क पाव लेकर आया था। उसे उसने दूध में भिगोकर खाया। वीणा सुषुप्ति में थी। उसने आराम कुर्सी पर ही पैर फैला दिये। रात को दस बजे देवदत्त की मां ने आकर पूछा।

'सेवक काका! क्या रात्रि थोड़े देर बैठूँ?'

'आज वीणा सो जायगी ऐसा दीखता है। आज जागने

की जरूरत नहीं। जरूरत पड़ेगी तो आवाज दूंगा भला !'

'तुम अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखो।'

'प्रभु ही रखवाला है।'

सुबह होते ही वीणा प्रसन्न मुद्रा में बिस्तर से उठी। बुखार सर्वथा भाग चुका था। सभी पास पड़ोसियों को प्रसन्नता हुई। धीरे-धीरे उसे आराम मालूम होने लगा। वह चलने फिरने लगी। हंसने खेलने लगी। वह पास पड़ोस में जाने आने लगी।

* * * *

दिन अपनी गति से जा ही रहे थे। एक दिन देवदत्त की मां वीणा से बोली—'वीणा ! अब घर का थोड़ा बहुत काम करना चाहिए।'

'क्या काम करूं ? मेरे ध्यान में तो कुछ आता ही नहीं।'

'पहले अपने कमरे की साफ सफाई का ध्यान करो। सेवक काका को समय ही कहां मिलता है ? देख उस बाजू यशोदा बाई रहती हैं। उसको मैं आज कहूंगी। वह बड़ी ही व्यवस्था से रहती है। उसका छोटा सा कमरा है परन्तु सभी सामान यथास्थान रखा मिलेगा।'

'फिर मैं क्या करूं ?'

'सबेरे जरा जल्दी उठ। सेवक काका को सुबह ही चाय चाहिये। उसे तू तैयार कर। अंगीठी जलाओ। चाय का पानी रखो। रात्रिको जब तक वे काम करके आते हैं, तब तक शाक भाजी तैयार करके रखो। आते ही रोटी बन जायेगी।'

'मैं अच्छी तरह से नहीं बना सकती।'

'मैं तुझे सब कुछ सिखाऊंगी। सेवक काका जब तक बत्तियां जलाकर आता है, तब तक घरमें भोजन तैयार। वीणा के हाथ का सुस्वादु भोजन।'

'तुम मुझे सिखाओ। मैं सब कुछ करती चलूंगी।'

'बरतन भली प्रकार से मांजना। दो बार झाड़ू लगाओ। कोने की जगह झाड़ू ऊपर नीचे भली प्रकार मारो। कपड़े का झाड़न बनाकर खिड़की के ऊपर तथा चित्रों के ऊपर पड़ी धूल झाड़ो। सेवक काका के कुर्ते को साबुन से धोया करो। उन्हें बड़ा आनन्द होगा। समझी न!'

'वे तुझे अपनी ही पुत्री समझेंगे। तू उन्हें संतुष्ट करती चल। अच्छा है न?'

'मैं पाठशाला में जाऊँ न?'

'अगले जून से जा। जल्दी ही गर्मी की छुट्टी होनेवाली है। अभी घर पर ही अभ्यास कर। देवदत्त तुझे सिखायेगा, हमारे घरवालों की संगत कर। वे वृद्ध हो गये हैं। सुन्दर चित्र बनाते हैं अभी वे एक देवालय में भीति चित्र बनाने का काम कर रहे हैं।'

'मैं भी सीखूंगी। फिर सेवक काका के कमरे को अपने बनाये चित्रों से सजाऊँगी। सेवक काका का चित्र बनाने के लिये मैं देवदत्त से कहूँगी। उस चित्र पर मैं फूल माला चढ़ाऊँगी।'

'इधर उधर फूल नहीं है क्या जानक बाई?'

'देवदत्त ला देगा।'

उसदिन दोपहर में यशोदाबाई आई। सेवक काका के

कमरे की सफाई और सजावट की गई। पहले सारा सामान बाहर निकाला। बर्तन रखने के लिये दीवाल पर एक ब्रेकेट लगाया गया।

'वीणा हमारे घर एक छोटा तख्तपोश है। मैं उसे लाती हूँ। तेरे सोने के काम आवेगा। सेवक काका के लिये खाट इस ओर लगेगी और तेरे लिये तख्तपोश उस ओर।'

'बहुत अच्छा। परन्तु इस आराम कुर्सी का क्या करेंगे।'

'उसे बाहरी गैलरी में रखा जा सकता है। अभी बन्द करके रख दो जब जरूरत पड़े तभी लगाने का। इस ओर कोयले का टीन रखो। इस रस्सीपर सभी कपड़े तह करके रखती जा या इस संदूकमें।'

यशोदाबाई ने एक टूटे हुये खोके का एक संदूक बनाया, उसे खाट के नीचे रख दिया। उसके अंदर कपड़े रखे। घर में एक बड़ा सा शीशा था उसे दीवाल पर लटका दिया गया। इतने में देवदत्त स्कूल से आगया।

'वाह भई ! कमरा तो बहुत ही सुन्दर बन गया।'

'देवदत्त ! दीवाल पर चित्र लगें तो कैसा रहेगा ?'

'मैं लाता हूँ।'

देवदत्त शिवजी का एक सुन्दर चित्र लाया। वह उसी की कलाकृति थी।

'यह तूने बनाया है ?'

'हां'

'कितना सुन्दर है ? सेवक काका का भी एक चित्र बनाओ।'

'पास में वीणा बैठी हो ऐसा हो न ?'

'मेरी उस चित्र में क्या जरूरत है ?'

'वीणा ! अब मैं जाती हूं। कमरे को ऐसा ही साफ रखती जा। सेवक काका को कष्ट न पहुंचे। कुछ दिन पहले मेरा लड़का जब बीमार था, सेवक काका उसके लिये फल लेकर आता। उसे काट कर छील कर खिलाता। बैठा रहता। धैर्य देता। सेवक काका क्या है ? सबका देवता है। पूज्य है। जैसा नाम वैसा गुण है। सबकी सेवा करने वाले ऐसे वे राम हैं। गरीबों के तो वे दीन बन्धु हैं।

ऐसा कहती हुई यशोदाबाई चली गई। देवदत्त भी चला गया। वीणा अकेले ही वहाँ बैठी थी। कुछ देर बाद सेवकराम आया उसने अपना नगर लट्ठ उठाया। वह रोजमर्रा के काम पर चला गया, अपनी कर्तव्य पूर्ण संध्या बिताने, संसार को प्रकाश देने। वीणा भी उठी उसने अंगीठी जलाई। रंगूबाई के यहाँ उसे वह काम करना ही पड़ता था। काम करने की उसे थोड़ी बहुत आदत भी पड़ चुकी थी। उसने रोटी बनाने का विचार किया। उसने आटा गून्धा। अंगीठी पर तवा रखा। छोटी छोटी रोटी बनाने लगी। रोटियां अच्छी तरह से फूल रहीं थीं।

'क्यों वीणा क्या हो रहा है !' जानकीबाई ने आकर पूछा।

'रोटी बनाकर रखती हूँ।'

'तुझे अच्छी रोटियाँ बनानी आती हैं ? साग भाजी क्या बनायेगी ?'



'क्या बनाऊँ ?'

'चार आलू ले। क्या डब्बे में हैं ? हाँ, हैं, ये देख। मैं थालीमें रख देती हूँ। ये देख इतना नमक और इतना मसाला बस। अगर इच्छा हो तो थोड़ा सा अमचूर डालना। पहले आलू छौंक लेना।'

'अच्छा मैं छौंक लूँगी। सब सामान रख दिया है न ?'

'सेवक काकाको आज मेरे हाथ का भोजन मिलेगा।'

'कल सुबह चाय भी बनाकर मैं दूँगी। जो रोटियां बचेंगी वह चाय के साथ सुबह नास्तेका काम देंगी।'

'तुझे कहना ही क्या पड़ता है? समझदार है तू।'

जानकीबाई चली गई। वीणा प्रसन्न मुद्रा में थी। उसने आज सब काम किये थे। कमरे की झलक मन को मोहित करने वाली थी। बिस्तर यथास्थान सुव्यवस्थित लगे थे। भोजन तैयार था। उसे ऐसा निश्चय हो चला कि वह सब कुछ सीख लेगी। इसी स्वाभिमान से वह बैठी थी। उसने खिड़की की ओर दृष्टिपात किया ही था कि देवदत्त वहाँ आ पहुँचा।

'वीणा! बाजार के नाके वाले भिकुने सेवक काका के लिये ये दो संतरे दिये हैं। संभाल कर रख दो। काका को अच्छे लगते हैं।'

'भिकु ने दिये?'

'काका के सब काम करने वाले मित्र हैं। शाक भाजीवाले, फलवाले, विक्टोरिया (तांगा) वाले। तूने आज सब कुछ कर रखा है न वीणा!'

'हाँ।'

'अब पढ़ना लिखना भी सीखना जरूरी है।'

'तू मुझे सिखा।'

'मैं अक्षर लिख कर दूँगा, उनको देखकर लिखना जल्दी सीख जायेगी न?'

'कैसे?'

'तेरी आँखें मोटी मोटी हैं। मोटी आंखों में जल्दी अक्षर बैठेंगे, ऐसे।'

'मेरी आँखें तुझे अच्छी लगती है?'

'हां! बहुत अच्छी लगती हैं। गाय की आँखें ऐसी होती हैं।'

'मजाक करता है मेरी आंखें तो भैंस जैसी हैं, गाय बैल की सी नहीं।'

'गाय बैल की आँखें तो सुन्दर होती हैं। काली नीली मुझे अच्छी लगती हैं। तुझे हाथी की आंखें अच्छी लगती है?'

'हाथी की आंखें तो बहुत ही छोटी होती हैं।'

'तूने कभी देखी हैं?'

'बड़े मंदिर की सवारी निकली थी, उसमें आगे आगे हाथी ही था। कितना बड़ा था परन्तु आँखें कितनी छोटी थीं।'

'फिर क्या हिरन की सी आंखें कहूँ?'

'मैंने हिरन नहीं देखा। बहुत ही चपल होता है ऐसा सुना है। अरे वह देखो लठ्ठ की आवाज। काका आगये। ताली बजाते हुए उसने कहा।'

सेवकराम आया। कमरे के अंदर आकर खाट पर बैठ गया उसने अपने चारों ओर देखा सर्वत्र उसे आज बदल दिखाई।

'देवदत्त! चलो बेटा रोटी खाने।' जानकीबाई ने आवाज दी।'

वह चला गया सेवकराम के पास वीणा बैठ गई। उसने उसे प्रेम से गोद में बिठा लिया और एक प्यार भरा चुम्बन लिया।

'आज तूने खाना बनाकर रखा है, ऐसा लगता है! अभी तो तू बुखार से कल ही उठी है। अभी आराम करना जरूरी है।'

'मैं अब अच्छी हो गई हूँ। आज मेरे हाथ का खाना खाइए। अब तो रोज ही मैं बनाऊँगी। मुझे सबकुछ करना आयेगा।'

'आज कमरा कितना सुन्दर लगता है!'

'यशोदाबाई आई थी। देवदत्त ने यह चित्र दिया है। अब वह तुम्हारा चित्र बनानेवाला है।'

'मेरा चित्र किस लिए? प्रभुका ही चित्र काफी है।'

'ये संतरे नाके वाले भिकु ने भेजे हैं।'

'एक देवदत्त को दे आ।'

वीणा दौड़ती हुई गई। देवदत्त और उसके पिताजी खाना खा रहे थे। जानकीबाई बैठी हुई थीं।

'देवदत्त! काका ने यह संतरा भेजा है।'

'तोड़कर तीनों को बराबर दे दे।'

उसने संतरे का छिलका हटाकर अंदर की फाड़ियां तीनों को बराबर करके दे दीं। और दौड़कर वापस गई। वीणा और सेवकराम दोनों खाने को बैठे। सेवकराम ने वीणा के बनाये भोजन की सराहना की। भोजन हुआ।

'वीणा ! अब सोजा आज तो तू ने बहुत काम किया है। थकावट लग गई होगी।'

'मैं सोती हूँ। मुझे थपकियाँ दीजिए। और कोई अच्छी सी कहानी सुनाइए।'

वीणा थक चुकी थी। उसे जल्दी ही नींद आगई। सेवक राम उसे थपकियाँ दे रहा था। साथ में कहानी चल रही थी, पर वह अधूरी ही रह गई। सेवक राम ने प्रभु प्रार्थना की। 'हे प्रभो ! इस सद्‌गुणी कन्या को सदैव सुखी रखना। मैं तो अब थोड़े दिन का मेहमान हूं। तू ही इसकी रक्षा कर सन्मार्ग पर ले जा।'

—क्रमशः

प्यार और प्रदर्शन



ले. - अर्जुनदास बतरा

ए सुन्दर सुहाने पुष्प की चमकदार कली !
अपनी बिखरी हुई सौन्दर्यता छिपा ले मुझ से ।
किसी के सुन्दर चेहरे को सजाने वाली ।
अपना यह विकृत रूप छिपा ले मुझ से ॥ १ ॥

मुझे यह है तू ने इक बार कहा था ।
प्यार किसी का मुहताज नहीं होता ।
जीवन ईर्षा द्वेष में कभी पल नहीं सकता ।
शरीर बाजार में कभी बिक नहीं सकता ।
आत्मा की पुकार नीलाम नहीं हो सकती ।
सौन्दर्य अपमान की पूजा नहीं कर सकता ॥ २ ॥

पर आज तुम्हारी हार मेरे सामने है ।
कैसे मैं तुझे अपने दिल में सम्मान दूँ ?
किस दिल से कहूँ तुझे प्यार की रानी ।
कैसे कहूँ तुझे टूटे हुए दिल का सहारा ?
तू ने बेची है चौराहे पे अपनी जवानी ।

कांचन की चमक दमक ने तुझे रिझाया है ॥ ३ ॥
यह तेरा प्यार तेरे शरीर का व्यापार है।
परन्तु तेरी आत्मा भी तो कुछ कहती है।
यह धड़कता हुआ दिल भी कुछ कहता है।
तू ने अब प्यार की सीमा बांधी है।
यद्यपि मंहगे दामों में तूने इसे बेचा है।
तो भी यह व्यापार सदा नहीं रहने वाला है ।४।

संसार को प्यार से वीरान करने वाली।
शरीर सुख का तूफान ठण्डा पड़ने वाला है।
क्या स्वर्ण की चमक ने तुझे इतना लुभाया है।
कि तू प्यार की अर्थी को उठवाये।
क्या यही प्यार की मर्यादा है।
कि तेरी हर चितवन का नीलाम हो ॥ ५

देख दुनिया में वासना के हाथों।
प्यार की आबरू मट्टी में मिली जाती है।
संयम के नाम पर शोर होता है।
नियम के लिये तूफान उठाये जाते हैं।
सौन्दर्य घुट घुट के रह जाता है।
ऊपरी चमक दमक उसको दबाये जाती है ॥ ६ ॥

मैं तुझसे अलग सन्तुष्ट होके रहता हूँ।
अब तू किस मुँह से मेरे सामने आती है।
यह प्यार का प्रदर्शन मैं इसे जानता हूँ।
क्योंकि तू डरते हुए मेरे सामने आती है ॥ ७ ॥

(कहानी)

बदलती राहें

ले० दुर्गाशंकर त्रिवेदी वेदालंकार

"हम भी मेले में जावेंगे, हम भी जावेंगे, हम तो रहट में झूलेंगे" ये शब्द आज चारों ओर सुनाई दे रहे थे। बालक तो मेले में जाने के क्षणों का चिन्तन कर मन ही मन आनन्द मना रहे थे, मानो मेले में उन्हें स्वर्ग ही मिल जावेगा। लेकिन श्यामा घर में बैठी बैठी सुबक रही थी। अपने आपको बारम्बार कोस रही थी। आखिर क्यों न कोसे? उसकी सारी की सारी हमउम्र सहेलियां मेले में जावेंगी और वह यहां पड़ी रहेगी। आखिर वह करे भी तो क्या? वह कपड़े बदल रही थी तभी उसकी भाभी ने उसे डाटकर कहा "चुड़ैल कहीं की, पहले तो खसम को खा डाला अब यहां आई है......। कहां जा रही है, मुई! कुल की नाक कटानी है क्या, पति को मरे साल भी नहीं हुआ और रांड नखरे करते लजाती नहीं।"

"भाभी गालियां मत दो। आज तो सब मेले जा रहे हैं, मैं भी मेले में जाऊंगी।"

"अरी रांड, क्या बक रही है, वंशकी लाज भी कोई चीज

है तेरे लिये, चल हट नहीं जाना मेले में, चल बैठ अन्दर।"

उसके छोटे भाई राकेश ने दरवाजे में घुसते घुसते ये शब्द सुनलिये, वह नयीपीढ़ी का नवयुवक था। गरजते हुए बोलाः—

"देखता हूं कौन नहीं जाने देता उसे मेले में।"

"अरे लाला, तुम भी क्या पागल हो, क्यों वंश की नाक कटा रहे हो। यह मेले में नहीं जावेगी। अभी तो विधवा हुई है, मेला कहां भागा जाता है? हम सब मेले में जावेंगी ही, इसके लिये भी कुछ ले आवेंगी, यह नहीं जावेगी घर ही रहेगी।"

"अरे वाह भाभी? खूब दलील यह तो, वह क्यों नहीं जावेगी? वह सबसे पहले जावेगी। वाह भाभी, सारा जमाना बदलता जा रहा है और तुम हो कि फिर भी वही पुरानी लकीरें पीट रही हो! सब लोग मेले में दौड़ते जावें, आनन्द मनावें, मन चाही वस्तुयें खरीदें और श्यामा, मेरी बहन श्यामा घर की चार दीवारी में बन्द सुबकती रहे, यह सरासर अन्याय में सहन नहीं कर सकता हूँ।"

"चुप रह! चुप रह! बड़ा आया है लेक्चर झाड़ने वाला, बाल विधवा को जगत् के सामने घुमाते फिराते शर्म नहीं आये गी। क्यों बापदादाओं की इज्जत मिट्टी में मिलाने की बात कर रहा है, राकेश यदि ऐसे ही समाज सुधारक के बच्चे बनना था, तो किसी भी चमार के घर जन्म लेना था, चमार के घर!' राकेश के बड़े भाई रमेश ने चिल्लाते और गुस्से से कांपते हुए कहा।

"दादा, आप तो मुफ्त में गर्म हो रहे हो। क्यों नहीं, आप फिर इस बात पर ठण्डे दिमाग से सोच लें।"

"किस बात पर, मैंने खूब सोच लिया है, मैं लोगों की उठती अंगलियों को सहन नहीं कर सकता हूँ।"

"तो फिर सुन लो दादा, श्यामा मेले जायगी और जाकर रहेगी। जो रोकेगा उसे देख लूँगा मैं, एक अबोध बच्ची को जिसके खेलने खाने के दिन हैं घर की काल कोठरी में बन्द रखते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती है।"

"राकेश! तूने श्यामा को घर से बाहर भी निकाला तो याद रखना, तू नहीं या मैं...वही...।'

"तो दादा, देख लेना! कर लेना जो तुम से हो वह कर लेना।"

× × ×

'चल उठ श्यामा, चल। मेले में चलें।'

भोली भाली १२ वर्षीय श्यामा प्रसन्नता से नाच उठी वह उसी समय अपने भाई राकेश के साथ चल पड़ी। बाहर उसके बड़े भाई, भाभी आदि सब खड़े थे। श्यामा ठिठकी, परन्तु वह राकेश के इशारे पर उसके साथ चल पड़ी। उसके जानेपर रमेश ने कहा, "वाह रे जमाने! कल की विधवा आज मेले में छोकरों से हंसती गाती बात करेगी, भगवान् ही रक्षक है, धर्म का....बापदादा की इज्जत आज....। हे भगवान् तू ही....'

× +

शामको किसीने खाना नहीं खाया, सबके सब जहां जगह

नजर आई पड़ रहे। सब अर्द्ध निद्रित अवस्था में इधर उधर सो रहे थे। अचानक किवाड़ खटखटाने की आवाज आई रमेश ने सांकल पकड़ कर कहा "कौन है मुर्दा, रात को भी चैन से नहीं सोने देते हैं ?"

"मैं हूँ राकेश।"

"क्यों, क्यों आये हो यहां, क्या काम है अब यहां तुम्हारा, जो यहां आये हो, यह घर, और न यह किवाड़, सब तुम्हारे लिये कभी भी नहीं खुल सकेगा ?"

"भैया"

"जा बे, भैय्या के बच्चे ! चला जा यहां से अब मरो तो इस घर में कदम रखना। बाप दादाओं की परम्परा, इज्जत पर कालिमा पोतते तुम्हें शर्म नहीं आई।"

"तो सुन लो भैय्या, मैं भी अब यहां नहीं आने का।"

"चल श्यामा ! देख लेंगे, इनका न्याय इनके साथ। आखिर मैं भी इन्सान हूँ, कहीं भी दो रोटी कमा खावेंगे।"

कुछ देर तक रमेश ने फिर कोई आवाज न सुनी, केवल दो व्यक्तियों के जाने की पदचाप सुनाई दी, तो वे एकदम घबरा उठे। किवाड़ खोला, तो चन्दा की चांदनी में उसने दोनों भाई बहनों को, सामने स्टेशन की ओर जाते देखा, वे मन ही मन बोले—"देख लूँगा बच्चू को। यह अकड़ कितने दिन चलेगी ?"

आकर के वे बिस्तर पर पड़ गये। मन ही मन वे खूब घबरा गये। उनका मन बार बार उन्हें धिक्कार रहा था, मन ही मन वे बोल उठे। सचमुच राकेश सच ही तो कह रहा

था, आखिर श्यामा की जिंदगी तो मैंनें ली बाल विवाह करके उस गुलाब की अविकसित कली को विधवा का रूप दिया है। अब वे न मालूम कहां जावेंगे ? न मालूम क्या होगा कुछ देर फिर भाव बदले "ठीक है, ठीक है राकेश अभी तक मेरी कमाई पर मौज मारता था। बच्चू को अब दाल पानी का भाव मालूम पड़ेगा।"

यह विचारते विचारते वे निद्रादेवी की गोद में सो गये।

* * *

"लखनऊ, लखनऊ" की आवाजों से सारा प्लेट फार्म गूंज उठा। आवाज सुनते ही राकेश उठा। मेले से लाई सामान की थैली उठाते ही उसने श्यामा को जगाया, और दोनों ही उतर पड़े। प्लेट फार्म पर दोनों ने नलपर हाथ मुँह धोये फिर चल पड़े वे शहर की ओर। एक धर्मशाला में जाकर उसने एक कोठरी किराये पर ली और सामान रखकर श्यामा को वहीं ठहरा दिया।... कुछ देर बाद वह पुनः लौटा। बोला श्यामा मैं मजदूरी करने जाऊंगा, तुम यहीं रहना, देखना कहीं जाना मत, यह लो एक रुपया। भूख लगे तो पास की दूकान से कुछ लेकर खा लेना। एक रुपया उसकी हथेली पर रखकर राकेश निकल गया।

श्यामा अब असहाय की भांति कोठड़ी में अकेली रह गई। उसने कोठरी बंद कर ली और एक कोने में पड़ गई। न तो उसने कुछ खाया न पिया, दिनभर रोती रही वह।

शाम को राकेश आया, वह एक बाल्टी पानी, एक दरी

और खाने पीने का सामान साथ में लाया था। कोठरी बंद देख वह बोला "श्यामा! श्यामा!"

'श्यामा' भाई की आवाज पहचान गई। वह तुरंत ही उठ खड़ी हुई उसने किवाड़ खोला, उसकी आंखें सूजी हुई थीं। सूजी आंखें देखते ही राकेश बोला —"रोती क्यों रही, पगली क्या करें, यह सब तो अपने भाग्य का प्रताप है, नहीं तो अभी तेरी उम्र ही क्या है?'

कुछ देर बाद दोनों ने हाथ मुँह धोकर खाया पिया और वे दोनों चल दिये मकान की खोज में। कुछ देर बाद ही एक मकान ५ रु. माहवार किराये पर तय हो गया। वे वापस धर्म-शाला आये और अपना सामान वहां लेते गये।

अब श्यामा दिनभर पड़ोसियों की लड़कियों में खेलती रहती, राकेश दिन भर मजदूरी करता थकामांदा शाम को घर लौटता और पानी लाता, फिर रोटियां बनाता, श्यामा भी मदद करती। कुछ ही दिनों बाद श्यामा रोटी बनानेमें अभ्यस्त हो गई। राकेश ने भी मजदूरी की थोड़ी बचत से घर गृहस्थी का थोड़ा सामान खरीद लिया, अब वे दोनों प्रसन्न थे।

श्यामा कभी कभी कहती —"भैया, घर चलो। मुझे तो बड़े भैया और भाभी की बड़ी याद आती है।'

राकेश उसे सांत्वना देता और वह चुप हो जाती।

* * * *

राकेश आज एक पंसारी की दूकान पर सामान खरीद रहा था कि उसकी नजर पास में पड़े 'नवभारत टाइम्स' पर पड़ी। एक विज्ञापन पर उसकी आंखें टकराई, उसने पेपर उठाया, पढ़ा लिखा था:--

'प्रिय राकेश'

दिल को पत्थर का करके मैंने उस दिन तुम्हें डाटा था। सचमुच मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है। अब तुम जहां भी हो तुरन्त ही चले आओ। यदि खर्च को पैसा न हो तो लिखो, ताकि मैं लेने आ जाऊँ। तुम जब से गये हो, हम दोनों की आत्मा हमें धिक्कार रही है और हम बीमार होगये हैं, तुम्हारी प्रतीक्षा है।

--रमेश

राकेश ने अब सामान नहीं लिया, वह घर आया। आते ही उसने श्यामा से कहा चल श्यामा सब सामान बांधो। अब हम यहां नहीं रहेंगे। भैया बीमार हैं, चलो घर चलें। श्यामा प्रसन्नता से नाच उठी। राकेश ने मकान के किराये का हिसाब किया और चल दिया एक रिक्शे में बैठ स्टेशन की ओर.............!

शीतल मंद पवन सबके मन में एक प्रसन्नता की लहर फैलाये बह रहा था। अचानक ट्रेन रुक गई। दोनों ही अपना गांव आया देखकर उतर पड़े। राकेश सामान सम्भालने लगा। लेकिन श्यामा दौड़ी २ घर गई। देखा भाभी मुह धो रही है। वह बोली नहीं, तुरन्त पीछे से जा लगी। भाभी चौंक पड़ी, श्यामा को देख वह प्रसन्नता से मुखरित हो उठी। दोनों एक

दूसरे को देख रहे थे। इतने में कुली के साथ राकेश को सामान उठाकर आते देख, भाभी चिल्लाई अजी सुनते भी हो श्यामा, राकेश दोनों ही आ गये हैं।

अर्द्ध निद्रित अवस्थामें रमेशने करवट बदलते हुये कहा–क्यों दिल जलाती है न मालूम कहां होंगे मेरे भाई बहन।

'हम आ गये भैया।' श्यामा की आवाज सुनते ही रमेश चौंक कर उठ खड़ा हुआ।

राकेश ने भाई व भाभी के पैर छुये, दोनों की आंखों से आंसुओं की अविरल धारा बह रही थी। भाभी श्याम को ले घर में चली गई। इधर दोनों भाई अपने बीते दिनों की याद-कर बातें कर रहे थे।

* * * *

आज राकेश और रमेश दोनों भाई अतिथियों का स्वागत कर रहे थे। द्वार पर शहनाइयां बज रही थीं। आंगन में उन्हीं मंत्रों का उच्चारण हो रहा था, जिनसे कि दो हृदय मिलकर यज्ञ भगवान् की साक्षी में एक होने की प्रतिज्ञा लेते हैं।

उसी शुभ वेला में भाभी और रमेश ने कन्यादान दिया। राकेश प्रसन्नता के मारे चुप न रह सका वह बोलाः–

'दादाजी यह युग बदलता है, बदलती राहें हैं, पुरानी लकीरों को छोड़ जाओ आज हम सब बदलती राहों पर अपने कदम उठावें।'



सम्पादकीय

अपने देश-भारतवर्ष में योग अनेक विधानों के साथ जुड़ा हुआ है और योग की साधना अनेक रूपों में प्रचलित है। वस्तुत: 'योग' शब्द इतना व्यापक बन गया है कि जीवन की समग्र क्रियाओं को 'योग' के अन्तर्गत सन्निविष्ट कर लिया गया और यह बताया गया कि मानव का समग्र जीवन ही योगमय है। जीवन की समग्र क्रियाओं का आरम्भ अष्टांग (हठ) योग से होता है और उनका अन्त—उनकी क्रमश: संक्रमण—राजयोगतक—साधना की अन्तिम भूमिकातक पहुंच जाता है जीवन अपनी चरितार्थता--सिद्धि की प्राप्ति कर लेता है। यही जीवन की सफलता है, सुन्दरता है, दिव्यता है।

सकाम-निष्काम कर्मयोग, प्रजा-परिपालन योग, ऋद्धि-सिद्धि योग, भक्तियोग, अद्वैत (वेदान्त) योग, उपासना योग, तन्त्र-


जन्म मृत्युके फेरेमें
रामतीर्थ
दिवाली अंक १९६२
यमराज


सत् चित् आनंद
मोक्ष


ईर्षा
मत्सर
मद
मोह
लोभ
क्रोध
काम


समाधि
ध्यान
धारणा
प्रत्याहार
प्राणायाम
आसन
नियम
यम
संसार सागर

योग, मन्त्र योग, लय योग, स्वर विज्ञान योग, द्वैता द्वैत योग, अनासक्ति योग, अष्टांग योग, आदि अनेक प्रकार के योगों का अविष्कार हमारे ऋषि-मुनि-महात्माओं ने किया है। यह सभी योग अपने-अपने साधन क्षेत्र में परमोपयोगी है और सभी साधक की अभीष्ट सिद्धि करते है। जिसकी जिस योग की ओर विशेष अभिरुचि होती है, वह तदनुरूप जीवन-साधना करता है। कोई अपने विचारों को ही कार्यरूप में परिणत करता है और कोई सफलता-सिद्धि प्राप्त होनेतक सतत प्रयत्न शील रहता है।

जीवन में निराशाकी स्थिति

जीवन के योगमार्ग–गन्तव्यमार्ग मार्गपर आगे बढ़ते समय अनेक प्रकारकी विघ्न बाधाओं का सामना करना पड़ता है। जीवन की अनेक प्रकार से कसौटी होती है—उसे कठिन परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होना पड़ता है। जीवन पथ में ऐसे विषम बवण्डर आते हैं, जिनकी चपेटमें आकर मानव हताश हो उठता है। साधक, पथिक कि—कर्तव्य विमूढ़ हो उठता है। आप किसी भी योग—मार्ग के अनुगामी होंगे, आपकी इच्छा शक्ति कितनी ही बलवत्तर क्यों न होगी, आप अपने ध्येय पथ के प्रति चाहे कितने भी दृढ़ निश्चयी होंगे, आपका सिद्धान्त कितना स्थिर और स्थायी होगा, आपकी भावनाएं कितनी ही उन्नत होंगी, आपके विचार कितने ही उर्ध्वगामी होंगे। फिर भी, योगमार्गपर अग्रसर होते समय आपके समक्ष प्रतिकूल संयोग उपस्थित हो सकते हैं। बंगाल के चैतन्य महाप्रभुजी

भक्तिभावना के आवेश में जब भगवान् का भजन कीर्तन करते थे, तब अड़ोस पड़ोस के सभी लोग आपत्ति प्रकट करते थे। और उनके भजन कीर्तन में अवरोध उत्पन्न करते थे—उसे बन्द कर देने के प्रयास करते थे। महाराष्ट्र के महान् सन्त ज्ञानेश्वर के समक्ष स्वयं उनके सम्प्रदाय के अनुयायी ही अनेक प्रकार से विरोध अवरोध उत्पन्न कर उनकी साधना में बाधा उपस्थित करते रहते थे। महात्मा गांधी को भी स्वान्त्र्य योग की साधना में विदेशी सत्ताकी ओर से अनेक प्रकारके कष्ट सहने पड़े थे। पं० जवाहरलाल नेहरू ने भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लक्ष्य—मार्ग पर चलते समय कारावास आदि नाना यातनाओं का सामना करना करना पड़ा था। स्वामी रामतीर्थ जी को बचपन में विद्यार्थी जीवन काल में अनेक प्रकारकी शारीरिक, मानसिक और आर्थिक कठिनाइयोंने भीषण संकटमें डाल दिया था। इन सब संकटों और यातनाओं को सहते हुए भी उक्त महानुभाव अपने ध्येय—पथ से अणुमात्र विचलित नहीं हुए और अन्ततः अपने ध्येय को सफल बनाया। यही कारण है कि आज इन महात्माओं का नाम इतिहास में अमर हो गया है।

निराशा में भी व्यक्ति महान् बन सकता है

एकमात्र भारत ही नहीं वरन् अखिल विश्व के इतिहास का अवलोकन करने से पता चलता है कि निराशा, संकट, कठिनाई, कसौटी आदि स्थितियां मानव-जीवन को उर्ध्वगति की ओर ले जाती है, क्योंकि मानव ही एक ऐसा प्राणी है,

बौद्धिक प्रतिभा, विद्या, अनुभव, कार्य कुशलता, चातुर्य कला सहन शीलता धैर्य, शक्ति आदि सद्‌गुणों के प्रभाव से गन्तव्य स्थानपर पहुँचनेके लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहता है।

आपका जीवन और ध्येय--सिद्धि

जीवन के प्रभातकाल से वर्तमान कालतक आपके जीवन में अनेक बार ऐसे अवसर आये होंगे, जब कि कभी सुख और कभी दुःख का अनुभव हुआ होगा। आपकी आयु अभी कम हो या अधिक, फिर भी आपको नाना प्रकार के अनुभव प्राप्त हुये होंगे, यदि नहीं हुये तो आगे चलकर होंगे। इस सम्बन्ध में किसी दिन आपने आजतक कुछ सोचा है या नहीं ? यदि नहीं सोचा तो जल्दी से सोचना होगा और यदि सोचा हो तो उसे कार्य रूप में परिणत करना होगा।

आपका यह सोच-विचार किस ओर होना चाहिये-वस्तुतः सब योगों के मूल अष्टांग योग की ओर। यदि मानव अष्टांग योग का आधार ग्रहण करे तो उसे किसी प्रकार की सांसारिक बाधाएँ अपने कर्तव्य से विचलित नहीं कर सकतीं। वह मुक्ति--मार्ग की ओर अनायास बढ़ता चला जाता है। इसका सर्वांग पूर्ण साधन मानव को पूर्णता की स्थिति पर पहुँचाता है। यम--नियमादि और मल-शोधन कर्म से विशुद्ध और आसनों से दृढीभूत शरीर में विविध प्राणायामों द्वारा भक्त और प्राणी को दृढ़बन्धन पूर्वक सुस्थिर बनाया जाता है। मनकी स्थिरता जो प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि आदि

का विशेष फल है से प्राणवायु स्थिर होता है और प्राणवायु की स्थिरता से बिन्दु की स्थिरता सहज सिद्ध होती है। बिन्दु की स्थिरता ही वस्तुतः अष्टांग योग की सिद्धि है। अमृत सिद्धि है मृत्युंजय शक्ति की सिद्धि है। यही आत्मसिद्धि है, आत्मलाभ है। बिन्दु के चांचल्य से मन, चित्त, शरीर सभी चलायमान रहते हैं और इतनी पतित और निर्बल अवस्थापर पहुँच जाते कि आत्मतेज के ज्वलन्त प्रकाश का अनुभव वे कर नहीं सकते 'नायमात्मा बल हीनेन लभ्यः।' इसलिये मानव का कर्तव्य है कि वह अष्टांग योग की साधना में निरत होकर प्राण, बिन्दु मन पर जय प्राप्त करे और उसके फलस्वरूप अमृतत्व की प्राप्ति करे, मृत्युंजय अवस्था में प्रतिष्ठित है।



सुकृत-पुंज मंजुल अलि माला,
ज्ञान-विराग विचार मराला,
धुनि, अवरेव कवित गुण जाती,
मीन मनोहर ते बहु भांती ।

सुकृत पुंज सत्कर्मों का समुदाय इसमें मंजुल अलिमाला (नयनाभिराम भ्रमर समूह) के समान लक्षित है और ज्ञान-वैराग्य के उज्ज्वल विचार मराल-हंसों के रूप में सुशोभित हैं । ध्वनि अवरेव आदि नाना प्रकार के काव्य-गुण हैं, वही विभिन्न प्रकार के मनोहर मत्स्य हैं ।

धरम, अरथ कामादिक चारी,
कहब ज्ञान-विज्ञान विचारी,

नव-रस, जप-तप योग विरागा,
ते सब जलचर चारु तड़ागा ।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि चतुः-पुरुषार्थों तथा ज्ञान--विज्ञान का विचार पूर्वक वर्णन करूँगा, श्रृंगार, वीर, करुणा, आदि नव रसों, जप-तप, योग-वैराग्य आदि विधान यह सब इस सुन्दर तड़ाग के नाना प्रकार के जलचर हैं।

सुकृती साधु नाम-गुण गाना;
ते विचित्र जल विहग समाना,
सन्त-सभा, चहुँ दिन अमराई,
श्रद्धा ऋतु वसन्त सम गाई ।

सत्कर्म निरत साधु सज्जनों का नाम माहात्म्य और गुणों का कीर्तन विचित्र तरह--तरह के जल पक्षियों के समान विल-सित है। सन्तों की धार्मिक संस्थाएँ इस सरोवर में चतुर्दिक फैली हुई अमराई आम की बगीची है, जहां भगवद् गुण-गान के प्रति श्रद्धा आस्था के समान वसन्त ऋतु की शोभा सुरभित रहती है ।

भक्ति निरूपण विविध विधाना,
क्षमा दया द्रुम लता विधाना,
संयम नियम फूल-फल ज्ञाना,
हरि-पद-रति-रस वेद बखाना ।

विविध प्रकार से भक्ति तत्त्व का निरूपण, भक्ति साधना का विधान तथा क्षमा दयादि गुणों का वर्णन किया गया है, वह इस मानस के आसपास द्रुम लताओं का वितानसा तना हुआ है। यहां संयम नियम आदि फूलों के रूप में सुशोभित और सुरभित हैं और ज्ञान (आत्मस्वरूप पूर्णतया परिचय) ही आनन्ददायी मधुर फल है।

पुलक वाटिका बाग वन, सुख सुविहंग विहारु।
माली सुमन सनेह जल, सींचत लोचन चारु॥

पुलक-उल्लासमय जीवन प्रफुल्लित वाटिका वन बाग के समान हैं और इस उल्लास में आन्तरिक आनन्द विद्यमान है, वही विहंगों का आनन्द कल्लोल है। पावन मनरूपी माली अपने सुचारु लोचनों के स्नेह सलिल से सदैव सींचता रहता है।

जे गावहिं यह चरित सँभारे,
ते यहि ताल चतुर रखवारे,
सदा सुनहिं सादर नर-नारी,
तेइ सुर बर मानस अधिकारी।

जो लोग इस रामचरित्र का सावधानी के साथ तन्मयता के साथ कीर्तन करते हैं, वही बुद्धिमान् महानुभाव इस तड़ाग की सजगभाव से रक्षा करते हैं और जो स्त्री-पुरुष इसे आदर पूर्वक भक्तिभाव के साथ सुनते हैं, वही पुण्यात्मा नरदेव इस

मानस के अधिकारी हैं।

अति खल जे विषयी बक कागा,
इह सर निकट न जाहिं अभागा,
शंबुक भेक सिवार समाना,
इहां न विषय कथा रस नाना।

जो लोग अत्यन्त दुष्ट स्वभाव, विषय लिप्सु तथा बक काक के समान मलिनमन हीनकर्मी हैं, वह कभी इस सरोवर के समीप नहीं जा सकते और जाते भी हैं तो भगवत् कथा के समय बक-बक और कांव-कांव करके विघ्न उपस्थित करते हैं। वह शंबुक (घोंघों) और भेक (मेढ़क) के समान उनका जीवन निस्सार है। इस हरि कथा में उनका मन कैसे चिपक सकता है! क्योंकि यह विषय कथा नहीं, बल्कि नाना रसों से परिष्कृत भगवत्कथा है।

तेहि कारण आवत हिय हारे,
कामी काक बलाक बिचारे,
आवत इहि सर अति कठिनाई,
राम कृपा बिनु आय न जाई।

जिनके लिये यह सरोवर अगम्य है, कामाग्निदग्ध काक-बगुले कभी विवश होकर आते हैं। वह बड़ी कठिनाई से इस सरोवर के तटपर आने के प्रयत्न करते हैं, किन्तु बिना रामका कृपापात्र बने यहां आना कैसे सम्भव है! अतः वे आ नहीं पाते।

कठिन कुसंग, कुपंथ कराला,
तिनके बचन व्याघ्र-हरि-व्याला,
गृह कारज नाना जंजाला,
ते अति दुर्गम शैल विशाला।

जो लोग कठिन कुसंग और विकराल कुमार्ग में पड़े हुये है, वही अनेक प्रकार कठोर कूट वचनों और दुर्व्यवहार में नित्य लगे हुये हैं। वे व्याघ्र, सिंह और सर्पों के समान भयानक बने हुये हैं, जो रामभक्ति और सदाचार के नियमों में बाधक हैं। अनेक गृहस्थी के कार्य व्यापार-व्यवहार और अन्य नाना प्रकार के जंजाल भी (राम-भक्ति के पथ में) दुर्गम्य विशाल शैल के समान खड़े हुये हैं-रामभक्ति का पथ दुर्गम्य हैं, उसके आचार-विचार दुस्साध्य हैं।

वन बहु विषय मोह-मद-माना,
नदी कुतर्क भयंकर नाना।

उनके सामने मोह, अहंकार सम्मान लिप्सा आदि भयंकर जंगल के रूप में विद्यमान हैं और तरह-तरह के कुतर्क-कुत्सित विचार भयंकर दुर्लभ नदियों के समान लहरा रहे हैं।

जे श्रद्धा, संबलरहित, नहि सन्तन कर साथ,
तिन कहं मानस अगम अति, जिनहिं न प्रिय रघुनाथ।

जो लोग श्रद्धा संबलरहित हैं, अर्थात जो प्रभु पर विश्वास नहीं करते, जिन्होंने कभी सत्संगति में जीवन को विकसित

नहीं बनाया उनके लिये यह रामचरित 'मानस' अगम्य है अथाह है अर्थात् वे इस रामायण के महत्त्व को समझ नहीं सकते।

जो करि कष्ट जाय पुनि कोई,
जातहिं नींद जुड़ाई होई,
जड़ता जाड़ विषम उर लागा,
गयउ न मज्जन पाव अभागा।

और यदि कोई कष्टपूर्वक अतिच्छापूर्वक जाता है तो पहुंचते ही निद्रारूपी शरदी से वह जकड़ जाता है, जड़त्व-रूपी शीत हृदय का स्पर्श करता विषम शीत से वह कांपने लगता है, इसलिये वे अभागे इस मानस के समीप तो पहुंच गये, परन्तु मज्जन न पा सके—स्नान न कर सके।

करि न जाय सर मज्जन पाना,
फिरि आवै समेत अभिमाना।
जो बहोरि कोउ पूछन आवा,
सर निंदा करि ताहि सुनावा।

वे इस सर में न तो स्नान ही कर सके और उसके जल को पान कर सके। वे बढ़े अभिमान के साथ वापस लौट आते हैं-सरोवर के किनारे से फिर कोई इस सरोवर के मर्म को पूछने आता है, तो वे उसे इसके विषय में निन्दात्मक बातें सुनाते हैं।

सकल विघ्न व्यापहिं नहिं तेही,
राम कृपा करि चितवत जेही,

सोउ सादर सर मज्जन करही,
महाघोर त्रय ताप न जरहीं ।

जिस भाग्यवान् पर भगवान् रामकी कृपा दृष्टि है, उसके लिये संसार में कोई विघ्न बाधक नहीं है। वही पुण्यात्मा इस रामचरित सर में सादर अवगाहन करते हैं, फलतः वे जगद् व्यापी त्रयताप से सदैव सुरक्षित रहते हैं।

ते नर इह सह तजै न काऊ,
जिनके रामचरण भल भाऊ,
जो नहायचह इहि सर भाई,
सो सतसंग करौ मन लाई ।

ऐसे ही लोग इसे कभी नहीं छोड़ते इस मानस के तट क्षेत्र में सदैव रहते हैं जिनके हृदय में भगवान् राम के चरणों प्राप्ति पवित्र भाव भरा है। इसलिये भाइयो, यदि कोई इस मानस सरोवर में डुबकी लगाना चाहता है, उसे सच्चे मन से सत्संग में रहकर तदनुकुल अपने जीवन का विकास करना पड़ेगा।

अस मानस, मानस चख चाही,
भई कवि बुद्धि विमल अवगाही,
भरेउ हृदय आनन्द उछाहू,
उमँगेउ प्रेम-प्रमोद प्रयाहू ।

यह रामचरित मानस ऐसा है कि इसके लिये मानस चख आन्तरिक नेत्र (भीतर की आंखें) चाहिये। बाबा! इनकी

आंखें खोलना पड़ेगा। इसीमें अवगाहन करने के फलस्वरूप कवि (तुलसीदासजी) की निर्मल हो गई। हृदय आनन्द और प्रमोद का प्रवाह उमंगित हो उठा।

चली सुभग कविता सरिता सी,
राम विमल यश जल भरिता सी,
सरयू नाम सुमंगलमूला,
लोक वेद मत मंजुल कूला।

राम के विमल यशरूपी पवित्र जलराशि से संयमित होकर (तुलसी की) सुभाग कविता सरिता चल पड़ी धारा बनकर बहने लगी। इसका नाम सरयू है, यह महासंगलराशि है तथा लोक और वेद-मत-आचार इसके सुशोभित तट-क्षेत्र है।

नदी पुनीत सुमानस नंदिनी,
कलिमल तट-तरु-मूल निकंदिनि।

यह सरयू नदी परम पुनीत है। सुमानस-नयनाभिराम मानसरोवर की पुत्री है और कलिमल आदि तट-तरुओं को उखाड़ फेंकनेवाली है।

श्रोता त्रिविध समाज, पुर, ग्राम, नगर दुहुँकूल,
सन्त सभा अनुपम अवध, सकल सुमंगल मूल।

श्रोताओं का त्रिविध समाज, पुर, ग्राम, नगर दोनों तटों पर सुशोभित हैं। और इसी सरयू (मेरी कविता) के तटपर सन्त सभा से उद्भासित और सकल मंगलों की मूल अनुपमेय स्वर्गोपम अयोध्या नगरी सुशोभित है।

रामभक्ति सुरसरि तहँ जाई,
मिली सुकीरति सरयु सुहाई,
सानुज राम समर यश पावन,
मिलेउ महानद शोण सुहावन।

रामभक्ति रूपी सुरसरि-गंगा में जाकर यह सुहावनी सरयू मिली है। अनुज (लक्ष्मण) सहित भगवान् राम का जो समर-यश-युद्ध का यशोगान है, वह सुरम्य शोणनद के समान आ मिला है। वस्तुतः यह भगवान् राम के जीवन संघर्ष की यशोगाथा है और उसमें उन्हें अनुज-लक्ष्मण का सम्पूर्ण सहयोग प्राप्त है।

युगबिच भक्ति देव धुनि धारा,
सोहति सहित सुबिरति बिचारा,
त्रिविध ताप त्रासक त्रिमुहानी,
रामस्वरूप--सिन्धु समुहानी।

इन दोनों (सरयू ओर शोण) के बीच में देवधुनि गंगा की पावन धारा वैराग्यमय विचारों से परिस्कृत और सुशोभित है। तीन प्रकार के तापों को आतंकित और भयभीत करते हुए वह त्रिमुखी प्रवाह राम-स्वरूप-सिन्धुकी ओर मुखातिब है-अग्रसर है-प्रवहमान है।

मानसमूल, मिली सुरसरिहीं
सुनत सुजन मन पावन करहीं,
बिच बिच कथा विचित्र विभागा,
जनु सरि तीर-तीर बन बागा।

इस सरयू का मूल मानस-मानसरोवर है, पावन मानस सरोवर से यह उद्भूत हुई है और सुरसरि-गंगा में जाकर मिली है-लीन हुई है। सज्जन लोग इसे सुनकर अपने मनको पवित्र बनाते हैं। बीच-बीच में और भी अनेक कथा-प्रसंग हैं, वे मानों मेरी कवितारूपी सरयू के किनारे किनारे वनोपवन सुशोभित हैं।

उमा महेश विवाह बराती,
ते जलचर अगणित बहुभांती,
रघुबर जन्म अनन्द बधाई,
भँवर-तरंग मनोहरताई।

उमा-महेश के विवाह के बराती जन नाना प्रकारके अगणित जलचरों के रूपमें सुशोभित हैं। भगवान् राम के पावन जन्म की आनन्द-बधाई इस कविता-सरिता-सरयू में भंवर और तरंग बनकर इसकी शोभा को बढ़ा रही हैं।

बालचरित चहुं बन्धु के जलज विपुल बहुरंग,
नृप रानी परिजन सुकृत, मधुकर, वारिविहंग।

चारों बन्धुओं के पावन बालचरित्र बहुरंगी विपुल कमल पुष्पों के समान सर्वत्र सौरभ फैला रहे हैं। राजा-रानी दशरथ-कौशल्यादि, अन्य परिजन तथा इन सुकृत-पुण्यकार्य भ्रमरों और जलपक्षी के रूप में गुन्ज रव और कूजन कर रहे हैं।



सिय स्वयंवर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबिछाई ॥

सीय स्वयंवर कथा सुहाई,
सरित सुहावनि सो छविछाई,
नदी वाव पटु प्रश्न अनेका,
केवट कुशल उतर सविवेका।

सीता के स्वयंवर की सुहावनी कथा इस कविता सरिता की 'शोभा' के रूप में दीप्तिमान् हो रही है। अनेकशः बुद्धि-संगत प्रश्न इस में नौका के समान तैर रहे हैं। जो कुशल केवट हैं, वे विवेक पूर्वक पार पहुंच जाते हैं।

सुनि अनुकथन परस्पर,
पथिक समाज सोह सरि सोई,
घोर घाट भृगुनाथ रिसानी,
घाट सुबन्ध राम वर बानी।

भगवान राम की कथा के कथन श्रवण के बाद परस्पर जो कथनानुकथन होता है, वह इस कविता-सरयू के तटपर पथिक समाज के समान लक्षित है। भृगुनाथ परशुराम क कोप-उत्तेजनात्मक व्यवहार इस काव्य सरयू की घोर धारा उत्कट प्रवाह है और राम की विनम्र वरवाणी तटवर्ती सुबन्ध घाट के रूप में सुशोभित हैं।

सानुज राम-विवाह उछाहूं,
सो शुभ उमंग सुख सबकाहूं,

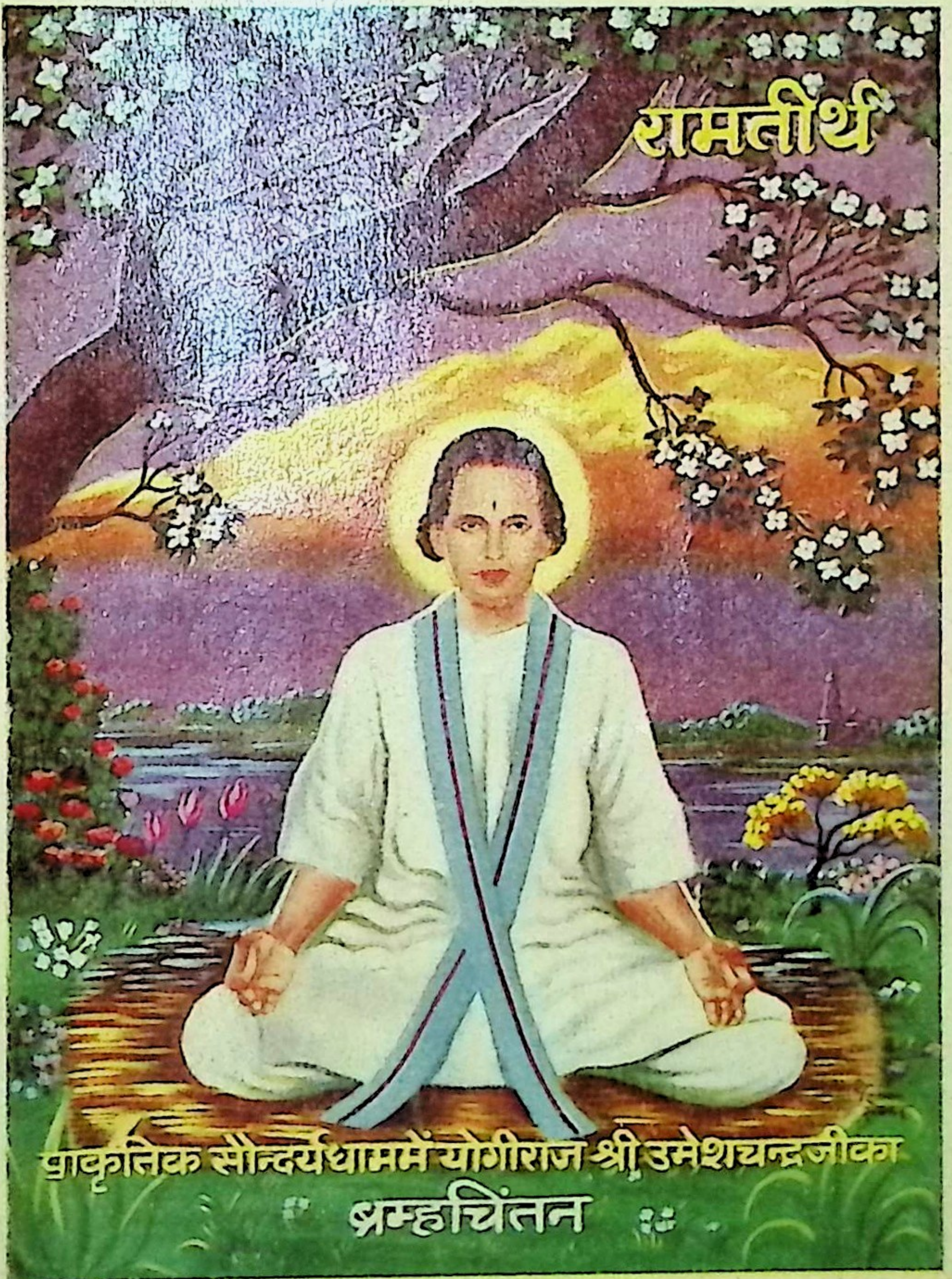
कहत-सुनत हरषहिं-पुलकाहीं,
ते सुकृती मन मुदित नहाहीं।

भाइयों सहित भगवान् राम के विवाह का जो महोतसव उत्साह पूर्वक मनाया गया, वह सुखरूपी उमंग है, जो सबके हृदय का स्पर्श करती है। जो पुण्यात्मा इस कथा-कविता को परस्पर कहते सुनते तथा प्रसन्न और पुलकायमान होते हैं, वही इसमें सानन्द स्नान करते हैं।

राम-तिलकहित मंगल-साजा,
पर्व-योग जनु जुरेउ समाजा,

काई कुमति कैकेई केरी,
परि जासु फल विपति घनेरी।

भगवान् राम के राजतिलक के जो मंगलमय समारोह सजा, वही मानो पर्वों और योगों पर जन समाज एकत्रित हुआ है-कविता-सरिता के तटपर। परन्तु उसमें कैकेयी की


रामतीर्थ
प्राकृतिक सौन्दर्यधाममें योगीराज श्री उमेशचन्द्रजीका
ब्रम्हचिंतन

कुमति काई बनकर फैल गई, जिस के फलस्वरूप सर्वत्र भारी विपत्ति आ पड़ी।

शमन अमित उत्पात सब, भरत-चरित जप याग,
कलि अघ खल अवगुन कथन, ते जल-मल बक-काग।

इस में भरत का चरित्र भगवन्नाम-जप और यज्ञ कार्य के समान है, जिसके प्रभाव से असीम उत्पातों का प्रशमन हो गया। सब संकट मिट गये। इस में कलिकालके पापों, खलों और अवगुणों का कथन बककाग आदि जल मल के समान हैं।

कीरति सरितछहों रितु सूरी,
समय सुहावन, पावन भूरी,
हिम; हिम-शैल सुता शिव ब्याहू,
शिशिर सुखद प्रभु-जन्म-उछाहू,

कीर्तिरूपी सरिता षट् ऋतुओं में व्याप्त रहती है और समय समय पर उस की शोभा और पावनता और भी अधिक बढ़ जाती है। शिव-पार्वती का विवाह हेमन्त ऋतु के रूप में सुशोभित है और प्रभु रामके जन्म का आनन्दोल्लास सुखमय शिशिरका प्रवर्तन है।

बरनब राम-विवाह समाजू,
सो मुद मंगलमय ऋतुराजू,
ग्रीषम दुसह राम-बनगवनू,
पंथ-कथा खर आतप पवनू।

भगवान् रामके विवाह का साजसमारोह परम आनन्दमय और मंगलकारी वसन्त ऋतु है। राम के वन-गमन की घटना भीषण और असह्य ग्रीष्म ऋतु है और मार्ग के विविध कथन-प्रसंग कठिन धूम और पवन हैं।

वर्षा घोर निशाचर रारी,
सुर कुल शालि सुमंगलकारी,
रामराज सुख विनय-बड़ाई,
विशद सुखद सोइ शरद सुहाई।

भगवान् राम को निशाचरों के साथ जो भयंकर संग्राम करना पड़ा, वही वर्षा ऋतु का दृश्य है, जो कि देव समुदाय रूपी धानों के लिये मंगलकारी है—उन का पोषण संवर्धन करनेवाली है। इसके बाद रामराज्य की सुख शान्ति, विनय, बड़ाई आदि का जो विशद वर्णन किया गया, वह आनन्ददायिनी शरद के रूप में सुशोभित है।

सतीशिरोमणि सिय-गुण गाथा,
सोइ गुण अमल अनुपम पाथा,
भरत स्वभाव सुशीतलताई,
सदा एक रस बरणि न जाई।

सतीशिरोमणि-सीताजी के गुणों का जो विशद वर्णन है, वही इस जल की निर्मलता और अनुपमेय गुणोत्कर्ष है। भरत जी का शान्त स्वभाव इस जलकी शीतलता है, जो सदा एक रस रहती है और जिसका वर्णन करना कदापि सम्भव नहीं।

अवलोकनि, बोलनि, मिलनि, प्रीति परस्पर हास,
भायप भलि चहुं बन्धुकी, जल–माधुरी सुवास।

अवलोकन करना, परस्पर वार्ताविनोद करना, मिलना, प्रेम, हास–परिहास—इस प्रकार चारों भाइयों का सुहृद भ्रातृत्व जल की माधुरता और सुवास के रूप में लक्षित हैं।

आरति विनय दीनता मोरी,
लघुता ललित सुवारि न खोरी,
अद्भुत सलित सुनत गुणकारी,
आस–पियास मनोमल हारी।

इस सुन्दर और ललित जल में जो लघुता दृष्टिगोचर हो रही है, उसमें इस जल का कोई दोष नहीं, बल्कि इसमें मेरी ही, आकुलता, विनय और दीनताका लक्षण है। यह सलिल–जल अद्भुत है। इसका नाम कानों में पहुंते ही यह अपना गुण प्रकट करता है और आशारूपी पिपासा को प्रशमित करके मन के मल को भी धो डालता है–अन्तर को स्वच्छ बना देता है।

राम सुप्रेमहिं पोषत पानी,
हरत सकल कलिकलुष गलानी,
भव–श्रम·शोषक तोषक तोषा,
शमन दुरित–दुःख–दरिद दोषा।

यह जल भगवान् रामके प्रति मानव के प्रेम भाव भक्ति

भाव को परिपुष्ट बनाता है और कलिकालके सकल पापों और ग्लानि घृणात्मक भावों को नष्ट कर देता है। सांसारिक श्रम को यह शोषक है और मनकी शिथिलता को दूर कर उसे शान्ति और विश्राम प्रदान करता है और पाप—ताप तथा दारिद्रय दोषों का दमन करता है।

काम-क्रोध-मद-मोह-नशावन,
विमल विवेक विराग बढ़ावन,

सादर मज्जन-पान किये तें,
मिटत पाप-परिताप हिये ते।

यह काम, क्रोध, मद, मोह अदि मानसिक विकारों को नष्ट कर मानव के विवेक, वैराग्य आदि दिव्य भाओं का संवर्धन करता है। जो लोग इसमें श्रद्धा भक्तिभाव से इसमें स्नान करते हैं और इसका जल पान करते हैं, उनके हृदय से पाप-परिताप आदि के मलिन भाव धुल जाते हैं।

जिन यहि वारि न मानस धोये,
ते कायर कलिकाल बिगोये,

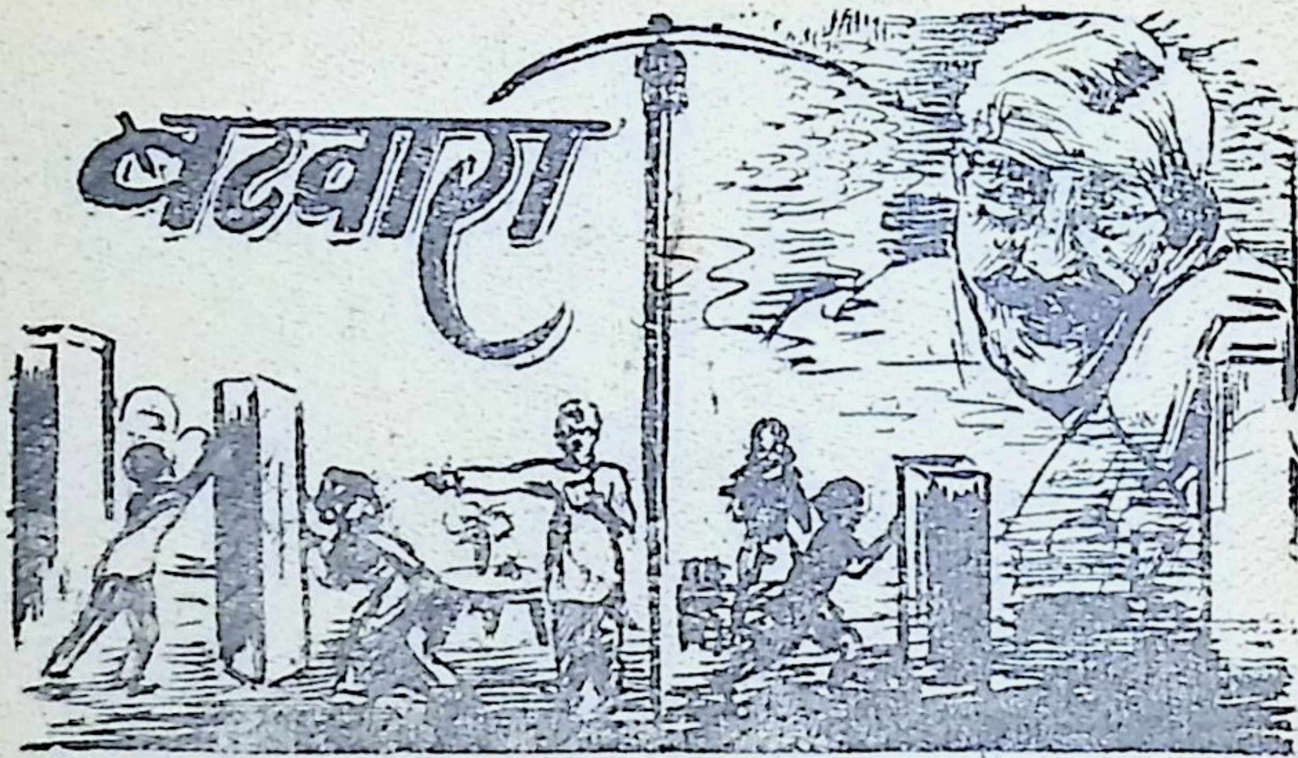
तृपित निराखि रविकर भवभारी,
फिरहिं मृगा जिमिजीव दुखारी,

जिन लोगोने इस जल से अपने मन को धोकर स्वच्छ नहीं बनाया, वे कायर हैं और कलियुग के विकारों से विजडित

बने हुए हैं । जैसे प्यासा मृग सूर्य के प्रकाश को बालरेतीपर फैला हुआ देखकर उसे जल समझते हैं और वहां पहुंचकर निराश होते हैं, वही दशा इन जड़ जीवों की होती है ।

मति अनुहारि सुवारि गुण-गण मन अन्हवाय,
सुमिरी भवानी-शंकरहिं कह कविकथा सुहाय ।

अपनी बुद्धि के अनुसार इस सुन्दर गुणमय जल में अपने गुणराशि-गुणग्राही मन को अवगाहन कराके और भवानी शंकर का स्मरण कर कवि-तुलसीदास सुन्दर रामकथा का गान करने जा रहा है ।   —क्रमशः



लें०—विश्वेश्वर नारायण

(कहानी)

ज्ञान चन्द्र के दो लड़के—बिमल चन्द्र और नवीन चन्द्र परिवार हर विधि सम्पन्न था। सौ बिघे जमीन-जायदाद के साथ २ ज्ञान चन्द्र को सूद पर रुपये लगाने का अच्छा बिजनेस चल गया था। उन दिनों वे अपने इलाके में इज्जतदार और सम्मान प्राप्त व्यक्ति गिने जाते थे। गांव से लेकर बाजार तक सभी इनका लोहा मानते थे। गांव बाजार में कहीं भी कोई उलझन पैदा होती सभी ज्ञान चन्द्र जी को ही बुलाने की राय देते थे। वे जाकर झगड़ा शान्त कर देते थे।

ज्ञान चन्द्र ने अपने दोनों लड़के को पढ़ाने-लिखाने में एक न उठा रखी। परन्तु भगवान् का क्या विधान होता है—कोई नहीं कह सकता। विमल चन्द्र तो किसी तरह मिहनत कर आई. ए. तक की शिक्षा ग्रहण कर लिये। घर के काम

काज में इनको मन न लगने से जाकर कहीं दूर एक नौकरी पकड़ लिये। अपने जीवन रूपी नैया को उसी नौकरी के मध्य से चलाने लगे। परन्तु नवीन चन्द्र कुसंगति में पड़ने से पढ़ाई न की। पढ़ने के लिये ज्ञान चन्द्र ने उन पर इतनी सख्ती बर्ती तो भी एक दिन वे गांव के एक दो आवारा लड़कों के साथ कहीं दूर भाग निकले। उन दिनों वे सिर्फ पांचवे वर्ग में पढ़ते थे। ज्ञान चन्द्र ने उन दिनों लड़कों की शादी पहले ही कर चुके थे। वे यह नहीं जानते थे कि नवीन चन्द्र की कम उमर में शादी करने से पढ़ाई में बाधा होगी। नवीनचन्द्र यों ही कितने दिनों तक बाहर भटकते रहे। जब हाथ पर का पैसा समाप्त हो गया तो आखिर फिर घर की शरण लेनी ही पड़ी। दो महीने बाद, भूलता भटकता अपने घर चला आया। ज्ञान चन्द्र यह समझते थे कि अब अधिक सख्ती बर्तने से और आवारा हो जायेगा। क्यों कि गांव के दुःसंगियों का इसको साथ हो गया है। एक दिन बैठ कर नम्रता के साथ उससे पूछने लगे—'क्या तेरा पढ़ने में मन नहीं लगता है? यदि नहीं तो छोड़ कर घर-गृहस्थी का काम देखो। बेकार पैसा बर्बाद करने से फायदा क्या है?'

'ठीक है, मैं न पढूंगा, मुझसे जितना हो सकेगा घर गृहस्थी ही देखूंगा—नवीन चन्द्र ने निर्भीकता के साथ उत्तर दिया।

अब नवीन चन्द्र पढ़ाई लिखाई छोड़कर घर बैठ गया। घर का काम कहा तक देखेगा कि और निकम्मा होकर आवारों के बहकाये में आ गया। ज्ञान चन्द्र उसे खेत देखने

के लिये भेजते तो वह खेत की देख भाल न कर बलिक वहीं से एक दो अपने साथियों के साथ कहीं दूसरी जगह ही चला जाता। खेत में क्या नुकसान हो रहा है, उसे उसकी कुछ परवाह नहीं। उसकी अपनी मस्ती और अपनी दुनियां कुछ दूसरी ही थी। न जाने कैसे ?........साथियों के बहकाने से अथवा अपनी औरत की सलाह से घर में एक दूसरा ही रवैया अख्तियार कर लिया। गांव के कुछ बुजुर्गों का अनुमान था कि नवीन चन्द्र के साथियों ने ही उसे भड़काया है, वह नये खून का लड़का है, अपना भला बुरा कुछ सोचता नहीं। वह कावे में आ गया। वे सब नवीन चन्द्र को काना फुसी कर कहते कि आपके पिता ने आपकी पढ़ाई छुड़ा दी। तेरे लिये कुछ खर्च नहीं किये। विमल चन्द्र को पढ़ा लिखा दिये जिससे वह कमाने लगा है, वह कफी पैसे वाला हो जायेगा और आप रह जाइयेगा निठला भर ही। आपके पिता जी आपके साथ बेईमानी बरत रहे हैं आप अभी सम्भल जाइये न तो आपका भविष्य अन्धकार हो जायेगा। 'अपने साथियों ने इतना सुनना था कि नवीन चन्द्र का पारा गरम हो गया। आवेश में आकर उसी क्षण वह अपने साथियों से कहने लगा, वे हमारे सगे भाई हैं तो क्यों, हमारे जानी दुश्मन हैं। वे हमको क्या समझ रखे हैं। वे परदेश जाकर नौकरी करते हैं तो मैं यहीं अपना उपाय करूँगा। देखें वे क्या करते हैं ! हम पिता जी कि जानते थे हमारी भलाई सोचेंगे, परन्तु वे भी क्या हैं मैं खूब जान गया।

अब नवीन चन्द्र अपने साथियों की बात को गिरह बांध

लिये। उनका कहीं मन नहीं लगता। खाते, उठते, बैठते, घूमते हर क्षण यही सोचने लगे कि किसी तरह काफी रुपये पैसे वाला हो जाऊं। प्रत्यक्ष रूप में तो नहीं, परन्तु घर वालों से पहले छिपे २ अपनी कार्रवाई कर दिये। घर से छिपा कर कभी कुछ अनाज बेच देते। कभी खलियान से ही अनाज गुम कर देते। उसे बेच बेच कर रुपया जमा करने लगे। उस रुपया को सूद पर चलाने लगे। इस तरह वह एक या दो साल तक अपनी इच्छानुसार घर वालों के अनजान में काफी पैसा जमा कर लिये। यह ठीक ही कहा गया है कि बहुत दिन तक पाप छिपा नहीं रहता, एक दिन वह प्रकट हो ही जाता है। नवीन चन्द्र ने अपने पिता ज्ञान चन्द्र से छिप कर पैसा लेने में कोई कसर न उठा रखी।

धान की कटनी समाप्त होने के बाद सब बोझा ले आकर खलिहान में रख दिया गया। दो-चार दिन के बाद से धान-पिटनी भी शुरु हो गई। घर में ज्ञानचन्द्र और उनके लड़के नवीनचन्द्र ही तो थे। यदि अपना लड़का अपने घर ही में चोरी करना प्रारम्भ कर दे तो घर को बर्बाद होते देरी नहीं लगती। ठीक वही हाल हुआ नवीनचन्द्र का भी। शाम का समय था। सूर्य की किरणें धीरे धीरे अस्ताचल में लय होती जा रहीं थीं। खलिहान से अनाज ढ़ो ढ़ो कर घर आने लगा। तब तक अंधेरा छा गया। नवीनचन्द्र खलिहान में धान पिटनी करने वाले किसी मजदूर से मिल गये। ज्ञानचन्द्र खलिहान में ही बैठकर देख भाल कर रहे थे। वे बोरों में भरे अनाज के

साथ आते जाते रहते थे। अंतिम खेप का बोरा वन्दी धान जिसके साथ दश मजदूर को ले जाकर किसी अपने साथी के घर रखवा दिये। इसी बीच गाँव का कोई व्यक्ति जो ज्ञानचन्द्र का मित्र ही था, भरा बोरा सुरेश के घर जाते देख, समझ गया कि हो न हो यह नवीनचन्द्र की करामात है, जो पहिले ही कहीं छिप गया है कि कोई जानने न पावे। वह तुरंत दौड़ा हुआ खलिहान में ज्ञानचन्द्र के पास चला गया और सब बीति घटना सुना दिये उनसे। उसी ज्ञानचन्द्रने जो स्वयं भी खलिहान में बैठे हुये थे, अपने मित्र को वहीं बैठा दिये। और स्वयं तेजी से चले गये सुरेश के मकान के पास। उस मकान से निकलते हुये अपने मजदूरों को देखा वे सब वहीं सहम कर खड़े हो गये, फिर थोड़ी ही देर बाद नवीनचन्द्र को भी देखा जो कि सुरेश के ही मकान से निकल रहा था। यह सब देखते ही आग बबुला हो गये। परन्तु उन लोगों से कुछ बोले नहीं, सीधे फिर खलिहान चले आये। जल्दी जल्दी खलिहान के सब सामानों को बटोर कर घर लाया गया। ज्ञानचन्द्र और नवीनचन्द्र भी घर आये। ज्ञानचन्द्र ने नवीन से पूछा–

"भला यह कैसी बात है कि तू खलिहान का अनाज ढ़ो वाकर दूसरे के घर जमा कर रहा है। भला इस तरह करने से घन का क्या हाल होगा? मालूम होता है, इतने दिन का बना बनाया घर बर्बाद होकर रहेगा। मैं विमल चन्द्र के यहाँ पत्र लिख देता हूँ, तेरी इन सब हरकतों के साथ। वह आकर जैसा चाहे करे। आगे तो तुम्हीं लोगों को घर चलना है।"

"जैसा चाहें करें, आप लोग जिस तरह हमको देख रहे हैं मैं खूब समझता हूँ। वह वहाँ आराम करेंगे, गुल छर्रे उड़ायेंगे और मैं यहाँ घरको सजाऊंगा। यह सब मेरे से हो सकेगा नहीं है-"नवीन ने रुष्ट होकर कहा।

ज्ञानचन्द्र ने कहा- "मैं समझ गया कि अब घर की बर्बादि ही होनी है। कुछ समझ में न आता कि तुम्हारी विपरीत बुद्धि कब से हो गई ?"

उसी दिन ज्ञानचन्द्र ने अपने बड़े लड़के बिमल चन्द्र के यहाँ पत्र लिखा कि तुम जल्दी आकर घर का काम संभालो। न जाने क्यों तेरे छोटे भाई नवीन की बुद्धि पर पानी फिर गया है। मालूम होता है अब घर न चलेगा, बर्बाद होकर ही रहेगा विमल चन्द्र पत्र पाने के ठीक दूसरे दिन आठ दिन की छुट्टी लेकर आ गया। फिर बाप बेटे में घर सम्बन्धी बातें होने लगीं। थोड़ी ही देर की बात-चीत से विमलचन्द्र अपने भाई नवीनचन्द्र के विचार को समझ गये। वे नवीन चन्द्र को बुलाये और पुछने लगे-

"क्या मतलब है कि तुम अब इकट्ठा नहीं रहना चाहते हो। स्पष्ट कह दो।"

नवीनचन्द्र बोले-मेरे साथ कैसा बर्ताव रखते हैं। मैं खूब समझता हूँ। ठीक है मैं अलग ही रहूँगा।"

विमल चन्द्र ने कहा-"जब तुम्हें अलग ही रहना है तो अलग हो जाओ, परन्तु सम्मिलित सम्पत्ति की इस उरह की बर्बादी तो नहीं करनी चाहिये। साथ साथ तुझे यह भी मालूम

होना चाहिये कि घर के सामानों को बेच बेच कर जितना रुपया बनाकर सूद पर चला रहे हो, उसका ठीक से हिसाब करके ही बंटवारा किया जायगा।"

"परन्तु आपको भी यह मालूम हो जाना चाहिये कि घर का जितना रुपया पैसा आपकी पढ़ाई में लगा है उसका भी हिसाब करते समय ध्यान रखते हुये ही बंटवारा होना चाहिये' नवीन ने अपनी त्योरी चढ़ाते हुये कहा।

इसपर बिमलचन्द्र बोल उठे—जब तेरा यही विचार है तो ठीक है, यही सही। परन्तु मनुष्यको सोच विचार कर ही कुछ बोलना चाहिये। तुमको पढ़ने के लिये क्या कम उठा रखा गया। इस तरह का बटवारा तो हम सुने भी नहीं थे। यह एक विचित्र सा लग रहा है।"

"विचित्र सा क्या लग रहा है, कहिये भी तो नवीनचन्द्र ने कहा।

बिमलचन्द्र बोले—"भला कहीं यह भी सुनने को मिलता है कि किसी की पढ़ाई का खर्च काटकर बंटवारा होगा। भला तुझे पढ़ने में कौन रुकावट किया। तू ने ही तो पढ़ाई बन्द कर दी।

नवीनचन्द्र बोले— यह सब मेरे लिये बेकार की बातें कर रहे हैं। ठीक ठीक बोलिये, मेरा हिस्सा देने का विचार है कि नहीं। कहिये तो गाँव के पंचों को भी इकठ्ठा कर दूँ।"

इसमें पंचों की आवश्यकता ही क्या है ? जैसा कहो उसी तरह बंटवारा कर दिया जाय—विमलचन्द्र ने कहा।

इतना कहकर विमलचन्द्र ने अपने पिता ज्ञानचन्द्रसे कहा-

जैसा ये बोल रहे हैं, उसी तरह इनको हिस्सा देकर अलग कर दें।"

उसी दिन घर के हर चीज का हिसाब कर दिया गया। शामतक नवीनचन्द्र के कथनानुसार ही उनको हिस्सा देकर अलग कर दिया गया गया।

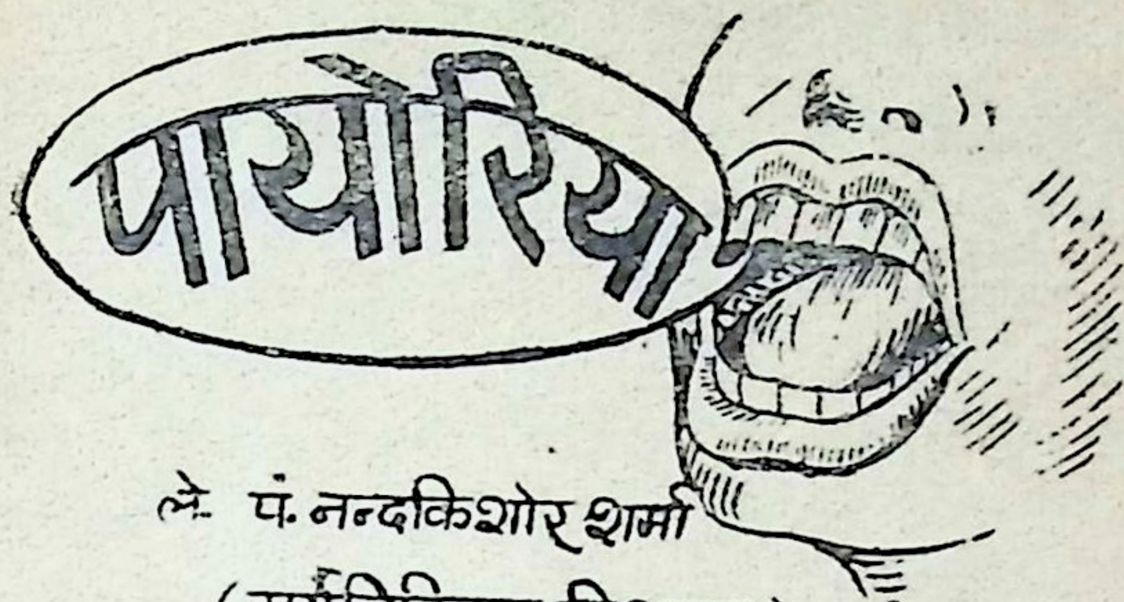
ज्ञानचन्द्र ने अपनी सारे जायदाद का तीन हिस्सा किया। फिर बिमल चंद्र की पढ़ाई में जितना खच हुआ था तथा नवीनचंद्र के पास जितने की पूंजी थी उसी अनुपात से बंटवारा हो गया। काट--छांट के बावजूद भी नवीनचन्द्र से बिमलचन्द्र का हिस्सा दूना हो गया। क्योंकि ज्ञानचन्द्र का हिस्सा भी उन्हीं के साथ सम्मिलित था और ज्ञानचन्द्रने भी अपने बड़े पुत्र के साथ रहने में ही अपनी भलाई सोची।

अब नवीनचन्द्र को अकेला हो जाने पर अपने परिवार का पूरा भार स्वयं ही संभालना पड़ता था। जो घर में बिल्कुल लापरवाह सा रहता था उसे ही एक परिवार की पूरी जिम्मेवारी हो गई। खेती-गृहस्थी से लेकर नमक-मसाला तक का इन्तजाम करना पड़ता था। नवीनचन्द्र की स्थिति दिनों-दिन बिगड़ती लचरती गई। वे आराम तलबी तो पहले से ही थे। अकेला होने से और स्वतंत्र हो गये। इधर आकर अनेक तरह का व्यसन पकड़ लिये। अब तो दिनोरात इनके दरवाजे पर ताश-चौपड़-जूआ का अड्डा बन गया। इन सब कारणों से खेती-गृहस्थी में इनका मन न लगता था। खेत को बटइया-ठीका बन्दोबस्त करदिये। सिर्फ एक या दो बीघा खेत अपनी जोत में रखें। बटइयादार इनके अधिक आराम तलब होने से

नजायज फायदा उठाने लगे। बन्दोबस्त खेत की मालगुजारी समयपर वसूल नहीं होती थी। नतीजा यह हुआ कि नवीनचन्द्र अलग हो जानेसे एक प्रकार का अभाव महसूस करने लगे।

इधर विमलचन्द्र की दिनों दिन स्थिति और सुधरने लगी। वे प्रदेश में जो कुछ अर्जन करते उसे यथा साध्य बचाने का ही प्रयत्न करते। अपनी आय से जो कुछ भी बचाते अपने पिता के नाम हर महिने भेज देते। ज्ञानचन्द्र अपने घर का सब इन्तजाम स्वयं करते। खेती-गृहस्थी में इसीलिये पहले की अपेक्षा अच्छी आमदनी होने लगी। परन्तु ज्ञानचन्द्र को अपने छोटे पुत्र नवीनचन्द्र की स्थिति देखकर एक प्रकार का बहुत ही कष्ट होता था कि वह कितनी दुःखपूर्वक अपने जीवन को गुजार रहा है। ज्ञानचन्द्र यह वार वार सोचते रहते थे कि अब भी आकर मिल जाय। बलिक अपने साथियों से मिल जाने के लिये उसके पास खबर भी भेजवाये। नवीनचन्द्र इतने तकलिफों को झेलने के बावजूद भी वह अकेले रहना ही पसंद किया।

नवीनचन्द्र अपने व्यक्तित्व का कब तक ह्रास करता रहेगा, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। उसने तो यहाँतक निश्चय कर लिया था कि द्वार द्वार भीख मांग कर खाउंगा, परन्तु अब ही रहूंगा। अपने हितैषियों के लाख समझने पर भी अपनी जिद्द पर ही अड़ा रहा। उसकी स्थिति यहाँ तक आ गई कि एक टाइम भोजन के लिये तरेंगन गिनने लगा। अपने माता-पिता तथा भाई से अलग होना ही उनके विनाश का कारण बन गया।



ले. पं. नन्दकिशोर शर्मा
(सूर्यचिकित्सा विशारद)

(आयुर्वेद चिकित्सा)

आधुनिक काल में पाश्चात्य सभ्याता के वरदान स्वरूप जो व्याधियां हमारे नवयुवकों में पाई जाती हैं उनमें से 'पायोरिया' एक दन्त व्याधि भी है। अंग्रेजी व प्रचलित भाषा में इसे 'पायोरिया' ही कहते हैं वैसे यह ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका शाब्तिक भाव 'दन्त वेष्ट के पोले स्थान से पूयस्राव है। पाश्चात्य लोगों के मतानुसार रक्त में अम्लता बढ़ने से पूयास्राव माना गया है और यह अम्लता दांतों पर खपरी के रूप में जम जाती है। पूय की उष्णता से कफ व लार घनीभूत होकर खपरी का रूप धारण करता है। इस खपरी को वे लोग यंत्र द्वारा निकाला करते हैं परन्तु इससे रोग नष्ट नहीं होता अतएव रोग का मूलकारण भिन्न होना अनुभव होता है।

(१) निदान—मांस आदि दूषित आहारी लोग, नियमित मुख शुद्धि न करने वाले, अत्यधिक तम्बाकू, सुपारी आदि सेवन करने वाले, गन्दे ब्रशों का उपयोग करने वाले, गरमा-गरम चाय आदि पेय पदार्थों का सेवन करने वाले लोगों का रक्त

(मसूढों का) दूषित हो आता है। उनके पक जाने से दन्तरक्षक स्निग्ध पदार्थ धीरे २ पिघलकर दान्तों की जड़ों से अलग होता है, दांतों की संधियों में मांसादि के दूषित तंतु सड़ सड़-कर मसूढों के रक्त से मिलते हैं जिससे दान्तों की जड़ें हिलती हैं व रोग का आविर्भाव होने लगता है। कई लोगों की आदत मुख से श्वास लेने की हो जाती है जिससे मसूढों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इन कारणों से दांतों पर एक प्रकार की खपरी दांतों पर जम जाती है जो कालान्तर में कड़ी हो जाती है जैसे २ खपरी को खरोंचवाते हैं त्यों २ दांतों के नीचे की हड्डियों में ढिलाई होने लगती है, इससे दांत हिलने लगते हैं और दांत हिलने से छोटी २ रक्त नलिकाओं पर घर्षण होते हैं इससे वहां व्रण हो जाया करते हैं, इन व्रणों में रक्त स्राव, पूय स्राव होता रहता है, ऊपरी दवाओंसे कोई स्थाई लाभ नहीं होता, मसूढ़ेको थोड़ा दबाने से पूय स्रवित होने लगता है 'आयुर्वेद भी कहा' है—

स्रावन्ति पूय रुधिरं चलादन्ता भवन्ति च।
दन्तवेष्टः स विज्ञेयो दुष्ट शोणित संभवः

कपालेष्विव दर्यत्सु दंतानाम्ष्ट सैव शर्करा।
कपालिकेति पठिता सदा दन्त विनाशिनी॥

—मा० निदानम्

रक्त दुष्टि ही हेतु है जिससे दंतमूल से रक्त व पूय स्रवित होता है ज्यों २ पूय अधिक बहेगा, दंतमूल पोला होगा व दांत हिलते रहेंगे।

(२) पूर्वरूप—मसूढ़ों में फुलाहट, दांतों से रक्त व पीव बहना, धीरे धीरे दांतों में कृमि लगना, मुख में लिबलिबापन रहना, मुख से दुर्गंधि आना ।

(३) रूप—धीरे २ दांतों पर कीटाणु लगने से दांत हिलने लगते हैं वेदना नहीं होती; मसूढ़ों में रक्त-मवाद भरा रहता है, यह वृद्धिगत अवस्था है, अन्तिम अवस्था में रोगी का श्वास दुर्गंधपूर्ण हो जाता है, प्रातः मुख स्वाद खराब होकर थूंक अधिक आता है। थूंक व पीव के साथ पायोरिया कीटाणु आमाशय व पक्वाशयमें चले जाते हैं। इसी विकार से आमवात आंतसार, पक्वाशय दाह, ज्वर, मुख के भीतरी भाग में दाह, गले में दाह, वात विकार, मलबन्ध, चिड़-चिड़ापन आदि उपद्रव हो जाते हैं। जीवनी शक्ति का ह्रास होने लगता है।

(४) चिकित्सा—कई लोग इसके लिये दांत निकलवा देते हैं व कई 'सस्ते रामबाण औषध' वाले प्रयोगों से लाभ के बदले हानि प्राप्त करते हैं। आयुर्वेदिक रीत्यानुसार आहार-विहार, पथ्यापथ्य, औषध, व्रण चिकित्सा आदि पर पूर्ण ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। उदरान्तर्गत विकारों पर भी विचार करना होगा।

प्राथमिक अवस्था में दांतों का मल निकलवाना चाहिये व गर्म जल में नमक डालकर कुल्ले कराना चाहिये। नीम या अपामार्ग की दातुन से दांत मलें। नमक खूब पिसा हुआ खोपरा या सरसों तेलमें, थोड़ा सा कालीमिर्चके साथ मिलाकर अंगुलीसे दिनमें दो बार धीरे २ मलें। निम्न आयुर्वेदिक मञ्जन बना लें—

त्रिकुटा, ताली सपत्र, दाल चीनी, सफेद जीरा, हरें सौंफ, आँवले व इलायची दाने प्रत्येक १-१ तो० लेवें। चुनीफिटकरी

व मुलेठी ४-४ तो० लेना, शुद्ध नीला थोथा व भुना सुहागा २-२ तोला लें सेंधानमक २ तोला तथा उत्तम खड़िया ३० तो. लेकर सबको महीन कपड़ छन चूर्ण करें व इसमें ६ माशे पिपरमेंट सत्त्व मिलाकर शीशी भर लें। प्रात: सायं मंजन करें (धीरे धीरे), तथा सुखोष्ण जल से कुल्ला करें। रोग की द्वितीयावस्था में कफ-दोष नाशक सुगंधित द्रव्यों के साथ से कुल्ले करावे पीपल २ तो० लेकर आधसेर जल में पकाकर १० तोला शेष क्वाथ में १ तोला शहद मिलाकर कुल्ले करावें व फिर उष्णोदक से कुल्ली करावें। इसके बाद लोध, मुलेठी, पीपल की लाख इनका महीन चूर्ण कर शहद में मिलाकर प्रतिसारण करना चाहिये। इस क्रिया के बाद भी उक्त क्वाथ से कुल्ले करावें। क्षीरी वृक्षों की छाल वाले क्वाथ से कुल्ले कराना भी लाभकारी है। प्रातः सायं टैनिक एसिड का घोल भी मसूड़ों पर लगाना लाभप्रद है। दांतों के आसपास के पीव को धीरे २ दबाकर निकालते रहना चाहिये।

पथ्यापथ्य—पायरिया में दांतों पर जमे मैल को दूर नित्य ही सरसों का तेल ५-७ मिनट तक धीरे २ अंगुली से मलवाना चाहिये जिससे रक्त संचार भी होगा। सेंधानमक गर्मजल में डालकर कुल्ले करें। गरिष्ट चीजों का सेवन नहीं करें, बासी, सड़ी गली चीजें न खावें। ताजे फल, नीबू, संतरे, हरे पत्र; शाक दूध, मक्खन, मेवे आदि लाभप्रद हैं। भोजन चबा चबा कर करना चाहिये। प्रातः सायं घूमने जावे। बबूल, मौल श्री, अपामार्ग, गूलर की दातुन में से कोई दातुन करें। पान व तम्बाकू छोड़ दें। चाय न लें।

हमें विश्वास है उक्त व्याधिके लिये उपर्युक्त प्रयोग स्थायी रूप से हितकर होंगे। कई रोगियों पर अनुभव किया तो आशातीत सफलता हुई।



आम की उपयोगिता

ले०— महावीर प्रसाद प्रेमी

आम को संस्कृत में रसाल या आम्र और हिन्दी में सर्वत्र आम कहते हैं। इसे अंग्रेजी में मैंगो और लैटिन में मैंगीफेरा इण्डिका कहते हैं। यह बात विश्व प्रसिद्ध है कि भारतवर्ष के प्रत्येक क्षेत्र में आमका फल न्यूनाधिक अंश में पाया जाता है। पर, विहार प्रदेश में इसकी खेती बहुतायत से होती है। इसकी प्राप्ति की अवधि लगभग चार महिने होती है–मई से सितम्बर। मुख्यतः जून और जुलाई के महिनों में ये फल प्रचुर परिमाण में पाये जाते हैं। आम फलों का राजा है। इस में स्वास्थ्य-वर्द्धन के विशिष्ट गुणों एवं खाद्य तत्वों का अधिक समावेश है। इतने पर भी आम-फल की विशेषता यह है कि यह सहज में बहुत सुलभ मूल्य में ही सबको प्राप्त हो जाता है। इन्हीं कारणोंसे आम को अनेक शास्त्र, चिकित्सा-ग्रन्थों

और पुराण आदि में अनुपम उपयोगी बतलाया गया है। आम--देश में दो से कई प्रकार के होते हैं, किन्तु जितना आम में मधुर रस अधिक होता है, उतनाही वह अधिक श्रेष्ठ समझा जाता है।

हमारे देश में कलमी, लंगड़ा राजभोग, बम्बई का हापुस, मालदा, सफेदा, सिंदुया और तुख्मी इत्यादि आम्र अधिक बल-वर्द्धक, पौष्टिक, वीर्य-वर्द्धक, तृप्तिकारक, कामोत्तेजक और पचने में भारी होते है। पूरब का गोला, गोवा का अलफोसा तथा इस देश का फजरी आम भी अधिक पौष्टिक और बलकारक एवं लंगड़ा आम अधिक उपयोगी गिना जाता है। बल--पुष्टिके अतिरिक्त आम अनेक रोगों को भी दुर करता है। अत: भोजन के साथ या भोजन के उपरान्त थोड़ा बहुत आम सेवन करना चाहिए। जिन लोगों को आम अनुकूल नहीं पड़ता हो, उनको पाल में पकाये हुए पतले रसवाले मधुर देशी आम या विधि-वत निकाला हुआ रस, आम का शर्बत अथवा आम्रासव का सेवन करना लाभदायक होगा। बल पुष्टि के अतिरिक्त आम अनेक रोगों को भी दूर करता है। संग्रहणी, आमाशय सम्बन्धी रोग, क्षय, शोष आदि रोगों में पके हुये आमों का सेवन बहुत लाभदायक है। विशेष कर संग्रहणी-रोग और क्षय रोग में केवल पके हुए तथा मीठे आमों के रस को गो दुग्ध के साथ कल्प की रीति से कुछ दिनोंतक सेवन करने से उक्त रोगों में बड़ा लाभ होता है। इसके सिवाय और भी कई रोगों में आम पथ्य समझा जाता है। अधिक आम खाने से शरीर में कई रोग पैदा हो जाते हैं, अतः अधिक आम नहीं

खाना चाहिए। आम खाने से अधिकतर जो रोग उत्पन्न होते हैं, वह खट्टे रसवाले आम खाने से ही होते हैं। इसलिए खट्टे रसवाले आम नहीं खाने चाहिये। कच्चे या नए अथवा खट्टे रस वाले आम अधिक खाने से अग्निमांद्य, विषमज्वर, रक्त के विकार, वद्ध गुदोदर और नेत्र रोग उत्पन्न होते हैं। आयुर्वेद शास्त्र में बतलाया गया है कि मीठे रसवाले आम आँखों के लिए हितकारी होते हैं और आजकल की नई खोज के द्वारा भी वैज्ञानिक रूपसे यह सिद्ध हो चुका है कि आम चक्षुओं के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

सुयोग्य डा० विलसन ने बड़े जोरदार शब्दों में स्वीकार किया है कि "आम में मक्खन से अनेकों गुना अधिक पोषक तत्व विद्यमान है। उन्होंने परीक्षा करके यह भी सिद्ध किया है कि आमके उचित प्रयोग से शरीर के स्नायविक जाल (   )को शक्ति मिलती है। शुद्ध रुधिर बहुतायत से उत्पन्न होता है और बल वीर्य की वृद्धि होती है।

अधिक आम खाने से विकार उत्पन्न होनेपर २-३ जामुन खा लेने से आम अति शीघ्र पच जाता है। यदि जामुन न मिले, तो सोंठ और नमक पीसकर चुटकी भर खा लें, खाये हुए आम का पता भी न लगेगा। आमके अजीर्ण में दूध पीना हितकारक है।

पके आम खाने से मेदा साफ हो जाता है। जिनको सदैव कोष्ठ बद्धता की शिकायत रहती हो या शौच साफ न होता हो, उनके लिए आम पथ्य है। आमाशय सम्बन्धी रोगों में

पके हुये आमों का सेवन अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। अनिद्रा रोग की भी यह अचूक औषधी है। आम खाने से शरीर में नवीन रक्त उत्पन्न होता है।

आम का पन्ना— कच्चे आमों को जलमें पकाकर अच्छे प्रकार शीतल जल में मलकर और छानकर चीनी, कपूर और इलायची का चूर्ण मिलाकर रख लें। यह आमका पन्ना रुचि कारक, बलवर्द्धक और लू वगैरह से रक्षा करनेवाला और गर्मी को शांत करनेवाला होता है।

आमकी गुठली की मींग (गूदा) कसैली, कुछ खट्टी, कसैली मधुर ,और वमन, अतिसार, हृदयरोग, प्रदर रोग और दाह-नाशक है।

आम्र--पत्र— आम के पत्तों को भष्म कर किसी तरल पदार्थ (रामतीर्थ तैल) में मिलाकर आग से जले हुए स्थान में लगाने से लाभ होता है। आम के नए कोमल पत्ते सुखाकर चूर्ण रूप में फांकने से मधुमेह में लाभ करते हैं।

राजयक्ष्मापर— किसी पत्थर या चीनी के पात्र में ताजे मीठे एवं रस पूर्ण आमों का रस बीस तोले निचोड़े। उसमें उत्तम--विशुद्ध शहद पांच तोला मिलाकर प्रातः सायं सेवन करे तथा दिन--रात में दो--तीन बार गाय या बकरी का धारोष्ण दूध मिश्री ड़ालकर पिये। जल की अपेक्षा यदि दूध सेवन किया जाए, तो और भी उत्तम है। उनके लिए विशुद्ध और प्रातःकालीन नीरा का पान भी उपयोगी है। इस प्रकार २१ दिन प्रयोग करने से राजयक्ष्मा (टी० वी०) जैसे असाध्य रोग का रोगी स्वास्थ्य-लाभ कर सकता है।

संग्रहणी पर— संग्रहणी या अन्य उदर सम्बन्धी रोगों में प्रातकाल नौ बजे दो बड़े और पके हुए आमों के छिलके छिल कर उनके छोटे छोटे टुकड़े कर एक कलईदार कटोरे में रख दें। बाद में उसे कटोरे में उबालकर ठण्डा किया हुआ इतना दूध डाले, जिससे आम के टुकड़े डूब जाएँ। फिर उन आमके टुकड़ों को चम्मच से खाकर वही दूध ऊपर से पीलें। प्रातः-काल इस प्रकार आम खा लेने के बाद फिर दिनभर तीन-तीन घण्टे के बाद तीन-तीन छटाँक दूध पीना चाहिए। इस बात का खूब ध्यान रखना चहिये कि आम और दूध के सिवाय और कोई चीज खाई पी न जाए। जब दस्त की संख्या में कमी हो जाय, तो रोगी को दो आम दोपहर के समय भी इसी प्रकार दूध के साथ देने चाहिए। दो सप्ताह तक इसी प्रकार विधिवत आम का सेवन करते रहने से तात्कालिक गुण यह होता है कि रोगी के मस्तिष्क में एक प्रकार का सन्तोष और शान्ति प्राप्त होती है। रोगी को ऐसा मालूम होता है कि उसके पेट में यथेष्ठ भोजन पहुँच गया है और उससे उसका जीवन संचालन होता रहेगा। इस विचार का रोगी के दिमाग पर बड़ा प्रभाव पड़ता है तथा संग्रहणी के मरीज के लिए इस बात का विश्वास होना बहुत जरूरी भी है। इसका विशेष प्रभाव जो संग्रहणी की दूसरी औषधी में साधारणतः होता है कि मुँह के विकार जाते रहते हैं, स्थिरता आती है, दस्तों की संख्या में कमी होती है और वजन की वृद्धि होती है। जब रोगी आम और दूध की पूरी खुराक लेने लगता है, तो एक सप्ताह में दो या तीन पौंड वजन बढ़ता है। आंखों और

नाखूनों के आसपास से कालापन जाता रहता है। यह प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ता है कि रोगी रोग से मुक्त हो रहा है।

आंव, खून के दस्त, पेचिश, संग्रहणी आदि रोगोंपर— आमके कोमल पत्ते, जामुन के पत्ते, बेल के पत्ते और आमलों के पत्ते को समान भाग लेकर छाया में सुखा लेवें। इस चूर्ण को थोड़े से घी में भूनकर शीशी में भरकर रख दें। इसमें से प्रतिदिन प्रातःकाल के समय एवं सायंकाल के समय दो माशे की मात्रा से शीतल जल, मट्ठा या दही के पानी के साथ सेवन करें। इससे मल गाढ़ा होता है, खून और आँव का गिरना बन्द होता है तथा अग्नि दीपन होता है।

वायुरोगोंपर— आम के कोमल पत्तों को चावल के साथ पकावें, उसका जल (मांड) मिश्री के साथ पान करने से सिर का घूमना आदि वायुरोग दूर होते हैं।

नेत्र-रोगों पर— आम के कच्चे कोमल पत्ते, हल्दी और लाल चन्दन सब को पीसकर लेप करने से नेत्र-रोग दूर होते हैं।

चेचक पर— आम की गुठली की गिरी को सफेद चंदन के साथ घिसकर लेप करने से मसूरिका रोग (चेचक) आराम होता है।

बच्चोंके अतिसार पर— आमकी गुठली की गिरी शुद्ध मध के साथ मिलाकर छोटे बच्चों के चटाने से दस्तों को रोक देती है।

श्वास पर— आम के पत्तों को बीड़ी के समान पीने से दमा, हिचकी रोग दूर होते हैं।

सिर के दर्द पर— आम की गुठली और छोटी हरड़े का चूर्ण गौ-दूध में मिलाकर मस्तक पर लेप करना चाहिए।

स्वरभंग पर— आम के पत्तों का क्वाथ बनाकर इसे शहद में मिलाकर पीने से स्वर ठीक हो जाता है।

अण्ड-वृद्धि पर--- आम के वृक्ष की गांठ को गो-मूत्र में घिसकर लेप करना एवं सेंकना चाहिए।

कान की पीड़ा पर— आमके मौर को अण्डी के तेल में पकाकर कान में डालने से कान की पीड़ा शान्त होती है।

विशूचिका पर-- आम का मौर दो तोले दही के साथ खाने से विशूचिका (हैजा) रोग दूर होता है।

उपदंश पर— आम की छाल का रस बकरी के दूध में मिलाकर देने से उपदंश एवं व्रण की पीड़ा दूर होती है।

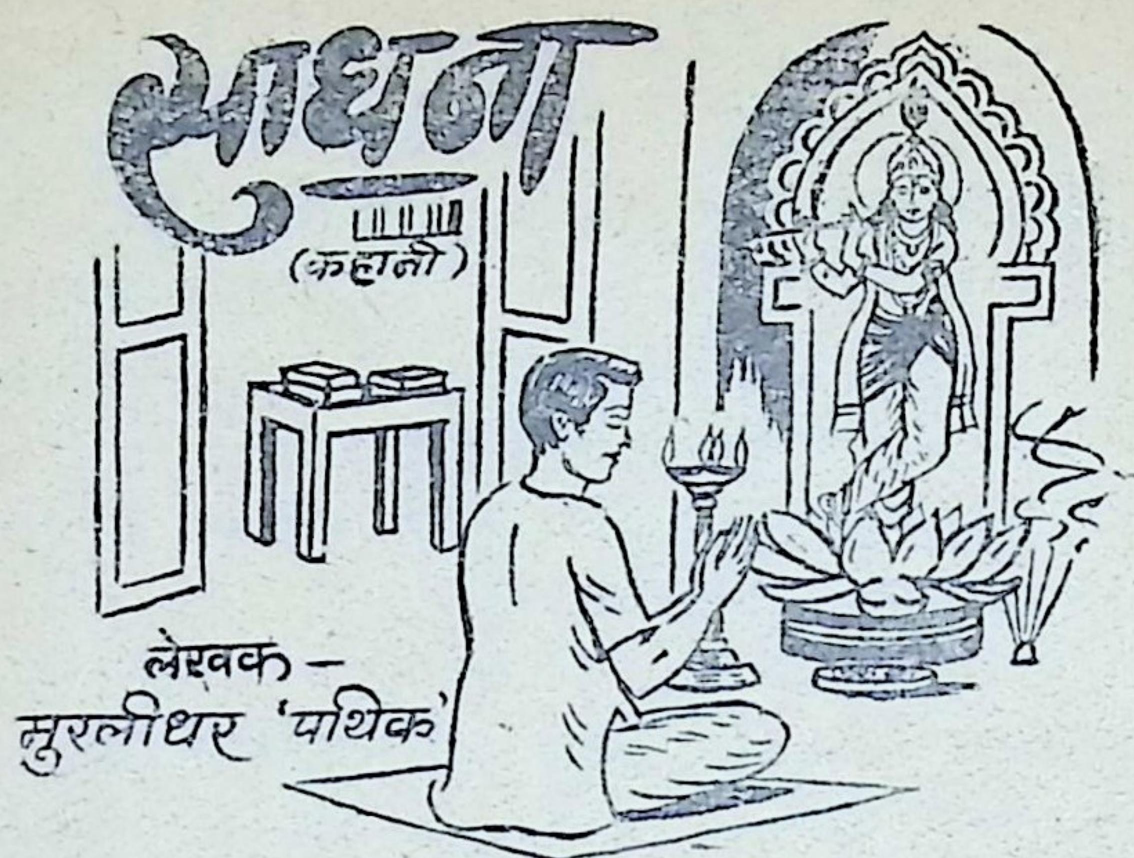
प्रमेह पर-- आमकी अन्तर छाल का रस चार तोले और चूने का पानी एक तोला दोनों को मिलाकर सात दिनों तक पीने से प्रमेह रोग दूर होता है।

अधिक पसीना आने पर— भुनी हुई आम की गुठली का चूर्ण शरीर पर मलना चाहिये।

कृमि-रोग पर-- आम की गुठली का चूर्ण बनाकर शहद के साथ सेवन करने से कृमि-रोग नष्ट होता है।

हिचकी रोग पर— आम के पत्तों को चिलम में रखकर पीने से हिचकी रोग दूर हो जाता है। यह हिचकी रोग की प्रामाणिक औषधी है।

रक्त प्रदर पर— आम की गुठली का चूर्ण शहद के साथ तीन माशे की मात्रा में खाने से रक्त-प्रदर और रक्तार्श-रोग दूर होता है।



आधी रात बीतने को आई किन्तु योगेश अपने कक्षमें ज्यों का त्यों स्तब्ध बैठा हुआ था। उसकी मां अरुणा की नींद जब एकाएक भग्न हुई तो उसे योगेश का ख्याल आया कि नित्य की भाँति आज भी तो वह चुपचाप जागरण नहीं कर रहा है जब कि केवल हमारा परिवार ही नहीं सारा जगत् सुख की नींद में सो रहा है। ऐसा निश्चय करके वह आई और एक आलस्य भरी अँगड़ाई लेकर योगेश के कक्षकी ओर चल पड़ी कक्ष के सामनें पहुँचकर उसने दरवाजे को आज खट-खटाया नहीं जैसे रोज किया करती थीं, बलिक अपने पैरों के नूपुरों को भी खोल दिया और दबे पाँव द्वार तक पहुँची। किवाड़ों के दरारों में से झांक कर उसने योगेश को अपने ध्यान में मग्न पाया उसके सम्मुख शुभ्र वस्त्र से आच्छादित छोटे सिंहासन पर मुरली मनोहर श्री कृष्ण की प्रतिमा विराज

मान थी, सामने दीपक जल रहा था और न मालूम कौन २ सी पुस्तकें योगेश के आसपास रखी हुई थी उन्हीं में से एक को वह बड़े ध्यान से पढ़ रहा था और बीच २ में अपने दोष की ओर निहार लेता था। अरुणा को ऐसा अ भास हुआ मानो उसका बेटा उस संसार के मोह पाशों से सर्वथा दूर हो चुका हो उसे इसके लिये हर्ष भी हुआ विषाद भी क्योंकि योगेश अब परिवार के किसी भी व्यक्ति से उतना हँसकर बात नहीं करता है और उसकी पत्नी सरला भी उससे बोलने तक नहीं पाती। इस प्रकार वह खोया-खोया सा एकान्त में रहता है कि उसके गंभीर चेहरे को देखकर सारे परिवार में एक बारगी सन्नाटा सा मच जाता है। कोई उसके इस ढंग को पागलपन बतलाते हैं कोई कहते हैं कि 'साधु संतों के से लक्षण उसमें दिखाई देते हैं और अवश्य ही वह कोई महान् व्यक्ति बनकर नाम कमावेगा ' किन्तु अरुणा इन बातोमें से किस पर विश्वास करे यह एक समस्या थी।

उसका तो यही निश्चय था कि खड्डे में जायें ऐसी साधना। यह सब निरा ढोंग लगाकर घर के लोगों को त्रस्त कर रखा है मै तो अपने एकमात्र बेटे की यह दशा कभी सहन नहीं करूँगी ऐसा निश्चय कर वह वहां से दूर चली गई और कोई ऐसा उपाय सोचने लगी जिससे अपने बेटे का मस्तिष्क ही पलट जाये और वह फिर घर गृहस्थीके कार्य करने लग जाय।

योगेश पहले ऐसा न था। कुछ ही दिनों से इस प्रकार के कार्य वह दिखाने लगा था शायद इसका कारण था विभिन्न

प्रकार के दार्शनिक एवं धार्मिक ग्रंथों के पढ़ने की ओर रुचि एवं उनसे प्राप्त ज्ञान जिनने कि उसके जीवन को एक नया मोड़ दे दिया था। उसकी आंतरिक इच्छा गृहस्थ में रहकर ही किसी प्रकार की साधना करने की थी किन्तु प्रथम बार मन को एकाग्र करने के लिये वह यह सब करने लगा। उसकी लगन यहां तक बढ़ गई कि रात्रि में घण्टों बीता देना भी उसके लिये सरल बात थी। कोई उसके इस हाल को देखकर जो जी में आता कह डालता किन्तु वह इसकी भी तनिक चिंता नहीं करता था।

आखिर सोचते २ कुछ ही दिनों में अरुणा को एक युक्ति समझ में आई। उसने सोचा क्यों न सरला को ही एक बार उसके पास भेजा जाय देखें वह फिर कुछ बातें करता है या नहीं। इस विचार के आते ही वह सीधी सरला के कक्ष में पहुंच गई और सब बातें समझा दीं। सरला ने सामने घड़ी में देखा तो ग्यारह बज रहे थे। सरला स्वयं इस पीड़ासे व्यथित थी इसलिये वह भी रात्रि में अक्सर बहुत कम सो पाती थी उसे आज यह अच्छा अवसर मिला था जिसकी प्रतिक्षा में वह थी। उसने अपने मन में सोचा कि या तो आज मै उन्हें मना दूँगी अथवा बाधा उपस्थित करके कुछ अपशब्द सुन ही लूंगी वे ही मेरे लिये पर्याप्त हैं किंतु वहां तक पहुंचा कैसे जाये यही उसके लिये एक समस्या थी। उस समस्या को हल करने के लिये उसने अपनी सास से ही कहा कि वह किस बहाने से वहां जाये।

अरुणा बोलीः-चल मै तेरे साथ वहां तक चलती हूँ। दरवाजा मै खुलवा दूँगी आगे का काम तू करना।

दोनों योगेश के कक्ष तक पहुंच गई। आज जाने क्यों योगेश भी कुछ देर के लिये अपने भावी जीवन के बारे में सोच रहा था। वह यह निर्णय नही कर पा रहा था कि क्या उसकी इस नीरस साधनासे समाज का और उसका कोई हित होगा ? इतने में ही उसने अपनी मां की आवाज सुनी योगेश-आओ-योगेश ! योगेशने उठकर दरवाजा खोल दिया। दरवाजा खुलते ही सरला अन्दर घुस गई और अरुणा अपने शयन कक्ष में लौट आई। मां को कहीं न देख योगेश इधर-उधर देखने लगा तो उसने एक कोने में अपनी पत्नी को खड़ा पाया। इस आकस्मिक नाटक को वह कुछ नहीं समझ पाया आखिर वह बोला—

मां कहां है सरला तुम इतनी रात गये यहां क्यों आई ?

सरला ने कोई उत्तर नहीं दिया—

योगेश पुनः बोलाः-तुम मुझे उत्तर क्यों नहीं देती ? तुम कोई अप्सरा तो नही हो जो मुझे ठगने के लिये यह नाटक रच रही हो, बोलो सरला, इस बार सरला को बोलना ही पड़ा-वह बोली—अभी तुम्हारी साधना पूर्ण कहां हुई जो कोई अप्सरा उसे भग्न करने को यहां आयेगी अभी तो वह अपूर्ण है, उसका एक चौथाई हिस्सा भी पूर्ण नही है।

यह क्या कहती हो सरला ! मेरी इतनी मेहनत मेरी जिज्ञासा पर तुम पानी फेर रही हो। तुम्हारी यह बात झूठ है। योगेश बोला।

सरला ! झूठ नहीं मै सत्य कहती हूं तुम उस किसान के समान हो जो केवल खेत को जोतकर बिना बीज डाले, बिना सिंचाई और सुरक्षा के ही अच्छी फसल की आशा करता हैं। वह अकेला उस कार्य को नही कर सकता उसके लिये उसे सहयोग की आवश्यकता होगी और तुम्हें भी तभी तुम अपनी साधना में सफल हो सकोगे।



योगेश ! किसके सहयोग की सरला ?

ये सब शास्त्र, पुराण मेरे सहयोगी हैं तो सही ।

सरलाः–इनके अतिरिक्त तुम्हे आवश्यकता है मेरी अपने घर की और समाज की। ये सब शास्त्र, पुराण तो तुम्हारे लिये केवल साधन मात्र है जिनसे तुम अपना कार्य करते जाओ ।

योगेशः–सरला यह सब कैसे सम्भव है ? ये तो मेरी साधना में बाधा डालने वाले है। इनमें फँसकर मैं कुछ नहीं कर सकता सरला ।

सरलाः–क्या तुम नहीं जानते कि प्राचीन ऋषि-मुनि भी अपनी सहचारिणी को साथ में रखकर ही जंगलों में तपस्या किया करते थे, अत्री, बशिष्ट आदि का नाम तुम नही जानते फिर क्या फायदा इन ग्रंथों को पढ़ने से राजा जनक के बारे मे तुम नहीं जानते, गीता के उपदेश तुम नहीं जानते फिर व्यर्थ ही क्यों इन ढोंग रचते हो ? क्या गीता में निष्फल कर्म योग और भक्ति योग की महत्ता नहीं बताई गई है ? आप समय २ पर अपने कक्षमें चित्त निरोध कीजिये अपनी साधना का अभ्यास कीजिये किन्तु सभी से मुँह मोड़कर उदास क्यों रहते हैं। आपके कारण सबको दुःख होता है यह भी क्या उचित है ?

सरला की इन बातों ने योगेश के मस्तिष्क में घर कर दिया उसे अपनी समस्या का हल मिल गया और वह बोला।

सरला मेरी अच्छी सरला ! आज तुमने मेरी समस्या का हल बताकर बड़ा अच्छा काम किया मा कहां है सरला ? मैं अब मां से मिलना चाहता हूँ अपने परिवार व समाज से मिलना चाहता हूँ और उन्हें यह दिखा देना चाहता हूँ कि योगेश ने अपनी साधना पूरी कर ही ली हमारे साथ रहकर



योगेश माके चरणोंमें गिर पड़ा।

भी। इतना कहकर वह मां के कक्ष की ओर दौड़ पड़ा और जाकर मां के पैरों से लिपट गया।

\+ × + ×

भरत मुनि प्रणीत (एक नाट्य शास्त्र)

ले०—श्रीपाद शास्त्री

प्राचीन पण्डित वेदव्यास प्रणीत अग्नि-पुराण को साहित्य शास्त्र का आद्य ग्रन्थ मानते रहे हैं किन्तु अर्वाचीन प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वानों की मान्यताओं तथा ऐतिहासिक आधारों से यह प्रमाणित हो गया है कि भरतमुनि प्रणीत नाट्य-शास्त्र साहित्य-शास्त्र सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ है। विद्वानों ने अग्नि पुराण की रचना काल ई. स. ७०० से ई. स. ९०० माना है। उन के मत के अनुसार 'नाट्य शास्त्र' ईसा पूर्व २०० से ई. स. २०० की कृति है नाट्य शास्त्र की उत्पति की कथा इस प्रकार बताई जाती है—

पुरातन काल में एक बार इन्द्र ने ब्रह्मा से कहा—
'क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद्भवेत।'

भगवान्! कोई ऐसा खेल सिखाओ जो देखने में सुन्दर और सुनने में मधुर हो।

उनकी प्रार्थना सुन कर ब्रह्मा ने ऋग्वेद से कथा एवं पाठ्य यजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से गीत-संगीत तथा अथर्व

वेद से रस व भाव लेकर नाट्य--वेद की रचना की और देवों से कहा, 'आप में जो सर्वाधिक कुशल, विदग्ध, प्रगल्भ एवं जितश्रम है वह इसे ग्रहण करे।' इस पर इन्द्र ने कहा— भगवान् ! हम में इन सभी गुणों से युक्त ऐसा कोई भी नहीं है। जो इस के महान् ज्ञान को पूर्णतः ग्रहण, धारण एवं प्रयोग कर सके। उन की असमर्थता देख कर ब्रह्मा ने यह विद्या भरतमुनि को दी। भरत जी ने यथाविधि अपने अपत्यों को नाट्य शास्त्र की शिक्षा, दीक्षा दी। कुछ समय के पश्चात् उन्होंने आरभटी, सात्त्वती एवं भारती इन तीन प्रवृत्तियों से युक्त नाट्य की रचना की और उसमें अपने शिष्यों को उन: की योग्यता के अनुरूप अभिनय एवं अन्य कार्य सौंपे। भरत मुनि के काय के प्रति संतोष प्रकट कर ब्रह्मा ने कहा कि, 'नाट्य में 'कैशिकि' का प्रयोग होना चाहिये।' इस र भरत मुनि ने कहा, 'भगवन ! कैशिकि' के प्रयोग के लिये नारी जनों की आवश्यकता होगी। उनके बिना यह संभव नहीं हो सकेगा।' तब ब्रह्मा ने कैशिकि के सफल प्रयोग के हेतु भरत मुनि को गायन, वादन पटु, अभिनय--नृत्य निपुण, नाट्य--अलंकार--चतुर, चारु-रूपा सादायुवा--अप्सराएं दी। उन अप्सराओं के सहयोग से इन्द्र ध्वज नामक पर्वोत्सव के दिवस भरत मुनि ने अपना नाट्य प्रस्तुत किया नाट्य का विषय था देवों की दानवों पर विजय। वहां दानव भी उपस्थित थे। वे नाट्य देख कर क्षुब्ध हो उठे और उत्पात मचाने लगे। ब्रह्मा ने उन से पूछा, 'वत्सों आप लोग इस प्रकार व्यत्यय क्यों निर्माण कर रहे हो ?' इस पर दानव-प्रमुख विरुपाक्ष ने कहा—

'भगवन् ! वस्तुतः आप ही देवों और दानवों के आदि-कारण स्रष्टा हैं, अतः आप के लिए दोनों समान हैं किन्तु आपने हमारा यत्किंचित् परामर्श लिये विना देवों की इच्छा के अनुसार 'नाट्य-शास्त्र' की रचना की और अब इसी नाट्य के द्वारा हमारा प्रत्यादेश तिरस्कार हो रहा है।"

इस पर ब्रह्मा ने सान्त्वना के लिये कहा, 'वत्सो' ! आपलोग इसका विषाद न मानो। सुनो—

"भवतां देवतानां शुभाशुभ विकल्पैः ।
कर्मभावान्वयापेक्षी नाट्यवेदो मया कृतः ॥
नैकान्ततोऽत्र भवतां देवतानां चापि भावनम् ।
त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम् ॥
क्वचिद्धर्मः क्वचित क्रीडा क्वचिदर्थः क्वचिच्छमः ।
क्वचिद्धास्यं क्वचितयुद्धं क्वचितकामः क्वचित्वधः ॥
धर्मो धर्म प्रवृत्तानां कामः कामार्थ सेविनाम् ।
निग्रहो दुर्विनीतानां मत्तानां दमन क्रिया ॥
नाना भावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम् ।
लोक वृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम् ॥"

"आप (दानवों) तथा देवों के कर्म भाव तथा अन्वय के आधार पर, आपके शुभाशुभ कर्मों के परिणाम दिखाने के लिये इस नाट्य वेद की रचना की गई है। वास्तव में इसमें आपका अथवा देवताओं का एकान्त रूप से भावन नहीं किया गया है। नाट्य में स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल के लोकों की

आशा-व्यथा, निराशा-प्रसन्नता आदि समस्त भावनाओं का अनुकीर्तन होता है, इसलिये नाट्य में कहीं क्रीडा, कहीं अर्थ कहीं क्षमा, कहीं धैर्य, कहीं क्रौर्य, कहीं शौर्य, कहीं कामसेवितों का काम, कहीं धर्मप्रवृत्तों का धर्म, कहीं दुर्विनीतों का निग्रह कहीं मत्तों का मत्तत्व-दमन आदि मानव-दानव-देवों की, नाना प्रकार की अन्तर्बाह्य प्रवृत्तियों का विशद प्राकट्य होता है। नर-किन्नरादि, तथा सुरासुरादि की नान भावनाओं तथा अवस्थाओं का लोकवृत्तानुकरण नाट्य में होता है अंगादि के संचालक से तथा अभिनय द्वारा सुख-दुःख, हर्षामर्ष, भया-भयादि से युक्त सांसारिकों की आकृति एवं प्रकृति की अभि-संक्रान्ति को नाट्य कहते हैं।

यह कथा नाट्य शास्त्र प्रथम प्रकरण में आई है। वेदाश्रित होने के कारण नाट्य शास्त्र को 'नाट्यवेद' भी कहते है। इस ग्रंथ का विस्तार जिस प्रकार विशाल है उसी प्रकार इसका विषयभी महान है। भरत मुनि ने साहित्य, संगीत एवं नाट्य तथा तदाश्रित-तत्सम्बन्धित अन्य ललित कलाओं के विषय में आर्य संस्कृतिके महान आदर्शा एवं श्रुति-स्मृति-पुराणेतिहासोक्त सिद्धान्तों की प्रस्थापना एवं प्रतिपादनके हेतु नाट्य-शास्त्रकी रचना की। सैंतीस प्रकरणों एवं सात हजार श्लोकों में वर्ण्य विषय आया है।

प्रकरणों का संक्षिप्त परिचय:--

पहले अध्याय में नाट्यशास्त्र के उद्भव की कथा है।

दूसरे प्रकरण में नाट्य मण्डप के शिल्प के विषय में कहा गया है।

तीसरे प्रकरण में रंग भूमि के देवता की पूजा की विधि का विस्तृत वर्णन है।

चौथे प्रकरण में तण्डवादि नृत्यों की सांगोपांग चर्चा है।

पांचवे प्रकरणमें पूर्व-रंग, प्रस्तावना तथा नान्दि आदि के विषय में कहा गया है।

छठे प्रकरण में श्रृंगार, वीर तथा करुणादि रसों पर विचार विमर्श किया गया है।

सातवें प्रकरण में रस, स्थायी, अस्थायी, संचारी तथा व्यभिचारी भाव, विभाव तथा अनुभवों की विशद व्याख्याएं हैं।

आठवें प्रकरण में आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक इन चार प्रकार के अभिनय के भेदों के सम्बन्ध में कहा गया है।

नवें प्रकरण में हस्तपादादि अगों के संचालक, उत्तोलन तथा विक्षेकों से चनित कायिक अभिनय का विचार किया गया है।

दसवें एवं ग्यारहवें प्रकरण में नृत्य की गतियों तथा चारी आदि का विवरण है।

बारहवे प्रकरण में राजा, भृत्य, देवता आदि भूमिकों के अभिनय की पद्धति की चर्चा है।

तेरहवे प्रकरण में आवन्ती, दाक्षीणात्वा, पांचाली,

औड्रमागधी आदि प्रवृत्तियों का विवेचन है।

चौदह तथा पन्द्रहवें प्रकरण में छन्द सम्बन्धी समस्याओं का व्याख्यान है।

सोलहवें प्रकरण में काव्य के लक्षण, अलंकार, गुण एवं दोषों का स्पष्टीकरण है।

सतहरवें प्रकरण में काकुस्वर विधान तथा प्राकृत भाषाओं की विवेचना है।

अठारवें प्रकरण में दशरूप विधान अर्थात् नाटय प्रकरण प्रहसनादि दश नाटय प्रकारों की विस्तृत चर्चा है।

उन्निसवें प्रकरण में नाटय वस्तु एवं नाट्य संधि का वर्णन है।

बीसवे प्रकरण में भारती, आरभटी सात्त्वती तथा कैशिकी इन विविध प्रवृतियों का वर्णन है।

इक्कीसवें प्रकरण में पात्रों की वेशभूषा, आभूषण तथा रंग सज्जा के विषय में कहा है।

बाइसवें प्रकरण में स्त्री-पुरुषों के हाव-भाव, प्रेम की दस अवस्थाएं तथा नायिका भेद का विवरण है।

तेइसवें अध्याय में प्रेम की सफलता के उपाय तथा कुट्टिनियों का विवेचन है।

चौबीसवें प्रकरण में नायक नायिकाओं के प्रकार (भेद) राजा तथा उसके अन्त: पुरवासी सेवक, सूत्रधार विदूषक एवं अन्य पात्रों की चर्चा है।

पच्चीसवें अध्याय में अभिनय की विशिष्ट पद्धतियों के विषय में कहा गया है।

छब्बीसवें अध्याय में पात्रों का चयन एवं कर्म विभाजन का उहापोह किया गया है।

सत्ताइसवें प्रकरण में नाट्य सिद्धि अर्थात् नाटक की सफलता के मूल्यांकन की विधिवत् चर्चा की गई है।

अट्ठाईस से पैंतीस प्रकरण में नाट्य संगीत के विषय में कहा गया है। बत्तीसवें अध्याय में चौसट प्रकार की ध्रुवाओं का (गीति प्रकारों का) वर्णन है।

छत्तीसवें प्रकरण में नटों एवं कलाकारों के गुणों का वर्णन है।

तथा अन्तीम सैंतीसवें प्रकरण में स्वर्ग लोक से भूलोक पर नाट्यशास्त्र के अवतरण की कथा आई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि काव्य मीमांसा एवं साहित्य शास्त्र सम्बन्धी विवेचन छ, सात, सोलह, अट्ठारह एवं बाइस इन प्रकरणों में आया है यहां एक बात स्मरणीय है वह यह कि नाट्य एवं काव्य का आन्तरिक सम्बन्ध दृष्टिगत रखते हुये अन्य नाट्यांग भी साहित्य शास्त्र में अन्तर्भूत हो जाते हैं।

इस प्रकार सर्वांगपरिपूर्ण होने भरतमुनि के नाट्य शास्त्र का आज सतत दो सहस्राधिक वर्षों से पण्डितोंमें पठन-पाठन अध्ययन अध्यापन हो रहा है। आशा है हमारे आधुनिक नाट्य शास्त्री अपने अध्ययन में इस कृति का अन्तर्भाव करेंगे।





प्रायः सभी ऋतुओं में सर्वसुलभ एवं उपयोगी केला ही एक ऐसा फल है, जो प्रायः सभी बाजारों में देखा जा सकता है। आहार शास्त्रियों का कहना है कि केले को नित्य के भोजन में प्रथम एवं महत्व का स्थान मिलना चाहिए, क्योंकि जन-साधारण के लिये जितना केला लाभदायक सिद्ध हो सकता है, उतना अन्य नहीं। केला सस्ता, सर्वसुलभ, स्वादिष्ट तो है ही, साथ ही इस फल की बहुतेरी विशेषतायें हैं। यही कारण है कि सभी लोग केले को बड़े चाव से खाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि केला पौष्टिक आहार का काम करता है। केले के सभी अन्य भाग, जैसे फल, फूल, तना, पत्ता तथा जड़ सभी उपयोगी हैं, जिनका अलग-अलग महत्व हैं।

केला स्वभाव से ठण्डा तथा कफकारक है, किन्तु यह सत्य है कि केला शक्तिदायक भी है। केले का प्रतिदिन सेवन करने से मांस और खून की वृद्धि होती है, तथा शरीर भी

बलवान् होता है। कच्चे केले उष्णता प्रधान कच्चे केलों से स्वादिष्ट सब्जी तथा अनेक रुचिकर व्यंजन तैयार किए जाते हैं। केला गरमी और रक्तके तमाम विकारोंको दूर कर देता है।

केला खाने से ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है। स्त्रियों के लिये केला रामबाण औषधि के रूप में सिद्ध हुआ है। जिन स्त्रियों को श्वेत प्रदर तथा रक्त-प्रदर ऐसी भयंकर बीमारियों तथा अंदरूनी रोग होते हैं, केले का सेवन करने से उन्हें लाभ होता है। केला एक ओर जहां दैनिक खाद्य-पदार्थों तथा औषधि के रूप में प्रयुक्त होता है, वहीं दूसरी ओर केले तथा उसके पत्तों का उपयोग देवपूजनादि शुभ कामों में भी किया जाता है।

कच्चे केले की तरकारी तथा विविध प्रकार के अनेक स्वादिष्ट व्यंजन बनाये जाते हैं। केले के फूल की तरकारी बनाई जाती है। पके केलों का रायता बनाया जाता है। केले खाने से भूख भी शान्त होती है और शरीर पुष्ट होता है। कुछ लोग तो कच्चे केले को सुखा कर आटा तैयार कर लेते है और आवश्यकता पड़ने पर काम में लाते हैं। कच्चे केले की तरकारी, पुष्टकारक और आमाशय के लिये उपयोगी होते है। प्रदर तथा पथरी के रोगों में पके केले का सेवन करने से लाभ पहुंचता है। पका केला घी के साथ खाने से पित्त शांत हो जाता है। केले का उपयोग निम्नलिखित स्वदिष्ट व्यंजन बनाकर किया जा सकता।

केले की पूडीः—कच्चे केले एक दर्जन, शक्कर एक पाव, छोटी इलायची पिसी हुई एक तोला, तथा मेवा अन्दाज से

लेकर पहले केलों को उबालकर छील लें, फिर सिल पर महीन २ पीस लें, और एक साफ बर्तन में सने हुए आटे की तरह संभाल कर रख लें। शक्कर में थोड़ा-सा पानी डालकर आग पर चढ़ा दें। जब शक्कर की एक तार की चाशनी बन जाये, तब आग से नीचे उतार कर रख लें। अब केले के आटे की छोटी २ लोइयां बनाइये और छोटी २ पूड़ियां बेल लीजिये। तत्पश्चात् कढ़ाही में घी डालकर आग पर चढ़ा दें। जब घी खूब गरम हो जाये, तब केले की पूड़ी को अच्छी तरह उठाकर कड़ाही में डाल दें और चमचे या छन्नी से उलट-पुलट कर गुल.बी रंग की सेंक लें और शीघ्र ही चाशनी में डालकर आठ या दस मिनट बाद बाहर निकाल लें और ऊपर से मेवा डालकर खाने के काम में लाइये। यह पूड़ी खाने में स्वादिष्ट होती है।

केले के दही बड़े—कच्चे केले एक दर्जन, खट्टा दही एक सेर, नमक मिर्च, हरी मिर्च, अदरक, धनिया की पत्ती, किस-मिस, चिरौंजी, कच्ची गरी, हींग, जीरा और घी अन्दाज से ले लें। पहले केले को उबालकर छील लें और सिल पर पीस लें। अंदाज से मिर्च मिलाकर रख लें। इसके बाद सभी मसालों को अच्छी तरह मिलाकर केले की पिट्ठी की टिकिया बना कर उसके अन्दर पिसा हुआ मसाला भरकर घी में गुलाबी रंग के सेंक लें। अब दही को हींग-जीरा से नमक, मिर्च, डालकर तले हुए बड़े डाल दें। अब बड़े दही में अच्छी तरह फूल जायें, तब खाने के काम में लायें।

केले की फली की पकोड़ी- केले की फली एक पाव, हींग, नमक, तैल, बेसन तथा जीरा अन्दाज से। पहले केले की फली कच्ची लेकर छील डालिए और पानी में उबालकर खूब मसल लीजिए। फिर इसमें बेसन, नमक और उपर्युक्त मसाला अच्छी तरह मिलाकर रख लें। अब कड़ाही में तेल डालकर आग पर रख दें। जब तेल खूब गरम हो जाये, तब इच्छानुसार पकौड़ी तोड़कर गुलाबी रंग की सेंक लें। ये पकौड़ियां खाने में जायकेदार होती हैं।

केले की बरफी— कच्चे केले एक शेर, शक्कर दो शेर, खोवा डेढ़ पाव, पिश्ता दो तोला, छोटी इलायची एक तोला, जावित्री आधा तोला, जायफल आधा तोला तथा घी अन्दाज से। पहले केले को छिलकर चाकू से पतले टुकड़े काटकर रख लें। कलईदार कड़ाई में घी डालकर आग पर चढ़ा दें। जब घी में धुआं सा उठने लगे, तब कटे हुए टुकड़ों को तल लें। और सिल पर महीन पीस लें। अब केलेमें खोवा मिलाकर रख लें और कड़ाही में घी गर्म करके धीमी-आंच में भूनिए। जब भुनकर गुलाबी रंग सा हो जाये, तब जावित्री और जायफल पीसकर छोड़ दें। इसके बाद शीघ्र ही शक्कर का शबत बनाकर छोड़ दें। जब रस गाढ़ा हो जाये और उसमें दाने पड़ने लगें, तब थाली में घी लगाकर जमा दीजिए और ऊपर से पिस्ता, इलायची भुरक दें। दूसरे दिन चाकू से बरफी के तिरछे टुकड़े काट कर खाने के काम में लायें।

केले की तरकारी— कच्चा केला आध सेर, धनियां डेढ़ तोला, हल्दी चार माशे, बड़ी इलायची डेढ़ माशे, काला जीरा

एक माशा, मिर्च दो माशा, सफेद जीरा एक माशा, लौंग आधा माशा, दालचिनी आधा माशा, अदरक आधा तोला, तेजपान एक माशा, दो-तीन लाल मिर्च, घी एक छटांक, हींग एक रत्ती, नमक आधा तोला तथा अमचुर अन्दाज से। पहले केले को छिलकर छोटे-छोटे टुकड़े काटकर उबाल लें। उबल जाने पर सब पानी निथार कर हवा में किसी साफ कपड़े पर फैला दें। जब वह कुछ सूखकर तैयार हो जाये, तब किसी बर्तन में रख लें। इसके बाद धनियां, हल्दी, दालचीनी, काली मिर्च, अदरक, तेजपान, लाल मिर्च, इलायची, सफेद जीरा काला जीरा, लौंग आदि मसालों को सिल पर पानी में महीन पीस लें फिर एक पतीली में घी ड़ालकर आग पर चढ़ा दें। जब घी गरम हो जाये, तब हींग को ड़ालकर ऊपर से पिसा हुआ मसाला डालकर गुलाबी रंगका भूने। भुन जाने पर सुखाये हुए टुकड़ों को भी थोड़ा सा भूनकर पानी और नमक ड़ालकर ढक दें और धीमी आंच में पकने दें। कुछ देर बाद नीचे उतार कर अमचुर छोड़ दें और पत्थर के बर्तन में डालकर खाने के काम में लायें।

केले की टाफी— पके केले आधा दर्जन, शक्कर तीन पाव, इलायची आधा तोला, नींबू और घी अन्दाज से। पहले केलों को छीलकर हाथ से मसलकर शक्कर मिला दें और दो घण्टेतक रखा रहने दें। इसके बाद उसमें घी छोड़कर आंचपर चढ़ा दें और चमचे से बराबर चलाती रहें। जब जमने लायक गाढ़ा हो जाये, तब नींबू का रस डालकर नीचे उतर दें और इलायची पीसकर मिला दें। थाली में घी लगाकर जमा दें। ठंडी हो जाने पर टुकड़े काटकर खाने के काम में लायें।



ले०—वंशराज तिवारी बी. ए. डिप. एड., साहित्य रत्न

सत्-चित्त आनन्द परमात्मा ने कभी नहीं सोचा था कि तुम कायर, डरपोक, काम-चोर तथा समाज, चोर बन जाओगे। नवजात शिशु के पालन पोषण में जो अपह्नुति गगन-चुम्बी भावी आशा पिता के मन में होती है, वही तो परमपिता परमात्मा के मन में भी रही होगी। वह इस संसार में तुम्हें संघर्ष के लिये भेजा है। उस संघर्ष के मैदान से पीठ दिखाकर भाग जाना नमक हरामी होगी। रण छोड़ बनकर जीना मरने से अच्छा नहीं है।

प्रेसीडेन्ट रूजवेल्ट ने एक बार कहा था—"वह मरने योग्य नहीं है, जिसे मरना नहीं आता और वह मरने योग्य नहीं है, जो जीवन के कर्तव्यों एवं आनन्द से जी चुराता है"

हमको मालूम है कि एक दिन हम मरेंगे। जब मरना ही है, तो कुत्ते की मौत क्यों मरा जाय। यह भी सर्वविदित है कि मौत जीवन में एक बार होती है। एक बार की मृत्यु को प्रशंसनीय, आदरणीय एवं अमरत्व प्रदान करना वीरों का काम है। कायर या डरपोक दिन में कई बार मरता है। वीरों और कायरों में अन्तर केवल इतना ही है कि एक मर-मर कर जीता है और दूसरा जी जी कर मरता है। मरना जिनको सबसे प्रिय है, वही संसार में आने की सार्थकता दिखा सकते हैं। छाती ऊँची कर तथा मधुर मुस्कराहने के साथ, योग्यपुत्र का अधिकार लेकर उस परमपिता के सामने उपस्थिति होने योग्य हैं। संसार में भेजे गये हो तो तुम्हें जीना पड़ेगा और अगर जीना पड़ेगा, तो कुछ करके जियो, कुछ होकर जियो। इससे तुम्हारी ही आत्मा को तुष्टि नहीं मिलेगी वरन् तुम्हारे निर्माण कर्ता को भी।

कुछ लोग उस अमरत्व का अर्थ गलत समझते हैं। उनके अमरत्व का प्रसाधन पूजा, पाठ, जप-तप एवं संसार से पलायमान वादी नीति है। उनकी दैनीय अवस्था पर एक मीठी पीड़ा एवं हृदय-विदारक हँसी आती है। जिस संसार में पैदा हुये हो, जिस संसार के लिये पैदा हुये हो, उससे भागकर भला तुम किस वीरता का परिचय दे रहे हो? अगर उनसे इस तरह का प्रश्न पूछा जाय तो शायद तिलमिला उठेंगे और जवाब क्या देंगे 'तुम नास्तिक हो।' अगर पूजा पाठ ही करना है तो काम की पूजा करो।' 'वर्क इज वरशिप'

अर्थात् 'काम ही पूजा है' कार्लाइल के इस कथन में बहुत बड़ी सत्यता है।

व्यक्तित्व एक बिना जुती भूमि की तरह है। उसमें क्या २ रत्न भरे पड़े हैं, तुम नहीं जान सकते। व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करना मानव जाति का कर्त्तव्य है। स्वाध्याय, अध्ययन एवं औचित्यमय कार्यों के अभाव में व्यक्तित्व का विलीनीकरण होता है। अपने को आगे बढ़ाने के लिये अपनी आत्मा को शान्ति प्रदान करने के लिये एकबार अपनी पूरी शक्ति के साथ काम पर लग जाओ। फिर तो—कर्मणवाधिकारस्ते—

अर्थात् कर्म करने में ही हमारा अधिकार है, फल तो भगवान् के हाथ में है।

हमारे वेदोक्त आधारित ग्रंथ इस बात के साक्षी हैं कि जिसके पास उद्यम, साहस, धैर्य बुद्धि, शक्ति एवं पराक्रम है उसका भगवान् भी साथ देता है। जबतक स्वयं अपने पास शक्ति नहीं, साहस नहीं, अग्रसर होने की प्रबल इच्छा नहीं तबतक भगवान् को कौन कहे साधारण व्यक्ति भी साथ नहीं दे सकता। याद रखो इस वसुन्धरा का भोग वही कर सकता है जो वीर हैं, पराक्रमी है और इस जीवन का अर्थ समझता है

'वीर भोग्याः वसुन्धरा'

अर्थात् 'इस पृथ्वी के राज्य को वीर भोगते हैं'

इस संसार में रहकर अगर कुछ होना चाहते हो, तो निराशा का त्याग करो, असफलता से हतोत्साहित न हो-

यह जीवन गजदन्ती मीनार नहीं है, साफ-सीधा राजमार्ग नहीं है, इसके दोनों किनारों पर कण्टका कीर्ण झाड़ियां हैं, इन झाड़ियों में फूल भी हो सकते हैं पर उन फूलों से उतना लाभ नहीं जितना इन काँटों से भय। इसी तरह के कण्टीले मार्ग की तुलना जीवन से की जा सकती है। सुख-दुःख ही इसके फूल और काँटे हैं। अगर तुम जीवन के फूल को लेना चाहते हो, तो पहले काँटों से उलझना पड़ेगा। फूल चुनने की कला में जो जितना ही प्रवीण है, उसका जीवन उतना ही साफल्यमय है।

अब प्रश्न यह उठता है कि फूल चुनने की कला सीखाने-वाला गुरु कहां से खोजा जाय? इस कला में प्रवीण बनाने वाला सबसे बड़ा गुरु अगर कहीं है, तो वह है, सद्ग्रन्थों का अध्ययन और सज्जनों का साथ।

संसार विषवृक्षस्य द्वे एव मधुरे फले।
काव्यामृतरसास्वादः संगनः सज्जनै सह ॥

अर्थात् संसार के विषवृक्ष में केवल दो ही मधुर फल हैं, काव्यामृत का रसास्वादन एवं सज्जनों का सहवास।

सद्ग्रंथों के अध्ययन से, सज्जनों के साथ से जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त किया जाता है, उसको क्रियात्मक ढ़ाँचे में ढ़ालना सफल जीवन की कुँजी है।

जो आदमी सोने की हथकड़ी-बेड़ियों से अपनी आत्मा को बांध रक्खा है, वह कभी भी आगे नहीं आ सकता। सोने का

पारखी समाज का पारखी नहीं बन सकता। कंचनलोभी के ऊपर दुर्भावपूर्ण भावनायें अपना अधिकार जमा लेती हैं।

संसार में अगर कुछ होकर जीना चाहते हो, तो एक निश्चित लक्ष्य बनाओ। निर्दिष्ट लक्ष्य के ऊपर मन की दृढ़ता एवं प्रयत्न का इतना प्रबल प्रभाव होना चाहिये कि जीवन का निश्चित उद्देश्य विचारों से एक पल भी ओझल न हो। भावना-क्षेत्र अत्यन्त पवित्र क्षेत्र माना गया है, उसको दूषित करना मनुष्य का अधिकार नहीं है। जिसकी भावना में निश्चयात्मिका शक्ति जितनी ही प्रबल होगी, वह उतनी ही खूबसूरती एवं सफलता से अपने लक्ष्य तक पहुंचने में समर्थ होगा।

जैसे तुम हो वैसा ही तुम्हारा संसार होगा। पहले अपने को सुधार लो, फिर सारा संसार अच्छा दिखलाई पड़ेगा।

जाकी रही भावना जैसी, हरि मूरत देखी तिन तैसी॥

अर्थात् 'जिसकी जैसी भावना होती है, वह उसी रूप में भगवान् को देखता है'

बढ़ना चाहते हो तो ठोस ज्ञान अर्जित करो। ठोस ज्ञान टक्करों के स्कूल में होता है कहने का तात्पर्य यह कि जो कठिनाइयां तूफान एवं सामाजिक झँझावातों से घबड़ाकर अपने को संकुचित कर लेता है, उसकी सीधाई पर दस-बीस व्यक्ति चाहे भले ही उसकी प्रशंसा के पुल बांध दें, पर वह वास्तविक सफलता से बहुत दूर हो जाता है। संसार के टक्करों से अनुभवात्मक-ज्ञान होता है। अनुभवात्मक ज्ञान-

राशि को क्रियात्मक रूप देना अधिक सरल एवं सुगम होता है।

भारतीय परम्परा के अनुसार मरा हुआ व्यक्ति फिर से जिन्दा होता है। (कहने का तात्पर्य फिर से जन्म लेता है)

जब मरा हुआ व्यक्ति फिर से जिन्दा हो सकता है, तो क्या हम लोग अपनी निराशा एवं अवसादवादिता के परिधान को फिर से फेंक नहीं सकते। अभी भी समय बीता नहीं है। बाबू मैथिली शरण गुप्त की अधोलिखित पंक्तियां मुर्दादिली में भी एक बार फिर से प्राण फूँक देने का दावा करती हैं।

नर हो न निराश करो मन को,
कुछ काम करो, कुछ काम करो,
जग में रहकर कुछ नाम करो,
यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो !
समझो जिससे यह व्यर्थ न हो,
कुछ तो उपयुक्त करो तन को,
नर हो न निराश करो मन को।

इतिहास महान् पुरुषों के जीवन का साक्षी है कि जब सारी दुनियां सोती रही है, तब वे जगकर काम करते रहे हैं। कुछ लोग सोचते होंगे कि इस प्रकार का काम तो स्वास्थ्यप्रद नहीं है ऐसे लोगों की शिकायत रहती है कि अधिक कार्य-भार से मैं कमजोर हो गया हूँ। पर यह गलत है। कार्य चाहे शारीरिक हो या मानसिक अगर उसे सच्ची लगन के साथ किया जाय तो वह स्वास्थ्य प्रद होता है एवं मनोरंजन

का साधन बन जाता है। किसी कार्य को तल्लीनता के साथ करने से आनन्द आता है और कार्यानन्द सफलता को निकटस्थ लाता है। मैं विश्वास के साथ कहता हूँ कि सच्ची लगन से असम्भव कार्य को भी सम्भव बनाया जा सकता है। गान्धी जी की सच्ची कार्यनिष्ठा एवं लगन इस बात का बहुत बड़ा दृष्टान्त है। सचमुच-'झुकाने वाला चाहिये'

अगर आपको समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करनी है, इतिहास के पृष्ठों पर नामांकन कराना है, अपने युग में एक नया मोड़ लाना है, तो कर्तव्य के लिये झगड़ा करो अधिकार के लिये नहीं। महात्मा गांधी का कथन था 'कर्तव्य का ही दूसरा नाम अधिकार है।'

अगर सुखी बनना चाहते हो, कई शताब्दी तक अमर रहना चाहते हो, तो काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, मोह, माया आदि को अपने ऊपर हावी मत हो जाने दो। ये दोष एकाकी नहीं हैं। एक एक दोष में से कई विकार पैदा होते हैं। क्रोध के सम्बन्ध में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुये कहा था कि:— (श्री मद्भवगीता अ. २ श्लो. ६३)

क्रोधात् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिः विभ्रमः।
स्मृति भ्रंशात् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥

अर्थात् क्रोध से मोह उत्पन्न होता है, मोह से बुद्धि में विभ्रम उत्पन्न होता है, बुद्धि में विभ्रम उत्पन्न होने पर विकृति हो जाती है और इसके विकृति होने पर मनुष्य शीघ्र नष्ट हो जाता है। कहने का तात्पर्य हरएक अवगुणों के साथ उनका

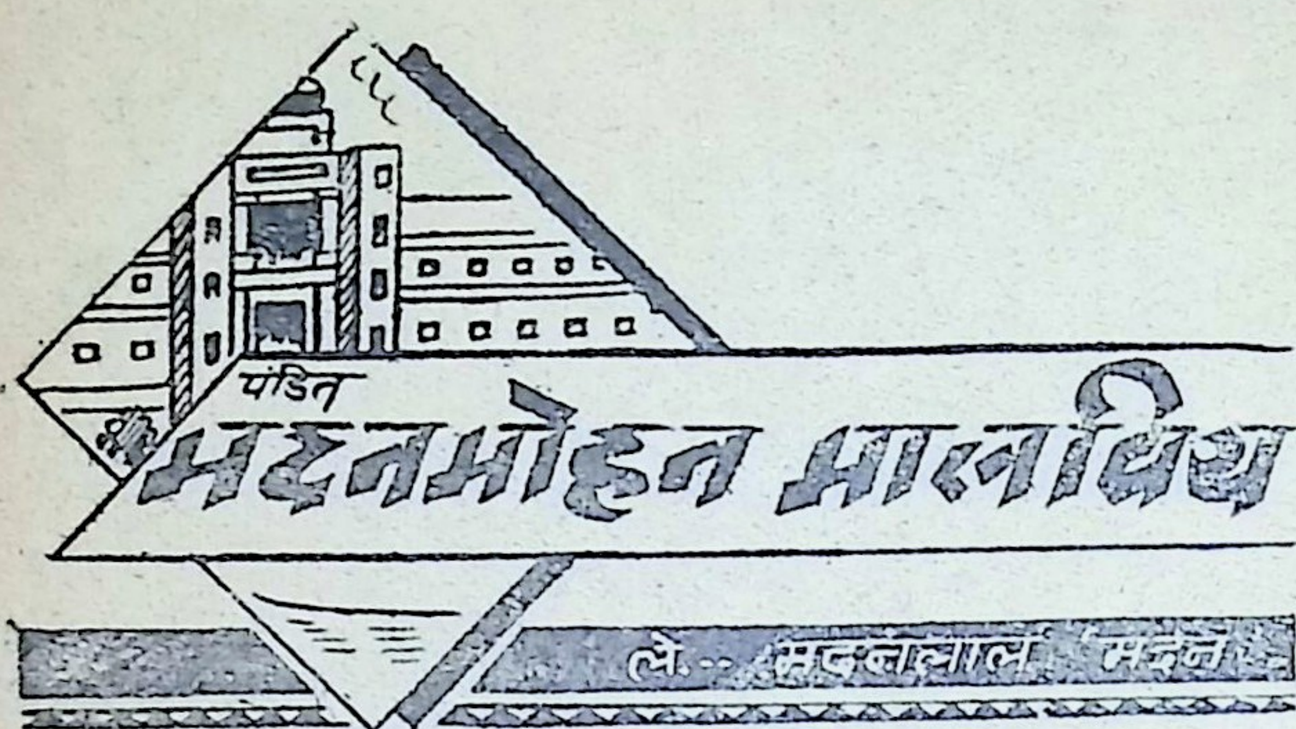
एक भारी नाशकारी समूह होता है। सदैव अवगुणों से बचना मनुष्यकी एक कला है, जिसने इस कलाको सीख लिया है, वही जीने का मजा उठा सकता है। बदनाम होकर, लज्जित होकर, रो रोकर जीने से तो मरना ही अच्छा है।

ब्रह्मा की सृष्टि में मानव सबसे गरिष्ठ स्थान रखता है क्योंकि उसके पास स्वयं सोचने समझने की शक्ति है। वह परावलम्बी नहीं है। उसका एक निश्चित कायाम है। उस कायाम की सीमाका उलंघन करके मनुष्य मनुष्य न रह जायगा पशु और उसमें कोई खास अन्तर नहीं रह जायगा। इसलिये मनुष्य को अपने सामाजिक एवं नैतिक स्तर का सदैव ध्यान रखना चाहिये। कहा भी गया है।—

प्रत्यहं प्रत्यवीक्षेत नरश्चरितमात्मनः।
किन्नु में पशुभिस्तुल्यं किन्नु सत्पुरुषैरिति॥

अर्थात् व्यक्ति को चाहिये किव ह अपने चरित्र का आलोड़न-विलोड़न करे कि मेरा चरित्र मनुष्य के स्तर का है या जानवर के। जानवर और मेरे में क्या अन्तर है? मैं किस बात में जानवर से बढ़कर हूँ। अगर मनुष्य यह नहीं कर पाता है, तो अपना पेट तो कुत्ता भी भर लेता है। मानवता के कर्तव्य की ओर जागरूक रहना ही जीना है।





"स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" इस मूल मन्त्र से हमें परिचित करानेवाले नायक को क्या कोई भारतीय स्मृति पटल एवं हृदयपटल से धूमिल बनाने का प्रयत्न कर सकेगा ?

वह महापुरुष जिसने भारत के राष्ट्रपिता को एक अमूल्य प्रेरणा प्रदान की। वह वीर जिसने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा भारतीयों के हृदयों में वीर रस की धारा प्रवाहित की। वह सन्त पुरुष जिसने भारतीय संस्कृति को उसकी उन्नति हेतु अपने शुभ कार्यों में प्रवृत्त किया ! वह महामना महापुरुष जिस के जीवन का आदर्श हमें अपने जीवन की पूर्णताहेतु प्रेरित करता है।

ऐसे ही प्रेरक महामना मदन मोहन मालवीयजी का जन्म सन् १८६१ में प्रयाग में हुआ। सैन्ट्रल कालेज इलाहाबाद में शिक्षा प्राप्त की । इनके पिता पक्के सनातन धर्मी थे। पिता

का प्रभाव पुत्र पर भी पड़ा। हिन्दू धर्म ने कोमल मन पर अटूट छाप लगा दी। हिन्दुत्व प्रेमी, संयमी, परोपकारी तथा उदार हृदय पुरुष बनकर पथ में बढ़ चले। ईश्वर भक्ति तो उनके मन में इतनी गहन थी कि विदेशों में जाकर भी उसका पल्ला न छोड़ा और जब तक पूजा पाठ न कर लेते, खाना तक भी नहीं खाते थे। संस्कृतके पूर्ण ज्ञाता, वेदों तथा शास्त्रों के मर्मज्ञ थे।

वकालत पास करने पर मदनजी ने प्रयाग में ही अपना कार्य शुरू किया। थोड़े ही दिनों में वह कार्य चमक उठा और अपने क्षेत्र में ख्याति प्राप्त पुरुष बन गये। "हिन्दुस्तान और इंडियन यूनियन" समाचार पत्र का भी संपादन किया। इसी पत्र द्वारा जनता के हृदय में देश प्रेम जाग्रत किया और स्वराज्य प्राप्ति की चेतना उत्पन्न की।

उस समय की अंग्रेजी सरकार के अत्याचारों से वीर हृदय खिन्न हो उठा और वकालत का कार्य छोड़कर जनता की सेवा का पूर्णरूप से मार्ग अपनाया! सभी आमोद प्रमोद को लात मारकर राजनैतिक कार्यों में पूर्ण तत्परता से लग गये। देश के स्वतन्त्रता संग्राम में उत्साह के साथ कांग्रेस में प्रविष्ठ होकर गांधीजी का साथ किया। थोड़े ही दिनों में आपने राष्ट्र निर्माताओं में अग्र गण्य स्थान प्राप्त कर लिया। दो बार कांग्रेस के प्रेसिडेन्ट बने और कई वर्ष यू० पी० कौसंल के भी सदस्य रहे।'

संस्कृत की सेवा करके तो मालवीयजी ने पर्याप्त पुण्य कमाया। हिन्दू जनता उनके इस कार्य के ऋण से अपने आप

को मुक्त नहीं कर सकती। 'बनारस' हिन्दू विश्व विद्यालय की स्थापना कर इन्होंने साहित्य क्षेत्र में अपना नाम अमर कर दिया। कई वर्ष इस विश्वविद्यालय के उपकुलपति भी रहे। महामनाजी सत्यरूप में देश के सच्चे सेवक थे। प्रतिभा तथा ओजपूर्ण मधुर भाषणों पर जनता मुग्ध हो उठती और जहां भी उनका भाषण होता असंख्य रूप में पहुंचती!

जनता पर हुये अत्याचारों की बात जब भी सुनते उनको चैन न आता था तथा जनता की सेवा के लिये चल पड़ते थे। जलियांवाला बाग (अमृतसर) हत्याकांड की सूचना जब पहुंची तो उनकी शुद्ध आत्मा रो उठी। अमृतसर पहुँचकर काम आये युवकों के परिवारों से संवेदना प्रकट की और उनके दुःखों को कम किया!

गांधीजी भी उनसे विशेष प्रेम रखते थे। द्वितीय गोल मेज-कांफरेन्स जो अक्टूबर १९१२ में लंदन में रखी गयी थी, उस में सम्मिलत होने के लिये मालवीयजी ने भी गांधीजी का साथ किया, पर चूंकि भिन्न २ जातियों के प्रतिनिधि इस मत पर सहमत न हो सके कि चुनाव का ढ़ंग तमाम जातियों का इकट्ठा हो या प्रत्येक जाति का अलग २, अतः यह कांफरेन्स असफल रही।

१९०९ में मिन्टो मार्ले योजना का विरोध कांग्रस ने नहीं किया और मुस्लमान इस योजना के पक्ष में थे। पंजाब के लाला लाजपतराय ने समझा कि हिन्दुओं के हित कांग्रेस के हाथों सुरक्षित नहीं और कहा कि हिन्दुओं को स्वतन्त्र संगठन बनाना चाहिये। इधर मोतीलाल से किन्हीं विषयों पर माल-

वीयजी और लाला लाजपतराय में मत भेद हो गया था अतः कांग्रेस की मुस्लिमपोषक नीति से रुष्ट होकर उन्होंने कांग्रेससे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। लाला लाजपतराय के सहयोग से १९१० में मालवीयजी की अध्यक्षता में अखिल भारतीय हिन्दू महासभा की स्थापना की गई तथा इसका प्रथम अधिवेशन प्रयाग में हुआ।

इस दल का कहना था कि—
"एक मनुष्य एक मत और सब को समाजाधिकार का सिद्धांत स्वीकार करना ही सही मार्ग है।" "स्वराज्य हमारा ध्येय है और हिंदुत्व हमारा प्राण है।"

"जो व्यक्ति सिन्धु (नदी) से लेकर सिन्धु (समुद्र) तक फैली इस भारतभूमिको अपनी पितृभूमि समझता है वह प्रत्येक व्यक्ति हिन्दू है, चाहे वह किसी प्रान्त या जाति का क्यों न हो। एक सच्चे राष्ट्र सेवी के रूप में उन्होंने हिन्दुओं में संगठन शक्ति का प्रचार इस प्रकार किया हिन्दु संगठित हों एक साथ कार्य करें, विभिन्न जातियों तथा वर्णों के तमाम भेद भावों को भुला दें और इस प्रकार संगठित होकर बाहरी आक्रमण कारियों का प्रतिकार करें।

सन् १९४६ के 'नोआखली' हत्याकाण्ड और भीषण रक्त-पात का मालवीयजी पर घातक प्रभाव पड़ा और अचानचेत १२ नवम्बर १९४६ को भारतीयों को असहाय बनाकर अपने मुक्ति मार्ग पर तीव्रता से प्रस्थान किया तथा जनता देखती ही रह गई।

रामतीर्थ १८६५ अक्टूबर ६२

उनका अन्तिम सन्देश जो हिन्दू जनता को मिला वह ऐसा था--

कई वर्षों से हिन्दू मुस्लिम समझौते के लिये हिन्दुओं ने काफी सहिष्णुता का परिचय दिया है परन्तु इस सहिष्णुता को कमजोरी समझा जा रहा है। कांग्रेस और मुस्लिम लीग को समान समझा जाकर बहु संख्यक अर्थात् हिन्दू जाति के अधिकारों को कुचला गया है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि हिन्दू संगठित हों।

मूल सिद्धान्त के प्रेरक, समाज सुधारक संवेदन शील, मातृ-प्रेम-विलीन इस महापुरुष से भारतीय जनता ऋण मुक्त कभी नहीं हो सकती। अपने त्याग परोपकार और भक्ति पूर्ण जीवन के कारण विश्व में अमर हो गये। भारतीयों के हृदयों में वह चिरस्मरणीय रहेंगे!





कड़ाके की धूप में जहां लोग कश्मीर की सैर करते हैं, और ग्रीष्म की छुट्टियां आनन्द से बिताते हैं, वहां हमारे लिए नेटहस पार्क कश्मीर से कुछ कम नहीं। यहां क्या नहीं है- सभी कुछ तो है सुन्दर सुन्दर वृक्ष, गलीचे के समान फैली हुई घास- मनोरंजन के लिए रेडिओ-नहाने के लिए स्वीमिंग पुल और नाश्ते के लिए नन्दनवन उपहार गृह-इसे मनोरंजन का एक बृहत् सम्मिलित मंच ही समझिए।

यदि आप कभी इन्दौर तशरीफ लाएं तो अन्य दर्शनीय स्थानों के साथ नेहरू पार्क को देखना न भूलें। जिन्दगी में आपने बहुतसे दर्शनीय स्थान देखे होंगे-जमाने भर की चीजें देखी होंगी, तरह तरह की बातें सुनी होंगी और अजीब-अजीब आदमियों से पाला पड़ा होगा आपका। जहां मराठी भाषियोंने महाराष्ट्र की मांग की, गुजरातियोंने गुजरात की मांगकी जहां सिख सिक्ख-स्तान मांग रहे हैं, वहां इस पार्क

में सभी–चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, सिख हो या ईसाई अमीर हो या गरीब, छोटा हो या बड़ा, सभी भेदभाव भूले एकत्र बैठे हुए, हंसते हुए खिलखिलाते हुए नजर आएंगे आपको। शहर की इस मशीननुमा जिन्दगी में हर आदमी खुद ही मशीन हो गया है यहां दिनभर की थकान मिटाने–मित्रों के साथ हो अथवा परिवार के साथ ही क्यों न हो अपने को आजाद समझना है स्वतंत्र समझना है और शाम का समय हंसी खुशी से व्यतित करता है बिताता है। तो आइए पार्क की सैर को।

रविवार हैं आज। सभी को छुट्टियां हैं। स्कूल कालेजोंको तो दो महिने के लिए ताले लगे हुए हैं। बाबूलोग भी छुट्टी मना रहे हैं। देखिए कैसी भीड़ लगी हुई है। प्रवेशद्वार पर ही सेव–चिवडा–मिक्चर–आईसक्रीम आदि बेचनेवाले सभी पार्थ प्रवेशी पर आशा भरी निगाह से देख रहे हैं। बिक्री के लिए न जाने कितने प्रयत्न किए जा रहे हैं कोई दुकानदार अपनी वस्तु को ताजी एवम् ए वन बताकर ग्राहकों को बुला रहा है तो कोई आईसक्रीमवाला बैटरी रेडिओ सेट को आकर्षण का केन्द्र बनाए हुए है।

महाशय क्या आपके पास साईकिल है तो फिर साईकिल स्टेंड पर ही रखिएगा। कहीं बाहर मत खड़ी कीजीएगा क्योंकि आजकल शहर में साईकिल चोरों की अधिकता है–सावधान रहिएगा कहीं तीन नये नये पैसे की बचत के लिए तीन सौ रूपये की साईकिल से हाथ न धोना पड़े।

सामने लगी पार्क की नियमावली पर गौर फरमाईयेगा। यों आप चौंक क्यों रहे हैं ? क्या लिखा हुआ हैं ? 'पार्क में अश्लील गीत गाना मना हैं।' परन्तु यह आवाज कहां से आ रही है "दिल देके देखो दिल देके देखो दिल लेनेवालों दिल देना सीखों जी। कौन गा रहा है ? क्या पार्क के नियमानुसार गीत अश्लील तो नहीं है ? नहीं तो कोई कर्मचारी गायक को पकड़ ही लेगा। परन्तु माफ करें यह तो रेडीयों से प्रसारित किया जा रहा है-यह तो आकाश का फरमाईशली प्रोग्राम है। हमारे भाईयों को यहीं पसन्द है इसीलिए तो उन्होंने यह फरमाईश की हैं। पसन्द है अपनी अपनी ! कौन क्या कर सकता है।

क्या रंग विरंगी नजारा है-कोई पैण्ट बुशशर्ट धारी है तो कोई धोती-कुरता धारी। कोई चमकीले-भडकीले सिल्कन वस्त्रों को धारण किए हुए हैं तो कोई सफेद खादी के कुरते पजामें में है। जरा नजर उधर तो घूमाइये-हमारी बहनें भी इस मामले में दो कदम आगे ही हैं--जैसी कोई फैशन परेड ही लगी हुई है। रंग-बिरंगी साड़ियां चाहे सूती हों या सिल्कन धारण किए हुए हैं। कोई बहनें गरमी के नाम पर नाइलोन 'सिजनल' कहकर उपयोग में ला रही हैं।

ये पांच छह वृद्ध किस चिन्ता में हैं-आओ देखें तो सही। अच्छा तो ये लोग सरकारी पेन्शनर हैं। पेन्शन वृद्धि सम्बन्धी बातें चल रही है इनकी। क्यों नहीं सभी को पैसों की आवश्यकता है। ये बेचारें पिछले वर्ष केन्द्रिय कर्मचारियों

की जैसी हड़ताल हुई वैसा भी तो नहीं कर सकते। क्यां कहा यहां खड़े-खड़े बोर हो गये तो भाई आगे बढ़िए हम आपको रोकने वाले कौन होते हैं ?

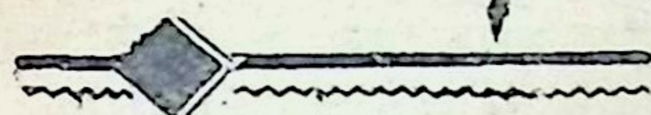
ओह ? सामने देख रहे हैं आप ? जोर शोर से चर्चाएं चल रही हैं। क्या कहा उधर चलें-माफ करना भाई उन से मैं अच्छी तरह परिचित हूँ -वे हैं शास्त्री बन्धु ! वे चष्माधारी धोती कुरते में जो दिख रहे हैं बड़े भाई हैं-आप कवि हैं। वैसे चेहरे से साफ जाहीर है-लम्बे लम्बे बाल-लम्बी दाढ़ी और फिर मोटे फ्रेम का चष्मा-एकदम कवि भी जंचते हैं। पास ही जो बैठे हैं छोटे भाई हैं-आप लेखक हैं। दोनों का अच्छा नाम है साहित्य में। दोनों क्रमशः बड़े पंडितजी एवं छोटे पंडितजीके नाम से महशूर हैं। क्या कहा ! उनसे मिला जाय ! नहीं भाई घन्टो तक साहित्य चर्चा अपने बस का रोग नहीं !

ये हंसती हुई युवकों की टोली में क्या चर्चाएं हो रही है। अच्छा यहां सिनेमापर बातें हो रहीं हैं ! जरा सुनें तो सही हम पत्रकार ठहरे कुछ मैटर भी मिल सकता है।

भई ! ये शोरगुल क्या हो रहा हैं ? अच्छा तो यह बालो-द्यान है। आखिर बच्चे बच्चे ही होते हैं-शोरगुल तो होगा ही। क्या मजे से झूल रहे हैं बच्चे। वो देख रहे हैं-बच्चे के माता पिता अपने लड़के झूलाने के लिए दुसरे बच्चोंको भगा रहे हैं-आखीर उनका खुद का बच्चा है-क्या वे झूलाने प्रयास करें प्रथमतः। परन्तु कहीं ऐसा न हो कि भगाए हुए बच्चों के माता पिता आ जांए जिससे क्रीडा भूमि रणभूमि में बदल जाने का खतरा है ! खतरे से बचों और आगे बढ़ो।

कहानीकार श्री राजाजी





ले-के. एन. भट

राजतन्त्र प्रवीण श्री राजाजी भारत के महा नायकों में प्रमुख हैं। अपने जीवन के अर्ध शतमान से भी अधिक काल को देश की सेवा में विनियोग किए हुए श्री राजाजी साहित्य क्षेत्र में भी प्रसिद्ध हैं।

"रामायण" महाभारत जैसे संसार के महाग्रन्थों का सुललित अनुवाद मान्य राजाजी ने जो तमिल, और अंग्रेजी में किया है, जिससे उन महाग्रंथों का परिचय आम जनता तक पहुंच सका है। यह भी नहीं मान्य राजाजी ने और भी कई ग्रंथ लिखे हैं। उनकी सामाजिक कहानियां जो हैं उनके दो संकलन "कुब्जा सुन्दरी" और "दुःखी कहानियां" हमारे सामने हैं। ये कहानियां कई भाषाओं में अनुवाद हो चुकी हैं। श्री राजाजी का कथा तंत्र और सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति, ज्यों का त्यों इन कहानियों में दीख पड़ती है। उन कहानियों में जन जीवन के विविध रूप और समस्याओं का चित्रण चित्रित किया गया है। कहानियों के पात्र और चरित्र भी

आदर्श होते हैं। राजाजी की शैली तो द्राक्षा पाक के बराबर होती है। इससे मान्य राजाजी 'कहानीकार राजाजी' बन गये हैं। श्री राजाजी ने, सीता और लक्ष्मण के संवाद रूप में जो एक कहानी लिखी है, उससे श्री राजाजी की कहानी की कला व्यक्त होती है।

—रावण से अपहृत की गयी सीता अशोक वन में शोक करती बैठी है। आँसू बहाती दुष्ट राक्षसियों के बीच में फंसी हुई सीता अनशन रही है। उसने निद्रा का भी त्याग किया है। 'राम राम' कहती श्री राम ध्यान में तलीन हुई वह अभागिनी का दिल पिछली घटनाओं की ओर खींचा जा रहा था। गत कालीन घटनायें एक एक करके उसकी आँखों के सामने उपस्थित होने लगीं। सीता को ऐसा भास होने लगा कि लक्ष्मण खुद उसके सामने आ खड़ा है। और दुःखी होकर यों कह रहा है। "भाभी! उस दिन तुमने मेरे साथ कैसा बर्ताव किया। किस तरह कठोर भाषण किया! भाभी तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिये था।"

पिछली यह घटना इस तरह दृश्य रूप में सामने आती हुई देखकर सीता का दिल दर्द से तड़फ उठा। और वह अपने मन में सोचने लगी कि–'हाय मैंने क्या कर डाला! निर्मल हृदय के देवर को चुभने वालीं बातें कह दीं। इससे उसका मन जो दुःखित हुआ, उसका फल आज मुझे भोगना पड़ा है। मेरे दुष्ट वचनों के पाप के कारण ही रावण ने मेरा अपहार किया है। रावण ने मेरा अपहार करके जो पाप किया

मेरा पाप तो उससे भी बढ़कर है। क्योंकि लक्ष्मण के प्रति मैंने ऐसा बर्ताव किया था।' इस तरह पछताती हुई बेचारी सीता पर निद्रा ने अपना प्रभाव डाल दिया। बस, उसी समय सीता ने एक स्वप्न देखा—

स्वप्न में लक्ष्मण सीता के सामने खड़ा है। उसको देखकर हर्ष पुलकित हुई सीता बोल उठी कि, 'हा! तुम आ गये तुम्हें देखकर अब मेरा कष्ट और दुःख मुझे एक स्वप्न सा लगता है।'

लक्ष्मण—"हाँ भाभी! मैं आ गया! अब तुम दुःखी न बनो! उस दिन तुम्हें पर्ण कुटी में अकेली छोड़कर मैं चला गया। मैंने कसूर किया भाभी! क्या तुम मुझे माफ नहीं करोगी? उस दिन तुमने कैसा छल किया। उस छल के परिणाम से आज यह दुःख भोगना पड़ा है।'

सीता—सच पूछो तो मुझे मालूम नहीं होता कि, उस दिन मुझे क्या हो गया था। लेकिन मुझे अकेली को छोड़कर तुम्हारा निकल जाना क्या यह तुम्हारा कसूर नहीं था? मैंने कुछ तीखी बातें कहकर तुम्हें दुखाया होगा! पर तुमने तुम्हारे भाई के सामने जो प्रतिज्ञा की थी, उसको भूलकर चले जाना, यह तुम्हारा बर्ताव बिलकुल ठीक नहीं था। गुस्से के वक्त मैंने तुम्हें कुछ बुरी बातें भी कहीं होंगी! मगर तुमने प्रतिज्ञा का पालन जो नहीं किया, यह पसन्द नहीं था।'

जब इस तरह संवाद हो रहा था, तब ठीक समय पर नहीं

मालूम नारदजी वहां कहां से आ गये ! "नारदो कलह प्रिया"

इसके अनुसार संदर्भ पर कलह का बीज डालना नारदजी का प्रथम कर्तव्य है न ? स्वप्न में भी इस तरह अनिरीक्षित आगमन होना स्वाभाविक ही होता है।

आते ही नारदजी ने कहा कि, लक्ष्मण की वह कौनसी प्रतिज्ञा है ? उसने कोई प्रतिज्ञा की है ? यह मुझे मालूम ही नहीं ? नारदजी की बात सुनकर सीता आग बबूला तो नहीं हुई पर उसकी ध्वनि तारक स्थायी पर चढ़ी। और वह कहने लगी–'आपने क्या कहा ? क्या लक्ष्मणजी ने प्रतिज्ञा नहीं की थी ? वाह ! नारदजी ! आप जैसे श्रेष्ठ पुरुषों को इस तरह कहना क्या यह भूषण होता है ?' सीताजी वैसी तैसी नारी तो नहीं वह जगन्माता है। उसको नारदजी का भय तो थोड़ा ही है। तब नारदजी ने झट उत्तर दिया–'आपकी इच्छा के अनुसार जब श्रीरामजी उस माया मृग के पीछे चलने लगे तब लक्ष्मण को उन्होंने इतना ही कहा था कि, 'तुम जहां पर खड़े हो, वहीं खड़े रहो ! इसके बाद लक्ष्मणजी का उत्तर सुनने के लिये श्री रामजी वहां मौजूद नहीं थे। इससे स्पष्ट होता है कि, लक्ष्मणजी ने किसी तरह की प्रतिज्ञा नहीं की है।'

यह जिक्र सुनने रामानुज से न हो सका। बोला–मैं वीर योद्धा हूँ। भाई की आज्ञा के मुताबिक जब मैं पर्ण कुटीर के सामने खड़ा रहा, तब वही प्रतिज्ञा के बराबर मान लेना

चाहिये। अब सीता ने भी अपना स्वर मिलाया कि, मेरे स्वामी अपने ये भाई की रक्षा में ही मुझे छोड़ गये थे।'

अब नारदजी ठण्डे पड़ गये। और बोले वाह! आप दोनों मिल जुलकर बातें कर रहे हैं। वैसा ही हो! इससे मुझे क्या होना चाहिये? मैं अभी चला! इतना कहकर वे वहां से आगे बढ़े। इसके बाद सीता ने लक्ष्मण के साथ कहा कि मैंने उस दिन बुरी तरह से बातें की हों, पर इससे तुम्हारा क्या बिगड़ गया है? वचन पालन करने के लिये नगर-वैभव का त्याग करके हमने अरण्य वास, जैसा अपनाया। वैसा ही तुम्हें तुम्हारी प्रतिज्ञा का पालन करना कर्तव्य था।' सीता के ये वाक्य सौमित्री के दिल में चुभ गये तब वह दीन स्वर में कहने लगा कि-भाभी! तुमसे प्रार्थना करता हूँ,-उस दिन पर्ण कुटी में तुमने जो निष्ठुर भाषण किया। 'जिसे सुनकर बरदास्त करना भी, मुश्किल था। फिर उसकी याद दिलाकर मुझे घायल मत करो।'

सीता अपने निश्चय पर दृढ़ रही और बोल उठी कि, चाहे तो सारी दुनियाँ तुम्हें दोषी कहें, या तुम अपकीर्ति के भागी हो जाओगे, पर मैं कहती हूं, कि, उस पर्णशाला में मुझे अकेले में छोड़कर जैसे तुम चल पड़े, यह ठीक नहीं हुआ, न्याय सम्मत भी नहीं हो सकता।

सीता का यह भाषण सुनकर रामानुज ने अपना सिर झुका दिया, और मन ही मन यों विचार करने लगा कि, अगर मैं पर्ण कुटीर में ही रह जाता तो रावण का तंत्र निष्फल

हो जाता था। और यह दुःख भी प्राप्त होने का कारण आज नहीं होता। इतना सोचकर यह विचार लक्ष्मण ने जब सीता के सामने भी कह दिया, तब सीता का हृदय सन्तोष से भर गया।

'जो होना था वह हो गया! अब चिन्ता मत करो भाभी', यह कहते लक्ष्मण सीताजी को सान्त्वना दे रहा है! और सीता स्वयं आनंदित हो रही है'। सीता को खुद ऐसा भास होने लगा। और उसी क्षण सीता का यह स्वप्न टूटकर वह जाग उठी! तब सीताजी आंखें खोलकर देखती है तो वहां क्या है? विकार रूपी राक्षसियां—"उठो-उठो जल्दी उठो! अब महाराजा रावणजी आ रहे हैं। वे ही आपके पतिदेव हैं!' इस तरह चिल्लाती—सीता को जगा रही हैं। कहां वह स्वप्न! कहां वह दुर्दशा!

"सीताजी के अपने स्वप्नकी याद होते २, बहुत पश्चाताप हुआ। उसके दुःख और पश्चाताप की दशा अवर्णनीय थी।" यह कहानीकार राजाजी की कहानी की कला का कुशल तंत्र है। कथाकार मान्य राजाजी, आगे लिखते हैं कि,—'आगे की कहानी सभी को मालूम ही है। सीताजी का स्वप्न सच निकलता है। बुरी बातों से लक्ष्मणजी का दिल सीताजी ने जो दुखाया था, उसके लिये अब सीताजी का कोमल हृदय तड़फ उठता है। पश्चाताप से उसके हृदय में असहनीय पीड़ा पैदा होती है। फिर भी राजा जी कहते हैं, कि—'हमारे दुःख और कष्ट के संदर्भों पर हम पूज्य सीता माताजी के कष्ट और दुःख

की घटनाओं की ओर कुछ ध्यान देंगे तो हमारे कष्ट और दुःख का बोझ कुछ कम होकर हमें सुख मिलेगा। कष्टकाल में हम 'राम राम' कह कर श्री राम का ध्यान करेंगे तो सीताजी के दुःख-निवारक अमरश्रेष्ठ आंजनेयजी हमारे दुःख को भी दूर करेंगे।' इस तरह लिखते मान्य राजाजी अपनी कहानी को पूर्ण करते हैं।

भारत के लोगों की जो परंपरागत धार्मिक इच्छा और सद्भावना है, राजाजी की इस कहानी के जरिये--उज्ज्वल बनी है, और जनता पर सत्प्रेमभाव डालने में यह कहानी समर्थ हुई है। बहुतेक लोगों को रामायण की "सीतापहार" और "मायामृग" की घटना मालूम ही है। पर ऐसी एक सर्वजन परिचित घटना को लेकर श्रीराजाजी ने अपने निरूपण क्रम से जो महत्व दिखाया है, यह राजाजी के कथन तंत्र की शक्ति के लिये एक उत्तम निदर्शन हो सकता है। अपने वृद्धा के इस समय भी, मान्य राजाजी, अपने निवृत जीवन को देश की, जनता की सेवा में व्यतीत कर रहे हैं। इस तरह सदा सेवा करते रहने वाले मान्य राजाजी से जनता को-मार्ग दर्शन मिलता रहे। और मान्य राजाजी को आरोग्य भाग्य प्राप्त होता रहे। यही हमारी शुभ कामना है।

यौगिक और प्राकृतिक चिकित्सा

स्वानुभव


सूर्यस्नान


कटिस्नान


आहार


मत्स्येंद्रासन

मेरी आयु ३५ वर्ष की है। २५ वर्ष की आयुतक मेरा जीवन व्यवहार उत्तम रूप से चलता रहा। बाल्यावस्था से ही मेरा पालन-पोषण अतीव उच्चकोटि के सम्माननीय परिवार में हुआ था। माता-पिता के घर में बड़े ही प्रेम-भाव से मेरा जीवन पनपता पल्लवित होता रहा। आध्यात्मिक जीवन के प्रति मेरी पहले ही अभिरुचि थी और तदनुसार जीवन बीतता रहा। शिक्षा में भी मैंने उच्चकोटि की पदवी प्राप्त कर ली थी गार्हस्थ्य जीवन प्रवेश करने के बाद भी ७ वर्ष तक जीवन में किसी प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना नहीं करना पड़ा। देवपूजन, परोपकार, सहनशीलता, पारिवारिक जनों का आदर सम्मान आदि आचार मेरे जीवन के सहज स्वाभाविक विधान बन गये थे।

ससुराल के घर की बात

एक समय की बात है। मेरे पतिदेव और श्वसुरजी किसी

आवश्यक कार्यवश बम्बई से बाहरगांव गये हुये थे। घरमें केवल मेरी सास और मैं रह गई थी। एक दिन मध्याह्न के समय सास के साथ बाजार में आवश्यक सामान खरीदने गई थी। बाजार घर से ४ मील के अन्तर पर है। सामान खरीदते समय बाजार में हमारे घर के पड़ोसी सज्जन ने बताया कि 'आपके (हमारे) घर में चोर घुस आया था और कुछ सामान चुराकर ले गया। हम लोगों ने उसे पकड़ने के प्रयत्न किये किन्तु वह हाथ नहीं आया, भाग निकला। आपलोग घर पहुँचकर तुरन्त उसकी खोज बीन कीजिये।' यह सुनकर हम दोनों घबरा उठीं और मोटर द्वारा तुरन्त घर पहुँचकर देखा तो द्वार के कपाट खुले पड़े हैं। द्वारपर लगा हुआ ताला भी नहीं है। घरकी यह हालत देखकर हम दोनों मानसिक वेदना भर गईं। हाथ-पैरों के साथ सारा शरीर कांपने लगा और आँखों के सामने अन्धकार छा गया। पड़ोसी ने सारी घटना कह सुनाई। जेवर कपड़ा आदि घरका सारा बहुमूल्य सामान चोर उठा ले गये। पुलिस-थाने में रिपोर्ट लिखा दी। इस घटना से मेरी मानसिक स्थिति पर गहरा प्रभाव गया। उसी दिन से मन विकृत-जैसा रहने लगा और कालान्तर में यह मानसिक रोग मेरे पीछे लग गया।

स्वाभाविक रूढ़ि

जन्तर-मन्तर, भूत-पिशाच, औषधोपचार आदि नाना प्रकारके उपाय करने पर भी इस बीमारी ने मेरा पीछा न छोड़ा बल्कि वह और अधिक बढ़ गई। किसी ने सलाह दी कि सभी सम्भव उपाय करके देख लिये, उनका कुछ भी सुफल

दृष्टिगोचर नहीं हुआ। अब एक प्रयोग और आजमा कर देख लो वह है योगाभ्यास। योगाभ्यास मानसिक विकृति से मुक्त-कर रोगी के मनोबल को बढ़ायेगा। अतः पतिदेव की अनुमति लेकर मैं योगाभ्यास करने लगी और लगातार ६ महिने तक करती रही। मार्गदर्शक (शिक्षक) महोदय मात्र पद्मासन पर आध घण्टे तक नित्य बैठते थे। भ्रमर-गुफा में मन को स्थिर कराके केवल गुरु-मन्त्र का अर्थ सहित जाप कराते थे। ११-दिन तक यह अभ्यास निरन्तर चलता रहा। १२ वें दिन से सिद्धासन पर बैठाकर और नासिकाके अग्रभाग पर दृष्टि को स्थिर एकाग्र कराकर १ मिनट से १५, थोड़ी देर आँखें खोलकर के बादमें आँखें मूंद करके मिनट तक क्रमबद्ध त्राटक कराते थे, इसी समय निर्भय भाव-भूमि रखनेके लिये एक महान् मन्त्र का जप कराते थे, इसके बाद भ्रामरी प्राणायाम ३से ८वार प्रातः काल ३से ८वार सायंकाल कराया जाता था। प्राणायामके लिये सुखासन पर बैठाया जाता था, उस समय मेरे मनकी गति ब्रह्माकार हो जाती थी। इस साधना से कुछ ही कालान्तर में चिन्ता, भय, कम्प, प्रस्वेद, शिरोवेदना आदि की व्याधियां दूर होने लगीं। तदुपरान्त केवल आसन करने पड़ते थे उष्ट्रासन २ मिनट, सुप्त वज्रासन २ मिनट, वीरासन २ मिनट शवासन ८ मिनट। इसके बाद षणमुखी मुद्रा ३ से ७ बार प्रातः सायं करवायी जाती थी। यह सब कार्यक्रम लगभग २॥ महीने चलता रहा और इस बीच में मानसिक व्याधि से पूर्णतया मुक्त हो गई। आगे चलकर फिर कभी यह रोग मुझे पराक्रान्त कर न सके, इसलिये योगाभ्यास का उपर्युक्त कार्यक्रम

६ मासतक चलता रहा। इस योगाभ्यास का शुभाशीर्वाद यह मिला कि अब मेरा जीवन नवनीत के समान शुभ्र और शुद्ध बुद्ध हो गया है। व्यावहारिक नैपुण्य प्राप्ति के साथ ब्रह्माकार वृत्ति–धारणा में पारंगत होकर परमानन्द में मस्त रहती हूँ। मुझे अब भी कुमारावस्था की स्मृति आ जाती है, जब कि सुन्दर, सुकोमल सहेलियों के साथ निष्कपट एवं मुक्त हास्य के आनन्द की अनुभूति करती थी। आज जीवन पहले के ही तरह निखर उठा है और गृहस्थी जीवन का संपूर्ण सुख मुझे प्राप्त है। श्वसुर पक्ष के सभी लोग मुझे अत्यन्त आदर–सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। यदि मैं योगाभ्यास का अवलम्ब नहीं लेती तो आज मेरी कैसी हालत होती यह बताना असम्भव है। मेरी अस्वस्थ स्थिति को देखकर मेरे श्वसुर–गृह के लोग मुझे माता–पिता के घर में छोड़ने का विचार रखते थे। मैं जब योगाश्रम में जाती थी, तब और भी अनेक महिलायें मेरी बीमारी दूर करने के लिये आती थीं। शारीरिक व्याधि के साथ–साथ मानसिक व्याधि भी विद्यमान थी, यह कुछ विशेष महत्वपूर्ण बात थी। अब मैं विश्वास पूर्वक कह सकती हूँ कि मानसिक विकार से मुक्ति पाने के लिये योगाभ्यास एक अप्रतिम उपाय है। वर्तमान काल में देश का सभ्य समाज तेजी के साथ मानसिक बीमारी का शिकार बनता जा रहा है, अतः जो लोग मानसिक रोगों से ग्रस्त उनसे मेरा विनम्र निवेदन है कि वे किसी अनुभवी मार्गदर्शक की देखरेख में योगाभ्यास अवश्य करें। निस्सन्देह उन्हें लाभ होगा।

श्रीमती मुक्तावली के० चेट्टियार,
गोरेगांव (बृहद् बम्बई)

स्वतंत्र्य-संग्राम में भारतीय नारि

ले०—आचार्य श्री पिताम्बर राव तैलंग

विश्व के इतिहास में आज यह बात निर्विवाद रूपेणसिद्ध हो चुकी है कि भारतीय-स्वतंत्रता संग्राम में जिस प्रकार से पुरुष-समाज ने अपना कर्तव्य पालन किया है, उससे कहीं अधिक रूपमें नारी-समाजने इस दिशा में अपना विशेष अधिकार प्रमाणित करते हुए आत्माहुति प्रदान की है।

इसी तथ्य को मूलाधार मानकर आज मैं, उत्तर भारत की उन क्रान्तिकारिणी महिलाओं के पवित्र-चरित्रोंपर, अभिनव प्रकाश डालने का प्रयत्न करूँगा, जो राष्ट्रीय-क्रान्ति के प्रकाश स्तम्भ हैं और जिन्हें वर्तमान इक्कीसवीं शताब्दि के भारतीय-इतिहास लेखक तलाश कर रहे हैं। क्योंकि उनकी अनुपस्थितिमें उनकी राष्ट्रीय क्रान्ति का इतिहास सर्वथा एकांगी बन रहा हैं।

अतएव यहाँ यह कहना सर्वथा उपयुक्त होगा कि विश्व-वंद्य बापू के इंगित पर लोक कवियों की पुनीत वाग्गंगा के निर्मल जल का विधिवत् अंवगाहन करते हुये, मुझे अबतक जिन नारी रत्नों का पवित्र परिचय प्राप्त हुआ है, उनमें निम्न-लिखित नवदुर्गायें प्रमुख हैं

(१) कृष्णाबाई (२) चम्पादेवी (३) श्री शीलादेवी (४)रामा बाई (५) गुमानोबाई (६) नन्ही रानी (७) गुरुआनीजी (८)रानी बाई (९) बड़ी दिवानिन।

इनके सांग्रामिक-कार्यों से यह प्रमाणित होता है कि इनमें सभी एक एक से चढ़ बढ़ कर हैं। क्योंकि इन सब में देश प्रेम की जैसी दिव्य-अग्नि प्रज्वलित हो रही है, वह सर्वथा अनुपम है। और यही कारण है कि इन्होंने भारत वर्ष से और विशेषतया उत्तर भारत से वर्बर विदेशी लुटेरों को निकालने एवं स्वराज्य की स्थापना करने का बीड़ा उठा रखा था। अथच प्रस्तुत उद्देश्य की सम्पूर्ति के हेतु ही इन सब ने अपने अपने कार्यक्षेत्रों का बंटवारा कर लिया था और उनके द्वारा वे अपने संकल्प की सिद्धि में सम्पूर्णरूपणे संलग्न थीं।

देखिये, इस सम्बन्ध में सर्व प्रथम सुप्रसिद्ध लोक-कवि श्री रामधनीजी बताते है कि, श्रीकृष्णाबाईजी ने चिल्लानारा से कानपुर तक अपना एकाधिकार सा कायम कर लिया था और वे अपने इस क्षेत्र में किसी भी विदेशी को पैर नहीं रखने देती थीं और यदि धोके से अथवा जानबूझकर कहीं कोई अंगरेजों का सहायक इनकी सीमा के अन्तर्गत आ जाता

तो वह उसे गिरफ्तार करा लेती थीं, क्योंकि एतदर्थ ही उनके सात हजार फौजी जवान यत्र तत्र सर्वत्र तैनात थे इसके अतिरिक्त इन्होंने अपना यह नियम बना लिया था कि गिरफ्तार शुदा लोगों में यदि कोई अंगरेज फंस गया, तो वह उसका शिर कटा लेती थीं और यदि कोई अंगरेजों का साथी-सहायक व्यक्ति हाथ आगया, तो वह उसे बांध के खूब पिटवातीं थीं और फिर विदेशियों अथच राष्ट्रद्रोहियों का साथ न देने की प्रतिज्ञा कराकर उसे प्राणदान देती हुई, छोड़ देती थीं किंवा अपने ही दल में शामिल कर लेतीं थीं। इसके अतिरिक्त वह अपने क्षेत्र अथवा अन्यक्षेत्र के भारतीयों को जो उनका साथ देते हैं, अथवा उनके साथियों को सहायता पहुँचाते थे उन सबको वह आमतौर पर लाखों की सम्पत्ति बांटती रहतीं थीं। इसके फलस्वरूप इनके कार्य क्षेत्र की समस्त प्रजा सुखी एवं निरापद हो गई थी और इनके संरक्षण में वस्तुतः ग्रामीण स्वराज्य का उपभोग कर रही थी।

प्रस्तुत-स्थिति का दिग्दर्शन अब कवि के मूल शब्दों में करिये। यथा :—

किशना ठाढ़ी जमना ऊपर,
सात सहस जन भूपर।
चिल्ला सें जा कानपूर लौं,
विड़न देत ना ई पर।
काटत शीश फिरंगिन के, वा,
मारत बांध जमीपर।
लाखन बांट रई संगिन खां,

अंगिन मान जिमी धर।
"रामधनी" किशना बाई जू,
कर रईं राज सुभूपर।



—इसी प्रकार से अजयगढ़ के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी एवं जनकवि पं. श्री रेवाराम भट्टाचार्यजी के कथनानुसार भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम की द्वितीय दुर्गा थी अफ्पाबे तेजी थीं। इनका कार्यक्षेत्र चित्रकूट से देहली तक था। आपकी अपनी विशिष्ट कार्य पद्धति थी अतः तदनुसार ही आप अपने दलके साथ जहाँ कहीं जाती थीं वहाँ चुपचाप अपना काम करती थीं। आपका मुख्य कार्य अंगरेजों के तथा उनके साथियोंके हाथ में एकत्रित खजानों को लूटना मात्र था एतदर्थ ही आप अंगरेजों को गिरफ्तार कराकर उनके हथियार हस्तगत करती हुईं, उनसे दंड स्वरूप विशेषद्रव्य ले लेती थीं और फिर प्रायः उन्हें छोड़

भी देती थीं। इसके उपरान्त हस्तगत कोष अथच हथियारोंको ऊँटों पर लदवाकर नाना साहब को दे आती थीं। यथा—

"चम्पादेवी गुपचुप आतीं,
लूट खजानो जाती।
ऊँटन पै भरवाके, वे तो,
नाना को, दै, आतीं।
लेतीं डांट, फिरंगिन-संगिन,
अगिन-खा-पकराती।



छुड़वा लेतीं हैं हथयारिन
सबके घर बिडजानी।
एईतरां सें चित्रकूट सें
दिल्ली लौं धमकातीं।
"रेवाराम" राम को ध्याकें",
देशकाज करवातीं।

अब तृतीय दुर्गा चंद्रघण्टा के रूप में श्री शीलादेवीजी आती हैं। लोककवि श्री गंगासिंहजी के अनुसार आपके दलमें एक हजार महिलायें थीं। आपका निवासस्थान वर्तमान उत्तर-प्रदेश का सुपरिचित "क्रान्तिस्थल" 'बांदा' नगर था। आप अपनी महिला-सेना का प्रयोग विशेष आपत्ति काल में ही किया करती थीं। जैसी कि जनश्रुति भी है कि एक समय अर्द्धरात्रि होने को थी। बांदा नगर के प्रायः समस्त नरनारी सो रहे थे, कि इतने में अंगरेजों की कतिपय टुकड़ियां आगई और उन्होंने अचानक बांदा नगर को घेर लिया साथ ही नागरिकों के घर लूटने लगीं। इसके फलस्वरूप समस्त नगर में हो हल्ला मच गया और जन साधारण येन केन प्रकारेण अपने जान माल के रक्षा में संलग्न हो गये।

उस समय सर्व प्रथम श्रीमती शीलादेवीजी अपने साथ एक हजार हथयारबंद महिलाओं को साथ लेकर नगर के बाहिर आई और लुटेरे अंगरेजों से जूझ पड़ी। दोनों ओर से जम के युद्ध होने लगा। इसके फलस्वरूप दोनों ओर के स्त्री पुरुष वीरगति को प्राप्त होने लगे। इतने में गिरीनामा गुंसाइयों का एक दल विशेष शीलादेवी की सहायता के लिये आगया। जनश्रुति के अनुसार उनमें बांदा के व्यापारी किसान मजदूर एवं धनीमानी आदि सभी नागरिक थे। इन सबने गुसाइयों के नेतृत्व में चतुर्दिक से अंगरेजी-सेना को मारना प्रारंभ कर दिया। फिर भी अंगरेजी सेना के पैर न उखड़े और वे बराबर बढ़ते आये। अथच प्रातः होते होते उन्होंने शीलादेवी को गिरफ्तार करके उनका शिर काट लिया। जिसके फलस्वरूप

बांदा की महिला सेना, नेतृत्व के अभाव में मैदान छोड़कर यत्र तत्र तितर बितर होती हुई भाग गई। साथ ही इससे प्रभावित होकर गुसाइयों का दल एवं उनके सहायक भी मैदान से हट गये। कहा जाता है इसकी सूचना जब बांदा के अन्यतम निवासियों को मिली, तब नगर का पुरुष समाज तो केन नदी के कछारों की ओर चला गया और स्त्री समाज छोटे बच्चों को साथ लेकर देहातों की ओर भाग गया। जैसा कि कहा है—

'बांदा लुटौ रात कैं गुइंयां,
सोउत रहीं चिरैइंयां।
शीलादेवी लरीं दौरि कैं,
सँगमें सहस सिहरियाँ।
अंगरेजन सैं भई लराई,
मारे लोग लुगैइंयां।
गिरी गुसांई तब दौरे हैं,
लरन लगे औ मैं इयां।
शीलादेवी की शिर काटें,
अंगरेजन नें गुइंयां।
भगी लहेली तब गांउन मैं,
लै कैं बाल बुनैइयां।
"गंगासिंह" टेर कैं कै रये,
भगो इलै ना रैइयां।

इनके बाद चौथी थी राधाबाईजी हैं। ये तांत्या टोपे के दल

से सम्बन्धित थीं। इनका क्षेत्र कालींजर आदि बुंदेलखण्डी-पहाड़ी इलाका था श्री गंगाधरजी के मतानुसार किसी दिन रात्रि के समय यह तांत्या टोपे के साथ कालींजर क्षेत्र में आईं जहां अंगरेजी फौजें डेरा डाले पड़ी थीं। उस समय श्री रामा-बाई ने तांत्या टोपे के निर्देशानुसार सोती हुई अंगरेजी-सेना



पर घेरा डालकर उसके प्रमुख आफीसरों को गिरफ्तार कर लिया और फिर 'जनरल' उपाधिधारी किसी सर्वश्रेष्ठ अंगरेज का शिर काटकर कालींजर महादेव के मंदिर के द्वार पर टांग दिया। इसके साथ ही उक्त अंगरेजी सेना को लूट लिया। इसके उपरान्त अंगरेजी फौज ने अपने नित्य भोजन के लिये जो गाय-बैल बछडे आदि पशुसमूह रखा था उनको छुड़वाकर लोगों में वितरित करा दिया। साथ ही क्षेत्रिय जनता की जान माल की रक्षा के लिये अपने दल के कतिपय प्रमुख लोगों को तैनात करके घने जंगलों की ओर चलीं गई। इस स्थिति का वर्णन कवि के शब्दों में सुनिये—

बांदा की महिला सेना, नेतृत्व के अभाव में मैदान छोड़कर यत्र तत्र तितर बितर होती हुई भाग गई। साथ ही इससे प्रभावित होकर गुसाइयों का दल एवं उनके सहायक भी मैदान से हट गये। कहा जाता है इसकी सूचना जब बांदा के अन्यतम निवासियों को मिली, तब नगर का पुरुष समाज तो केन नदी के कदतारों की ओर चला गया और स्त्री समाज छोटे बच्चों को साथ लेकर देहातों की ओर भाग गया। जैसा कि कहा हैं—

'बांदा लुटो रात कैं गुइंयां,
सोउत रहीं चिरैइंयां।
शीलादेवी लरीं दौरि कैं,
सँगमें सहस सिहरियाँ।

अंगरेजन सें भई लराई,
मारे लोग लुगैइंयां।
गिरी गुसांई तब दौरे हैं,
लरन लगे औ मैं इयां।
शीलादेवी की शिर काटें,
अंगरेजन नें गुइंयां।

भगी सहेली तब गांउन में,
लै कैं बाल मुनैइयां।
"गंगासिंह" टेर कें कै रये,
भगी हलै ना रैइयां।

इनके बाद चौथी श्री रमाबाईजी हैं। वे तांत्या टोपे के एक

से सम्बन्धित थीं। इनका क्षेत्र कालींजर आदि बुंदेलखण्डी-पहाड़ी इलाका था श्री गंगाधरजी के मतानुसार किसी दिन रात्रि के समय यह तांत्या टोपे के साथ कालींजर क्षेत्र में आई जहां अंगरेजी फौजें डेरा डाले पड़ी थीं। उस समय श्री रामाबाई ने तांत्या टोपे के निर्देशानुसार सोती हुई अंगरेजी-सेना



पर घेरा डालकर उसके प्रमुख आफीसरों को गिरफ्तार कर लिया और फिर 'जनरल' उपाधिधारी किसी सर्वश्रेष्ठ अंगरेज का शिर काटकर कालींजर महादेव के मंदिर के द्वार पर टांग दिया। इसके साथ ही उक्त अंगरेजी सेना को लूट लिया। इसके उपरान्त अंगरेजी फौज ने अपने नित्य भोजन के लिये जो गाय-बैल बछड़े आदि पशुसमूह रखा था उनको छुड़वाकर लोगों में वितरित करा दिया। साथ ही क्षेत्रिय जनता की जान माल की रक्षा के लिये अपने दल के कतिपय प्रमुख लोगों को तैनात करके घने जंगलों की ओर चलीं गईं। इस स्थिति का वर्णन कवि के शब्दों में सुनिये—

'रातै तांत्या के संग आंई,
रमतीं रामा बाई ।
पैलां उनने पकर लये हैं,
फौज फिरंगिन सांई ॥
फेर काट जनरल के सिर खां,
कालींजर चढ़ वाई ।
भोर होन ही लूट मचा के,
बचा लई ठकुराई ।
'गंगाधर' गौयें घुड़वा कें,
चलीं गई डंग हाई ।

प्रस्तुत क्रांति कारिणी 'महिलाओं में पांचवें नम्बर पर आती हैं श्री गुमानो बाई जी। इनका कार्य क्षेत्र कटनी से सागर तक था। इनके साथ एक प्रचण्ड दल था। यह अपने कार्य क्षेत्र में जहां कहीं अंग्रेजों की उपस्थिति सुनतीं थीं वहीं आप यथा शीघ्र पहुंच जातीं थीं। पं. रेवारामजी अजयगढ़स्थ के मतानुसार किसी समय आपके प्रमुख क्षेत्र में ही अंगरेजों की अनेक फौजी टुकड़ियां सहसा आ पहुंची और चतुर्दिक से जनता को परेशान करने लगीं। उस समय आपने शीघ्र तथा अपने दल को कई विभागों में विभाजित कर दिया और फिर उसके द्वारा दुश्मनों का सफाया करने लगीं। इसके उपरान्त उन्होंने अंगरेजों को सहायता पहुंचाने वाले अनेक भारजीयों को लूटा मारा तथा गिरफ्तार किया और फिर आप स्वयं किसी अज्ञान दिशा की ओर चलीं गई। यथा—

देखौ, वाई गुमानो आगई,
फौज फिरंगिन खा गई।

जोर जवर से रोक लई है,
जितनी संगन पागई।

उननें नौ लूटौ है सवरौ,
खूब-खजानौ-धा गई।

कटनीसें सागर लौं, वे तौ,
अपनौ मतौ वता गई।

'रेवाराम' रामरवा धरा कें,
वैरिन चिता बना गई।

इनके बाद श्रीमती नन्ही रानी र० जिगनी का नाम आता है। आप राजवंश की थीं। जिगनी राजवंश बुन्देल खण्ड केशरी महाराजा छत्रशाल की वंश परम्परा में सुप्रसिद्ध है। क्यों कि राष्ट्रीय संकट के समय जब जब जनता ने स्वातंत्र्य प्रेमियों को आमंत्रित किया था तब २ जिगनी राज कुल के स्त्री पुरुषों ने समान रूपसे बर्बर विदेशियों से लोहा लेकर अपने उत्कट देश प्रेम का परिचय प्रदान किया था। और यही कारण है कि जब अंग्रेजों ने झांसी पर आक्रमण प्रारंभ कर दिया तब उसके विरोध में श्रीमती नन्ही रानी साहिबा ने भी स्वातंत्र्यशंख ध्वनि शुरू कर दी। और जिगनी से ग्वालियर तथा ग्वालियर से आगरे तक के क्षेत्र में अंगरेजों को पैर टिकाना मुश्किल करने लगीं।

अंग्रेजों को ज्ञात हो गया कि भारतीय नारी भारतीय वीरों से किसी भी प्रकार पीछे न रहनेवाली है। हमें अपने कुचक्र को ऐसी नींव पर खड़ा करना चाहिये कि हम अपने कदम टिकाने में सफलता प्राप्त कर सकें। ऐसी धारणा बंध जाने पर अंग्रेजों ने विशेष सतर्कता बर्तनी शुरू कर दी।

प्रमाणित होता है कि आप वीरवर तांत्या टोपे की सहायिका थीं। और यही कारण है कि आप जिगनी से आगरे तक के विस्तृत क्षेत्र में दुष्टेरे अंगरेजों को लूट कर जितना भी द्रव्य तथा अस्त्र-शस्त्र एकत्रित करतीं थीं, वह सब तांत्या टोपे के पास पहुँचा देती थी इसी को लक्ष्य कर तत्कालीन कतिपय इतिहास लेखकों ने झांसी, बांदा, अजयगढ़ और कानपुर की तरह जिगनी को भी भारतीय-क्रांति का स्थल विशेष उल्लखित किया है। अस्तु आइये, अब कविवर श्री बघोदास जी के शब्दों में उपरोक्त स्थिति का दर्शन करें।

यथा— नन्ही रानी ऊद्यम करतीं,
'जिगनी' में धन भरतीं।
संग में ज्वान सात सौ लै कें,

फौज फिरंगिन लरतीं॥
लूट खजानो छिड़ा हत्यारन,
मंदिर डेरा करतीं।
पूजा करती राम सुमरतीं
तांत्या सौ मिल चलतीं।

आग आगरे देतीं वे तो,
गढ़ ग्वालियर घरतीं।
'उधौदास' एई रीती से,
प्रीती देश सुकरतीं।

इनके बाद श्री गुरुआनीजी नाम से विख्यात एक महिला रत्न की चर्चा श्रीरेवारामजी उपस्थित करते हैं। निम्नलिखित छंद से प्रमाणित होता है कि आप नाना साहब के दल की सदस्या थीं और आप का कार्य क्षेत्र जमुना से चम्बल नदी तक था। आपके साथ प्रायः तेरह सौ घुड़सवार जवान रहते थे। कवि के मतानुसार एक समय आपके कार्य-क्षेत्र में अंग्रेजों ने हठात् प्रवेश कर स्थान विशेषपर घेरा डाल दिया और फिर जनसाधारण को लूटने लगे। इसकी सूचना पाते ही आप अपनी अश्वारोहिणी चमू को साथ में लेकर आगईं। और दुश्मनों को मारने लगीं। ऐतिह्य है कि आपकी मार से अंगरेजों के पैर उखड़ गये साथ ही वे सब वहां से हट गये। इसके बाद आपने नाना साहब को आमंत्रित किया। तदनुसार वे यथा शीघ्र आ गये और उन्होंने आपके सहयोग से अपने

छटे हुये एक हजार तरुण सैनिकों के द्वारा उक्त स्थान को अपने संरक्षण में ले लिया। यथाः—

जानी गुरु आनी के डेरा रे,
परे संग वर जोरा रे।

जमुना सें चम्बल लौं प्यारे,
कर लऔ खूब निवेरा रे।
फौज फिरंगी मार भगा दई,
नाना खाँ फिर टेरा रे।

नाना सहल सिपाही लेकें,
आगऔ होत सवेरा रे।
"रेवाराम" राम रंक ध्याके,
कर लऔ देश उबेरा रे।

इसी रीति से पं. दादूराम जी 'रानीबाई' नामकी एक अन्य महिला को प्रस्तुत करते हैं। आप श्री रामोपासिका थी। आपके साथ घुड़सवार महाराष्ट्र सैनिक थे। आपका क्षेत्र बिठूर से प्रयाग तक था कवि के मतानुसार किसी समय आप अपने कार्यक्षेत्र में कहीं डेरा डाले पड़ीं थीं। इतने में अँग्रेजोंका एक विशालदल सहसा वहां आ गया। और उसने 'रानीबाई को घेर लिया। इसके फलस्वरूप सात दिन तक दोनों ओर से एक जोरदार युद्ध हुआ और आठवें दिन रात्रि होते 'रानीबाई' को अंगरेजों ने गिरफ्तार कर लिया। बाद में उनका शिर भी काट लिया। आपके बलिदान के उपरान्त अंगरेजी फौज ने गा-नाचकर एक विशेष उत्सव मनाया। जैसा कि कहा है:—



धो खौ दैकें आयो फिरंगी;
करकें मौत उमंगी।
छैंक लई हैं रानीबाई,
मार मरहटन चंगी।
रानीबाई चढ़ घोरे पै,
लरीं सात दिन अंगी।
रात होत भागे रे संगी,
रानी घिरी अचंगी।
जनरल ने शिर काट लओ रे,
नाचे खूब फिरंगी।
फेर मचौ रे है विठूर सें,
प्राग राज लौ रंगी।
'दादूराम' राम को ध्यालो,
भओ देश बधरंगी।

इसके उपरान्त 'लालबिहारी' नामक एक प्रसिद्ध लोक कवि 'बड़ी दिवानिन' की चर्चा करते हैं। आपके मतानुसार 'बड़ी दिवानिन' तांत्या टोपे के दल में सम्मिलित थीं।

ऐतिह्य है कि किसी समय तांत्या टोपे ने किसी स्थान विशेष पर उत्तर भारत के क्रान्तिकारियों की एक विशाल मीटिंग की, तब उसमें 'बड़ी दिवानिन' को भी आमंत्रित किया। तत्पश्चात् उपस्थित जनसमूह को तांत्या ने भारत की तत्कालीन राजनैतिक अथच सामरिक परिस्थिति समझाते हुये सबको संगठित रूपसे कार्य करने का महत्व बताया। और सर्व सम्मति से देशोद्धार की एक नवीन योजना स्वीकृत की। साथ ही तदनुसार सभी को समुचित कार्यभार देते हुये विभिन्न स्थान पर नियुक्त कर दिया उनमें 'बड़ी दिवानिनजू' को झांसी और वेलाताल के बीच का क्षेत्र दिया गया। जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया और वे अपने क्षेत्र में कार्य करने को चल दीं। आपके साथ ग्यारह सौ घुड़सवार सैनिक थे। कहते हैं कि थोड़े ही दिनों में आपने अपने सहायकों के द्वारा अपने क्षेत्र से विदेशी प्रभाव को समाप्त प्रायः सा कर दिया और इसी सिलसिले में लूट का जो सामान हस्तगत हुआ उसे तांत्या की सेवा में समर्पित कर दिया। अथच क्षेत्रीय प्रजा में एक अभूतपूर्व राजनैतिक जागृति उत्पन्न करके उनका एक सुदृढ़ संगठन भी बना दिया। यथाः—

न्यौतौ बड़ी दिवानिन पायौ, तांत्या ने पठवायौ।
समारोप बातें समुझाकें, तांत्या थिती बतायौ।

समझा-बुझा संग सब लीन्हौ, दीन्हौ प्रेम जगायौ।
ग्यारा सौ असवार संग लै, करन लगी उत्पायौ।
झांसी बेलाताल बीच में, रहो न कोऊ भायौ।
मार फिरंगी संगी लूटत, भेजत तांत्या धायौ।
'लाल बिहारी' उद्यम मचरओ,
देश अब जग पायौ।

उपरिलिखित वस्तु स्थिति के अनुशीलन से यह तो स्पष्ट होता जाता है कि 'भारतीय-स्वतन्त्रता-आन्दोलन' में उत्तर भारत की अथच विशेषतया बुन्देलखण्ड की वीर महिलाओं ने सक्रिय भाग लिया था, जिसका समुचित उल्लेख करना विदेशी इतिहासकारों की नीति के विरुद्ध था।

अतएव इस समय जब कि स्वतन्त्रता आन्दोलन का क्रान्तिकारी इतिहास लिखा जा रहा है, यह अपेक्षित है कि लोक कवियों की अम -वाणी द्वारा भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम के जो प्रज्वलित तत्व प्रहित किये गये हैं, उन्हें अखिल-भारतीय स्तर पर लिपिबद्ध कराया जाय। साथ ही उनकी समीक्षा करते हुये उनके आधार पर राष्ट्र का एक विशुद्ध इतिहास तैयार कराया जाय।

आशा है स्वतन्त्रता प्रेमी विद्वज्जन प्रस्तुत 'स्वातंत्र्य-इतिहास-यज्ञ' को सफल बनाने के लिये इस ओर ध्यान देंगे।



卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐

ज्योतिर्मय पर्व दीपमालिका

ले०—जयमूर्तिसिंह एम. ए., बी. एड.

दीपावली हिन्दुओं का एक उल्लास एवं प्रकाश का उत्सव है। इस उत्सव के अवसर पर भारत की झोपड़ी से बड़ी बड़ी अट्टालिकाएँ तक दीपोंसे जगमगा उठती हैं। दीपोंकी पंक्तियाँ लगा दी जाती हैं और सारे भवन दीप शिखा से लह लहा उठते हैं। चारों ओर प्रकाश का एक मनमोहक संसार दिखाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है ये जगमगाते दीप तारावलिओं को ललचाते हों, उनकी झिलमिलाहट पर कोसते हों और परवानों की शक्ति पर नाज करते हों। इस दिन का दृश्य देखकर एक शुष्क-हृदय वाला व्यक्ति भी प्रसन्नता से झूम उठता है। उसके मन में आशा के सुमन खिल उठते हैं। वे गलियाँ जो वर्ष भर दीप विहीन रहती हैं जहा मायूसी और मनहूसी टपकती रहती, वह भी दीप-नजरों से संवार दी जाती हैं। उनका आज भाग्य उदय होता है। दीप मालिका का यह संदेश वर्ष में केवल एक बार आता है और आता है तो अपना संदेश इस रूप में प्रदर्शित करता है कि उसे हम भूल नहीं

पाते। दीप मनुष्य को प्रवुद्ध शुद्ध भारती बनने का मौन निमंत्रण देते हैं।

जिस प्रकार हवा के झकोरों को सहकर भी दीप जलने का दम भरता रहता है और तम के विनाश में ही निरन्तर रत है उसी प्रकार मनुष्य को भी संघर्ष करते हुए सदैव प्रकाश देने का प्रयत्न करना चाहिए। यही है दीपमालिकाका चिरस्मरणीय संदेश।

इन दीपोत्सव में लक्ष्मी की पूजा विधिवत् की जाती है। लोग इस दिन लक्ष्मी से यही कामना करते हैं कि उनके घर में कंचन की वर्षा होती तो क्या ही अच्छा होता! व्यापारी लोग दीपोत्सव इसी कामना से बहुत निराले रूप में मनाते हैं।

दीपावली भारत का अति प्राचीन त्यौहार है। इसके संबंध में कई कथाएँ प्रचलित हैं। लोगों की यह धारणा है कि यह उत्सव विष्णु की अर्धांगिनी लक्ष्मी की याद में मनाया जाता है। इसी दिन लक्ष्मी का विवाह विष्णु भगवान से सम्पन्न हुआ था जिस दिन से लक्ष्मी विष्णु के घर पर पधारी उसी दिनसे उनका घर धन-धान्य से सम्पन्न हो गया और दरिद्रता कोसों दूर भाग गई। व्यापारी लोग दीपावली को धन की देवी के रूप में मानकर ही पूजा करते हैं।

दीपावली पूजन के सम्बन्ध में एक दूसरी लोकोक्ति है। इसी दिन मर्यादा पुरुषोत्तम राम का अयोध्या में पुनः राज्याभिषेक हुआ। वे लंका के दुराचारी राजा रावण को परास्त

कर अयोध्या में आये। उनके आने पर लोगों ने, विजय के उपलक्ष्य में घर घर दीप जलाकर उनका स्वागत किया। सारी अयोध्या खुशी से उमड़ पड़ी। दीपों का संसार बस गया। तभी से दीपावली एक प्रसिद्ध पर्व के रूप में परिणत हो गई। लोगों का विश्वास है कि दीपावली विजय का प्रतीक है। आदर्श ने इस दिन अत्याचार को पछाड़ा। इस विजय ने दीपोत्सव का जन्म दिया।

इसके सम्बन्ध में यह भी एक कथा प्रसिद्ध है कि इस दिन राजा विक्रमादित्य ने देश का शासनसूत्र अपने हाथ में लिया। राजमुकुट स्वयं अपने हाथ से पहना और अपने सम्पूर्ण कार्यों का प्रारम्भ इसी पर्व के दिन से किया। वर्ष का यह नया दिन घोषित किया गया। कालान्तर में यही दिन लेन-देन, और हिसाब-किताब के लिये उत्तम माना गया इसीलिए अधिकांश व्यापारी लोग अपने हिसाब-किताब को इसी दिन से शुरू करते हैं। पुराना हिसाब बेबाक करा लेते हैं। लेखपाल, बनिया लोग लेखा-जोखा की पुस्तिका की पूजा करते हैं। दीपावली के सम्बन्ध में एक और लोककथा प्रचलित है वह है नरकासुर दानव का बध। नरकासुर इतना आततायी और नीच हो गया था कि उससे सभी देवता और जनता दोनों ऊब गये थे। वह हर काम में विघ्न डालता था। लोगों ने भगवान् विष्णु से बड़ी विनती की। उन्होंने आश्विन चतुर्दशी के दिन उसका बध कर डाला। जनता को राहत मिली। उस विजयके अवसर पर लोगोंने स्वादिष्ट भोजन

किया। नये नये कपड़े पहनकर तेल-फुलेल से अपना शरीर संवारकर, आनन्द मनाया। प्रसन्नता दिल ही तक नहीं रही बल्कि चिराग की लौ में परिणत हो गयी। कालान्तर में यही पर्व के रूप में मनाई जाने लगी। लोग इसे "चतुर्दशी" के नाम से भी जानते हैं।

दीपावली का त्यौहार पहले दीपावली के नाम से प्रचलित नहीं था। इसें यक्ष-रात्रि पर्व के नाम से जानते थे। 'यक्ष रात्री' शब्द ने ही बाद में दीपावली का स्थान ले लिया। यक्ष-रात्रि का उत्सव असुरों एवं यक्षों के स्वागत में मनाया जाता था। इस उत्सव में लोग खूब नाचते, गाते और जूआ खेलते थे। परन्तु आगे चलकर देखा गया कि असुर कुमार्गी निकल गये और जनतापर अनेक रूप से अत्याचार करने लगे। उनका चारित्रिक पतन होने लगा। ऐसी परिस्थिति में लोगों ने इस पर्व का सम्बन्ध अन्य देवी-देवता से जोड़ दिया लक्ष्मी की पूजा लोग करने लगे। लक्ष्मी का सम्बन्ध असुरों के साथ भी था। परन्तु लक्ष्मी ने देखा कि राक्षस व्यभिचार के मार्ग पर चलने लगे। तब उनसे सम्बन्ध विच्छेदकर लिया, लक्ष्मी चंचला है। वह महामाता के रूप में है। नाथ और अनाथ दोनों की माँ है। जो परिश्रमी, पराक्रमी और विजेता हैं उन्हीं के साथ लक्ष्मी रहती है। वह इन्द्र के साथ भी थीं। जो कुछ भी हो लक्ष्मी-पूजन प्राचीन समयसे चला आ रहा है। खुदाई करने पर जो मूर्तियाँ लक्ष्मी की मिली हैं वे बहुत ही आकर्षक हैं। चार हस्तों से सुशोभित, कमल पुष्प पर आसन

लगाये इसका दिव्य रूप अनोखी शक्ति पैदा करता है। दोनों हाथों में कमल-पुष्प, एक हाथ में हार और दूसरे हाथ से आशीर्वाद देने की मुद्रा अति ही ग्राह्य है। प्रत्येक अंग से हमें एक शुभ संदेश मिलता है।

प्रसिद्ध इतिहासकार अब्दुल रहमान लिखता है—ग्यारहवीं शताब्दी में हिन्दुओं के घर दीपावली बड़े धूम-धाम से मनाई जाती रही। महिलाएँ दीप से इतनी मोहित हो जाती थीं कि दीप से आंख स्पर्श करा कर तब पूजा करती थीं। उनका विश्वास था कि दीपक सुख-शान्ति का परिचायक है और दरिद्रता का दुश्मन। भारत के प्राचीन राजा और सेठ इसमें दान पुण्य भी करते थे। विभिन्न धर्मावलम्बी भी दीपमालिका के उत्सव की महत्ता को मानते हैं। जैन धर्मवाले इसको मनाते रहे। जैन धर्म के अनुसार इस पर्व की उत्पत्ति उस समय हुई जब महावीर निर्वाण कर गये। लोगोंने कहा-अब ज्ञान ज्योति बुझ गई अस्तु नवीन ज्योति जगाने के लिये दीपोत्सव रचा गया। जैन व्यापारी इसी तथ्य को लेकर मनाते हैं।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में दीपावली मनाने की परम्पराएं प्राचीन एवं तर्क संगत हैं। इस उत्सव मनाने की तैयारी कई दिन पहले ही से शुरू हो जाती है। घर का कोना कोना साफ कर दिया जाता है। जितना हो सकता है लोग सफाईकरने पर जुट जाते हैं। दीपावली के आने की प्रतीक्षा लोग बड़ी उत्सुकता से करते हैं। तुलसी के पौधे के नीचे दीप जलाकर उसके आने की कामना करते हैं। दीपोत्सव आने के एक दिन पहले ही

सायंकाल को लोग "यम-दीप" निकालते हैं। इस दीप को लोग धूर पर रखते हैं और गन्दगी से लोग विदाई लेते हैं। यह यम-दीप पुराने दीप से ही जलाया जाता है। दूसरी परम्परा 'दरिद्रता' भगाने की है। इस दिन गाँवकी बूढ़ी औरतें बड़े सबेरे उठकर 'दरिद्रता' को भगाती हैं। एक हाथमें लुक ले कर दूसरे हाथ में पुराने सूप लेकर घर का चक्कर करती हैं। जब वह दरिद्रता भगाती हैं तब अपने मुँह से कहती हैं कि "दरिद्रता महाराज भाग जाओ। लक्ष्मी महारानी आ जाओ।" इस के बाद वे मुख्यद्वार से उसी पुराने सूप को लेकर ढिंढोरा के रूप में पीटती हुई गाँव के बाहर चली जाती हैं और वह सूप गढ़ही या तालाब के किनारे फेंक दिया जाता है और बाद में लोग उसे जला देते हैं। इसके बाद महिलाएँ स्नान करके घर में प्रवेश करती हैं। इस प्रथा के पीछे यही उद्देश्य है कि दीपावली आने के पहले घर की गरीबी, गन्दगी और अप्रिय चीजों को निकालकर गाँव से बाहरकर दो। तभी लक्ष्मीदेवी का पवरा घर में घुसता है।

दीपावली के दिन क्या पूछना लोग मौज के सागर में डूबते उतराते नजर आते हैं। गौशाला चरन, ईनार, खेतबारी मन्दिर, आदि सभी स्थानों पर दीपों की पंक्ति बैठा दी जाती है। बच्चे टोली बनाकर बुझे हुए दीपों को इकट्ठा करते हैं। जो लड़का जितना ही अधिक दीपक एकत्रित कर लेता है वह बधाई का पात्र बनता है और उसके दिन अच्छे माने जाते हैं। कई जगहों पर बालक चुपके से दीपक उठा ले जाते हैं

और बूढ़ों को परेशान करते हैं। इस प्रकार से बालक खूब आनन्द लूटते हैं और उस दिन बड़ी देरतक जागते हैं। उस दिन कुछ पढ़ने-लिखने पर विशेष ध्यान देते हैं क्योंकि विद्यार्थी की दुनिया सरस्वती के आशीर्वाद पर चलती है। बड़े-बड़े लोग जलते हुए दीप से थाल सजाकर मन्दिर, नदी और जलाशयों की ओर बढ़ते हैं और उन्हें सजाते हैं।

गाँव की अपेक्षा शहर में चिराग कम जलते हैं। इन का स्थान बिजली के बल्बों ने ले लिया है। पर जो स्वाभाविक शीतलता और प्रसन्नता एक झिलमिलाती दीप-शिखा से मिलती है वह गुण कहाँ बिजली के चपल बल्वों में? ठीक भी है, दीप-दीप ही है, जो बांकी-झांकी दीपों में है वह और चीजों में नहीं। इसलिए गांव में दीप से लोग आज भी नाता जोड़े हुए हैं। वास्तव में दीपमालिका भारत का एक राष्ट्रीय पर्व है। इसे राष्ट्रीय रूप पर मनाना चाहिए क्योंकि चिर काल से हम कहते आये हैं।—असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय।





[इस लेख के लेखक श्री विश्वम्भरदत्त नौटियाल जी ने दीपावली के विषय में अनेक शास्त्रों का आधार एवम् विधि विधान के आधार रूप से लेख के महत्व को बढ़ा दिया है, सर्वसाधारण जन समाज की उन्नति के अनेक आधार सूलों में दीपावली पर्व भी जीवन स्तर को उच्चगति में ले जाने वाला पर्व है। पर्वों के दिनों में मनाई जाने वाली कई विधियां प्रशंसनीय हैं, और कई विधियां जीवन स्तर को अधोगति में ले जाने वाली हैं। उदाहरणत: हमें सभी प्रान्तों की विधियां अवगत नहीं हैं, किन्तु गुजरात, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश के अमुक वर्गों में दीपावली के दिन जुआ खेलने की पद्धति परम्परा से चली आती रीति अनुसार वर्तमानकाल में यह प्रथा चली आ रही है, और इस लेख के लेखक महाशय के कथनानुसार पर्व के समय में भी जुआ खेलने की प्रथा थी, रूढी वद्ध धर्मावलंबी लोग वर्तमान समय में भी जुआ खेलते होंगे ऐसा अनुमान होता है।

जुआ, गांजा, भांग, मदिरा और अन्य मादक पदार्थ एवम् अनर्थकारी दुर्गुणों को हम अंध श्रद्धावाले, शास्त्र का आधार और भगवान् का आदेश मानकर, भारत में वर्तमानकाल में भी हजारों नहीं लाखों स्त्री पुरुष हैं। धर्म का आधार एवम् भगवान् के नाम से यह रूढ़ि स्वयं के जीवन को अधोगति में बहा रही है।

पर्वों के दिनों में भगवान् का भजन, सत्संग, उपवास, अथवा शुद्ध सात्विक भोजन, सद्गुरु के पास जाकर आत्म-दर्शन के विषय में उपदेश, धारणा, ध्यान, पूजा और पर्व के जो शुद्ध और सात्विक विधि-विधान हों ऐसे नियमों का पालन करना चाहिये। अतएव अपवित्र जीवन से मुक्त होकर पवित्र जीवन में प्रवेश करने की श्रेष्ठ संधी जो कि पर्वों के दिनों में होती है, उन पर्वों का लाभ प्राप्त करने को अपने परिवार एवम् समाज को दुर्गति के बदले सद्गति में ले जाने का प्रयास करना चाहिये। फटाके को फोड़ना, नाच-गायन में मस्त रहना, अनीतिप्रय कर्म करना यह वर्जनीय है, और अत्यन्त निन्दनीय है, फटाके आदि अनेक प्रकार के व्यर्थ व्यय की धन राशि को, सत्पात्रों को देखकर दान करना चाहिये फलस्वरूप पुण्य मिलेगा अपने बालकों को यह पता नहीं है, कि फटाकों में खर्च होनेवाली धनराशि से वायुमंडल अशुद्ध बनकर रोग का उद्भव होता है और प्राणहानि तक भी पहुँचाती है। —संपादक]

भारतीय जनमानस के जन जीवन में त्यौहारों का प्रमुख

स्थान है, वे एक ओर किसी काल विशेष की जनरुचि का द्योतन व सांस्कृतिक परंपरा का उद्घोष करते हैं तो दूसरी ओर लोक रुचिपरिष्कार की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं, दीपावली अर्थात् दीपों की पंक्ति भी भारतीय सांस्कृतिक परंपरा, आनन्दोल्लास, जीवन-दर्शन एवं मानवीय मनोवृत्तियों का संस्मरण हमें दिलाती है, यह राष्ट्रीय त्यौहार उत्तर से सुदूर दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक प्रत्येक भारतीय इस त्यौहार को नई उमंग, नये उल्लास और एक विशेष रागात्मक दृष्टि से मनाता है-भारतीयता का सही प्रतिनिधित्व करता है, इस दिन हर भारतीय एक आत्मीयता और निजत्व का अनुभव करता है। वसुधैवकुटुम्बकम् की कहावत इस पुनीत पर्व पर हर भारतीय चरितार्थ करना अपना नैतिक एवं मानवोचित कर्तव्य समझता है

आनन्द, प्रकाश, उमंग समरसता का यह प्रकाशमान पर्व जीवन की विभीषिकाओं में समरसता लाने का प्रयास करता है। जीवन की विभिन्नता में अभिन्नता असामंजस्य में सामंजस्य, अनेकता में एकता, अंधकार में प्रकाश, अज्ञान में ज्ञान, व्यष्टि में समष्टि और अकर्मण्यता में कर्मण्यता का उद्बोधन यह त्यौहार लाता है।

कृष्ण जन्माष्टमी या होली आदि अन्य त्यौहारों की तरह इस त्यौहार का सम्बन्ध एक दिन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह त्यौहार लगातार पांच दिन तक पूरी सज-धज एवं आनन्द उल्लास सहित मनाया जाता है एवं चार-पांच दिनों के विभिन्न कार्य-कर्मों के अनुसार इनके नामों में भी परिवर्तन

होता जाता है। इनके नाम क्रमशः धनतेरस, नरक चतुर्दशी, लक्ष्मी पूजन, गोवर्धन पूजा और भैयादूज की शृंखला में आते हैं। इन प्रत्येक नामों के पीछे अनेकों घटनाओं एवं जनमानस में प्रचलित किंवदंतियों का इतिहास है यद्यपि मराठी भाषा में लिखित 'आर्यांच्या सणाचा इतिहास' नामक पुस्तक जिसमें हिन्दू पर्वों का उल्लेख है दीपावली महोत्सव में धनत्रयोदशी, नरक चतुर्दशी, लक्ष्मी पूजन को ही विशेष महत्व प्राप्त है, इस पर्व को लेखक ने उन पर्वों में रखा है जो ऋतुओं के आगमन की सूचना देते हैं।

जहां तक दीपावली के उद्भव का प्रश्न है यह अभी तक अन्वेषण का विषय है, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि अमुक दिन या प्रसंग से दीपावली का मूलभूत सम्बन्ध है। तथापि अनेकों पौराणिक किंवदंतियां भी इस त्यौहार से संबंधित हैं जो विभिन्न प्रसंग जनरुचि एवं सांस्कृतिक परंपरा का उद्घोष करती हैं, इनमें से विष्णु के कछवा बनने, उसकी सहायता से समुद्र मन्थन करने, कमला का समुद्र से बाहर निकलना एवं विष्णु और कमला (श्री लक्ष्मी) के संयोग की कथा, राम की रावण (आर्य संस्कृति की अनार्य संस्कृति पर विजय) पर विजय एवं अयोध्या वासियों द्वारा इस उपलक्ष में आनन्दित होकर दीपमालिकाएं जलाकर मर्यादा पुरुषोत्तम राम के स्वागत की कथा, कृष्ण के दैत्य नरकासुर को पराजित करने की कथा, बर्द्धमान महावीरके निर्वाण की कथा, गुप्त वंशीय राजा विक्रमादित्य का इसी आश्विन मास को सिंहासनारूढ़ होना और उसी दिन से अपना संवत् चलाना,

ऋतु परिवर्तन, आदि प्रमुख हैं।

मूलकारण जो भी हो किन्तु यह तो निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि दीप को प्रकाश का कारण मानते हुये दीपावली के उद्भव का कारण आदि मानव की अन्धकार पर विजय तथा प्रेतात्माओं को भगाने की आकांक्षा तो रही ही होगी, क्योंकि दीपावलीकी कालरात्रिको यह अंधकार पर हावी हो जाते हैं। इस मान्यता का आधार राजस्थान, काठियावाड़ तथा अन्य आदिवासियों में पाया जा सकता है ये जातियां रातभर जीवित प्राणियों के निवास स्थानों पर प्रेतात्माओं के दूषित और अपवित्र प्रभाव से बचाने के लिये मिट्टी के छोटे छोटे दीप प्रज्वलित करते हैं। तथा प्रेत-विद्या में सिद्धहस्त और तंत्रसाधक दीपावली की रात्रि को-जिसे महारात्रि माना गया है-श्मशानों में जाकर अपने चमत्कारों की साधना करते हैं। पशु-बलि द्वारा महाकाली को सन्तुष्टकर अपने तंत्र-सिद्धि की कामना करते हैं, दूसरी ओर इस ऋतु में प्रकृति अपनी सात्विक अवस्था को प्राप्त हो जाती है। वर्षा समाप्त होने पर वणिक, राजा, किसान आदि अपनी श्री वृद्धि में संलग्न हो जाते हैं, अतः यदि यह पर्व मानव के इस आनन्द का द्योतन करता हो तो अत्युक्ति भी क्या है।

जहां तक दीपावली की ऐतिहासिकता का प्रश्न है वेद तो इस विषय पर मौन हैं किन्तु महाभारत ही वह प्राचीनतम ग्रंथ है जिसमें संभवतः सर्वप्रथम दीपमाला का स्पष्ट उल्लेख है, अनुशासन पर्व का यह श्लोक द्रष्टव्य है-

दीपहर्ता भवेदन्ध: तमोगतिः असप्रभ:
दीपप्रदः स्वर्गलोके दीपमालैवराजते।

गीता के दीप संबंधी श्लोकों से मिलान करने पर यह सिद्ध हो जाता है कि ५-२६ शताब्दी पूर्व अन्धकार का भेदन करने के लिये अनेकों दीप सजाने की परिपाटी थी, वाल्मीकि रामायण में भी दीपावली के सम्बन्ध में स्नेह पूरित दीप का वर्णन है:—

तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्च त्रिदव,
दीप्ता दीपाभ्यां सार्चिष स्नेह बिन्दवः।

इस उल्लेख से यह स्पष्ट है कि जब मर्यादापुरुषोत्तम, रामचन्द्र रावण का वध करके, १४ वर्ष पश्चात् अयोध्या लौटे होंगे तो वहां के नागरिकों ने आह्लादित और आनन्द-विभोर होकर दीपमालिकाओं को प्रज्वलित कर अपने स्नेह पूरित अनुराग को प्रकट किया होगा।

यह मान्यता भी रही है कि भगवान् बुद्ध के समय में यह त्यौहार समस्त उत्तर भारत में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था। वैसे भी जैन इसे महावीर वर्द्धमान—महावीर का समय ५५० ई. पू. से ४६८ ई. पूर्व और बुद्ध का समय ५६६ ई. पूर्व से ४८० ई. पूर्व तक है—के निर्वाण दिन के रूप में मानते हैं। आज से १२०० वर्ष पूर्व जैनाचार्य जिनसेन ने अपने हरिवंश पुराण में इस तथ्य की पुष्टि में निम्न श्लोक लिखा है। महावीर के निर्वाण के पश्चात् असंख्य देवों, असुरों ने प्रचण्ड

प्रकाशवाले असंख्य दीपकों को जलाकर महान् प्रकाश किया, यथा—

ज्वलत्प्रदीपालिकया प्रवृद्धया,
सुरासुरैः दीपितया प्रदीप्तया।
तदास्म पावानगरी समन्ततः
प्रदीपता काशतला प्रकाशते।
तथैव च श्रेणिकपूर्व भूभूतः
प्रकृत्य कल्याणमहं सहप्रजाः।
प्रजग्मुरिन्द्राश्च सुरैर्यथायथं
प्रयाचमाना जिनबोधिमार्थिनः।

इस प्रकाश से समस्त पावानगरी एवं आकाश भी देदीप्य-मान हो गये, इन्द्रादि देवों, राजा, श्रेणिक सभी ने वृर्द्धमान का निर्वाणोत्सव समारोह मनाया,

जिनसेनाचार्य ने आगे यह लिखाः—

ततस्तु लोकः प्रतिवर्ष मादरा
त्प्रसिद्ध दीपवलिक मात्र भारते,
समुद्यतः पूजयित जिनेश्वर
जिनेन्द्र निर्वाण विभूति भक्तिभाक।

तात्पर्य यह कि तत्पश्चात् समस्त भारत में प्रतिवर्ष, भार-तीय, सादर जिनेश्वर के निर्वाणोत्सव में दीपावली द्वारा अपनी अनन्य भक्ति एवं श्रद्धांजली प्रकट करते हैं।

वात्सायन ने भी अपने कामसूत्र में तीन महनीय उत्सवों का उल्लेख किया है जिनमें से एक यक्षरात्रि भी है। कामसूत्र

का रचनाकाल ५० ई. से ४०० ई. के बीच है, अतः उससे यह सिद्ध होता है कि दीपावली की मान्यता उस समय भी अवश्य थी किन्तु यक्षरात्रि के रूप में।

यशोधर कृत कामसूत्र की टीका से पता चलता है कि दीवाली की ही भांति यक्षरात्री भी बड़ी धूम धाम से मनायी जाती थी, उसमें यक्षरात्री को सुखरात्री की संज्ञा भी दी गई है, उस दिन यक्ष की पूजा होती, जुवा खेलने, तथा नये वस्त्र आभूषण खरीद कर अपने गृहोंको सुसम्पन्न करने की योजना आज तक होती है। यथाः—

यक्षरात्रिरिति सुखरात्रि यक्षाणांतत्र संनिधानात्।
तत्र पश्यो लोकस्य द्यूतक्रीड़ा .....

अतः सुखरात्रि के सहारे दीपावली की ऐतिहासिकता पर कुछ प्रकाश पड़ता है। ब्रह्माण्ड पुराण में कहा गया है कि अमावस्या को जब तुला में आदित्य हों तो लक्ष्मी निन्द्रित होती हैं, वह दिन सुखरात्रि स्वरूप है उस दिन प्रदीपों का प्रकाश किया जाना चाहिये और लक्ष्मी की पूजा करनी चाहिए। वारह पुराण में कहा गया है कि अमावस्या को जब तुला में सूर्य होता है तो उस दिन लक्ष्मी निद्रित होती है, उस दिन को लक्ष्मी प्रबोध अथवा दीपमालिका कहते हैं।

अन्ततोगत्वा दीवाली और यक्षरात्रि एक ही दिन मनायी जाती हैं।

रत्नावली और प्रियदर्शिका के रचयिता श्री हर्ष की

(शेष पृष्ठ १९२७ पर)

व्यसनों से मुक्ति

ले० योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

व्यसन और जीवन

सर्व सामान्य रूप से मानव-जीवन का निजी गुण, स्वभाव और कर्म इसी ध्येय-तत्व को लेकर चलता रहता है कि जीवन सब तरह के सांसारिक कष्टों से मुक्त रहे। किसी प्रकार के हानिकर दुर्व्यसनों के चंगुल में फंसने की नौबत न आए और निकम्मी महत्वहीन उपाधियां जीवन की शांति में बाधक न बन सकें। जनसाधारण इसी महत्वाकांक्षा आजीवन तदनुकूल प्रयासों में सतत संलग्न रहता है। किंतु आज वह स्थिति नहीं। उपयुक्त परिष्कृत विचार और सुसंस्कृत जीवन-लक्ष्य तिरोहित होता जा रहा है। लोगों के मन बदल गये हैं और एक असंगत विचार-क्रान्ति का प्रवर्तन देखा जा रहा है। आज उपयुक्त उच्च भावना के विरुद्ध आचार-विचार फैल रहे हैं। लोग अनेक प्रकार के दुर्व्यसनों से जकड़ गये हैं और कोई न कोई अनावश्यक व्यसन उनका चिर सहचर बन बैठा है। व्यसन उनका आधार बन गया है। ऐसे लोगों का कथन है कि यदि हम इस व्यसन की पूर्ति न करें तो हमारा जीवन दुर्बद हो जायेगा अभीष्ट व्यसन को पूरा

किये बिना हम जी नहीं सकते। उनका मन हर समय व्यसनी वस्तु के आसपास चक्कर लगाता है। वे दुर्व्यसनों के दुष्परिणामों पर विचार नहीं करते और न यही सोचते हैं यह व्यसनी प्रवृत्ति हमें किस परिस्थिति में ले जाकर पटकेगी। कदाचित् कुफल का विचार भी आ गया तो यह कहकर उसे टाल देते हैं कि जब जैसी स्थिति आयेगी, उससे निबट लेंगे, फल भोग लेंगे। यही उनका समाधान है, यही आश्वासन है।

आजकल लोग व्यसनों में इतने अधिक फंस गये हैं कि उनकी यह स्थिति देखकर दया आती है। उनकी दशा वही होती है, जैसे कोई व्यक्ति अज्ञानवश कीचड़ में घुटनेतक घुस गया हो, अब उस फंसे हुये पैर को बाहर निकालने के लिये दूसरे पांव को कीचड़ में डालकर आधार पाने का प्रयास करता है तो वह दूसरा पांव भी घुटनेतक कीचड़ में समा जाता है। अब इन दोनों पैरों को कीचड़ से मुक्त करने के लिये सहारा पाने की इच्छा से यदि एक हाथ को कीचड़ में स्थापित करने का प्रयास करता है तो वह हाथ भी कीचड़ में टखनों तक फंस जाता है। दूसरे हाथ का सहारा लेने चले तो वह हाथ भी फंसकर निकम्मा हो जाता है। अन्ततः निरुपाय और निराधार स्थिति पर पहुंच जाते हैं। ऐसी स्थिति में या तो अन्य लोग उसे बाहर निकालते हैं अथवा लकड़ी आदि का सहारा लेकर वह स्वयं कीचड़ से निकलता है। यदि वह कीचड़से बाहर न निकल सका तो उसके जीवन का वहीं अन्त हो जाता है। यह दृष्टान्त व्यसनी स्त्री-पुरुषों के जीवन की दशा के साथ पूर्णतया सुसंगत समझिये।

बचपन और व्यसन

प्रेम, लज्जा, बेपरवाही; घर के अन्य लोगों के विरोध के भय से अथवा पास-पड़ोस की निन्दा के भय से मात-पिता अथवा पालक (घर के यजमान) अपने कुमार-कुमारियों के व्यसन के सम्बन्ध में सब कुछ जान लेने पर भी उन्हें समझा बुझाकर व्यसन से विरत करने की कोशिश नहीं करते और यदि स्वयं माता-पिता भी व्यसनों के जाल में फंसे होते हैं तो वे अपने बच्चों को उसका निषेध करने में हिचकते हैं। माता-पिता को व्यसनों में पड़े देखकर बच्चे भी उसी मार्ग का अनुसरण करते हैं। बचपन के संस्कारों पर ही समग्र जीवन का आधार है।

अब सुनिये व्यसनियों की दुर्दशा

आरम्भ में ही जैसे घोड़े की लगाम पकड़कर उसे वश में नहीं किया जाता और उसे मुक्त छोड़ दिया जाता है तो वह मनमाने ढंगसे निरंकुश दौड़ लगाता है और किसी गलत मार्ग पर पहुंचकर खाई, खन्दक, कुआं, जलाशय आदि में गिरकर स्वयं का नाश तो करता ही है, पीठपर बैठे हुये आरोही (सवार) का भी जीवन नष्ट कर देता है। यही स्थिति व्यसनियों की भी होती है। शराब, गांजा भांग, बीड़ी-सिगरेट, जुआ, वेश्यागमन आदि अनेक प्रकार के व्यसनियों की हालत दयनीय दिखाई देती है। वे स्वयं दुःखी तो हैं ही, अपने पारिवारिक जनों और हितैषी-मित्रों को भी दुःखी

बना रहे हैं। उपर्युक्त अश्व के उदाहरण के अनुसार पंच कर्मेन्द्रियों (हाथ, पांव, गुदा, शिश्न जीभ) तथा पंचज्ञानेन्द्रियों (आंख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा) को यदि निरंकुश छोड़ना अभीष्ट नहीं है, यदि उन्हें वश में रखने की इच्छा है तो एतदर्थ मनका आधार लेना पड़ेगा। मन ही इन इन्द्रिय- अश्वों की लगाम है। यदि इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं किया जाता उन्हें वशमें नहीं किया जाता तो अनेक प्रकार के दुःख-क्लेश आपके पीछे लगकर आतंक और घबराहट में डाल देंगे। अनेक प्रकार के शारीरिक रोग घेर लेंगे और मानसिक चिन्ताओं तथा आर्थिक चिन्ताओं से जकड़कर आपका जीवन नरकमय बन जायेगा। यही व्यसनों का अन्तिम परिणाम है।

उचित प्रयासों से जीवन--सुधार सम्भव है

बहुसंख्यक व्यसनी लोगों के मुख से यह शब्द सुनने में आते हैं कि हम व्यसनों के चंगुल में फंस गये हैं। इनसे छुटकारा मिलने की आशा अब नहीं है, हमारे जीवन की बर्बादी हो रही है। किन्तु उपाय क्या है? व्यसन हमारे अनन्य संगी बन गये हैं, इन्हीं के आधार पर काम करते हैं। इनके बिना जीवन चलना दुस्कर है। इस का कारण बताते हुए कहते हैं-"प्रातःकाल मलविसर्जन के पहले यदि चाय-बीड़ी आदि न पियें, तो मलविसर्जन खुलकर नहीं होता--टट्टी साफ नहीं होती। दिन में काम के समय भी चाय---बीड़ी का सहारा लेना पड़ता है। इनके आधार पर ही हम दिन भर पूरी स्फूर्ति के साथ काम करते रहते हैं, अन्यथा काम करना कठिन होता

है। रात में भी बिना चाय या सिगरेट पिये गहरी नींद नहीं आती।"

गलत धारणा

किन्तु मेरे मतानुसार लोगों की उपर्युक्त धारणाएँ गलत हैं। चाय-बीड़ी आदि के उपयोग से न तो स्फूर्ति आती है और न काम करने की ताकत प्राप्त होती है, बल्कि लोगोंकी यह धारणा बन गई है, लोग ऐसा मान बैठे हैं, फलत: उनको क्षणिक स्फूर्ति और शक्ति का अनुभव होता है, किन्तु वास्तविकता कुछ और ही है। चाय-बीड़ी से स्फूर्ति और शक्ति नहीं मिलती, बल्कि इन्द्रियां कुछ क्षणों के लिये उत्तेजित हो उठती हैं, पुनः वे और भी अधिक शिथिल हो जा ी हैं। व्यसनों से ज्ञानतन्तु, पाचक इन्द्रियां और रस ग्रन्थियां निर्बल हो जाती हैं। रक्त अशुद्ध हो जाता है। इन्द्रियोंमें शिथिलता आ जाती है। ऐसी अवस्थामें जीवनमें वास्तविक शक्ति, स्फूर्ति उत्साह और उमंग का संचार कैसे सम्भव है, यह एक प्रश्न है। बारंबार चाय और सिगरेट बीड़ी का सेवन कर अशक्त इन्द्रियों को शरीर के अंगोपांगों में कृत्रिम शक्ति भर कर और उन्हें बढ़ावा देकर काम कर लेते हैं। किन्तु इस शक्तिका कोई महत्त्व नहीं, क्योंकि जबतक नशेकी उत्तेजना रहेगी, तभीतक उसका आधार रहेगा। नशेकी उत्तेजना दूर होते ही पुनः अशक्ति, शिथिलता, आलस्य, प्रमाद आदि घेर लेते हैं, अतः पुनः उसी नशीली वस्तुकी शरण लेनी पड़ती है। अन्त में जीवन नरकमय बन जाता है।

व्यसनों से सुरक्षित रहने का उपाय

यदि सचमुच व्यसनों ने आपकी दुर्गति कर दी है और इस दुर्भाग्य के अभिशाप से आप बचना चाहते हैं तो आपका सर्वप्रथम प्रयास यह होना चाहिये कि आप व्यसन विरोधी विचारभावों को हृदय में धारण करें। और मन को व्यसनों से विमुख करें। विचार परिवर्तन के बिना और व्यसनों के प्रति मन में विरक्ति या घृणा उत्पन्न किये बिना व्यसनों से मुक्ति पाना कदापि सम्भव नहीं। इसके लिये मनको समझाना पड़ेगा और उसे बलवान् भी बनाना पड़ेगा और धारणा बनानी पड़ेगी कि वस्तुतः चाय बीड़ी से मलविसर्जन नहीं होता। यह गलत समझ है, बलिक इससे कब्जियत और भी बढ़ जाती है और बवासिर आदि अनेक भयंकर रोगों का उत्पात उठ खड़ा होता है। चर्मरोग आदिसे ग्रस्त होकर शरीर यातनाओं का आखाड़ा बन जाता है।

मनोबल का उचित उपयोग किये बिना व्यसनों के प्रति तिरस्कारभाव, घृणा, उपेक्षा आदि उत्पन्न बिना व्यसन कभी पीछा छोड़ने का उद्योग न करेंगे। एतदर्थ मन को बलवान्, दृढ़निश्चयी और शिवसंकल्पवान् बनाना ही पड़ेगा।

आपको दृढ़ संकल्प करना चाहिये कि मेरी मानसिक शक्ति निरन्तर बढ़ती जा रही है। अब कोई भी व्यसन मुझे अपनी पराधीनता की जंजीर में नहीं बांध सकता। अब मैं व्यसनों से मुक्त होकर परम पवित्र, और स्वतन्त्र जीवन का

निर्माण करूंगा, जीवन को शुद्ध बुद्ध बनाऊँगा और पवित्र पुरुषों के सम्बन्ध रखूँगा ।

दूसरा उपाय:—अपने इष्टदेव अथवा अपने परम श्रद्धास्पद गुरुदेव की आज्ञा तथा प्रेरणा के आधीन रहकर मैं दृढ़ निश्चय करता हूँ कि आज से मैं किसी भी व्यसन की अधीनता स्वीकार नहीं करूँगा और मुक्त जीवन की आनन्दानुभूति करूँगा। मेरी आन्तरिक अदम्य शक्ति के सामने व्यसन अन्य शक्तिकी कोई हस्ती नहीं । व्यसनों को शक्तिका स्रोत मानना अपनी आन्तरिक दैवी शक्ति का अपमान करना है। अब व्यसन हमारे जीवन को दबा नहीं सकते, बल्कि मैं ही उन्हें कुचल दूंगा।"

इन सब मानसिक प्रयोगों के साथ उसी दिन से आसन, प्राणायाम, सत्संग, स्वाध्याय-सद्ग्रन्थों का पठन, ईश्वर चिन्तन और दिव्य जीवन की ओर प्रेरित करनेवाले अन्य पठन, मनन, निदिध्यासन पवित्र स्थान में निवास—व्यसनी लोगों की संगतिसे दूर—आदि उच्च कोटी के आचरण धारण करने से व्यसनों से सदा के लिये मुक्ति पाकर सुख-शान्ति की सांस ली जा सकती है।

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः ।



(शेष पृष्ठ १९१९ का)

नाटिकाओं में भी 'दीपप्रतिपदुत्सव' का उल्लेख इसी ओर संकेत करता है कि यह उत्सव उस समय भी अपनी पराकाष्ठा पर था।

हेमचन्द्र (१०८८-११७२) ने देशी नाममाला कोश में (यक्षरात्रि) (यक्खरात्ति) का उल्लेख दीपावली के संदर्भ में किया, तथा उनके समकालीन पुरुषोत्तम ने (११५५ ई.) अपने त्रिकाण्ड शेष नामक कोश में भी यक्षरात्रि को दीपावली ही बताया।

ईसा की बारहवीं शताब्दी में दीपावली भारत का राष्ट्रीय त्यौहार था। महमूद गजनवी के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ अलबरूनी ने जो संस्कृतके महान पण्डित थे, लिखा है 'भारतमें दीवाली का त्यौहार उस दिन मनाया जाता है जब सूर्य तुलाराशि में स्थिर रहता है और नया चांद निकलने वाला होता है। लोग उस दिन के बाद आकर्षक वस्त्रों से सुसज्जित होकर एक दूसरे को पान-सुपारी भेंट करते हैं और दोपहर तक मंदिरों में दान आदि देते हैं। रात को असंख्य दीपों से वातावरण दैदीप्यमान हो जाता है।

१६ वीं शताब्दी में मुगल सम्राट अकबर ने भी हिन्दुओं के त्यौहारों एवं पर्वों को शाही संरक्षण दिया था। उनके दरबार के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ-विद्वान्-लेखक अबुल-फजल ने आइने अकबरी में इस राष्ट्रीय पर्व का उल्लेख इस प्रकार किया है—"दीपावली वैष्णवों का पर्व है, इस दिन आतिशबाजी का बहुत उपयोग किया जाता है। मुस्लिम त्यौहारों की भाँति

दीपावली को दीये जलाकर रोशनी की जाती है और लोग जुआ खेलते हैं। बादशाह अकबर के महल में भी एक चालीस गज ऊंचे खम्भे पर मिट्टी का चिराग है, जिसे दीपावली के दिन जलाया जाता है, ताकि लोग जान जायें कि महल में भी रोशनी की जाती है।"

सिक्ख भी प्रकाश के इस पर्व को उसी हर्ष, उल्लास एवं तत्परता से मनाते हैं जिस निष्ठा, भावना एवं आनन्दातिरेक से हिन्दू व जैन आदि। अमृतसर के दरबार साहब गुरुद्वारा का शिलान्यास सं. १६४५ में दीपावली के दिन ही हुआ था और और पंजाब में उस पर्व पर सर्वोत्तम रोशनी शायद स्वर्ण मंदिर में ही होती है।

मुगल साम्राज्य की ढहती दीवारों के साथ हिन्दुओं के प्रति उनकी धार्मिक सहिष्णुता साम्प्रदायिक कटघरों में बँध गई जिससे इन त्योहारों को शासकीय प्रोत्साहन मिलना कठिन था किन्तु दक्षिण में हिन्दुत्व के पुनर्संस्थापक छत्रपती शिवाजीने इसे पुनः मान्यता ही प्रदान नहीं की बल्कि अपने सैनिक अभियान भी दीपावली के शुभावसर पर आरंभ किए। इन विजयों के प्रतीक स्वरूप महाराष्ट्र में आज भी बच्चे दीपावली में दुर्ग बनाकर खेलते हैं।

दीपावली के इस राष्ट्रव्यापी पर्व के शुभ अवसर पर स्वामी रामतीर्थ एवं महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने क्षणभंगुर शरीर को मानवहित के लिए उत्सर्ग किया।

* दीपावली का स्वरूप *

दीपावली का जहाँ एक ओर राष्ट्रीय स्वरूप है वहाँ उसका अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप भी है। दीपावली विश्व के विभिन्न देशों में विभिन्न अवसरों पर मनायी जाती है किन्तु मूल स्वरूप उसका एक ही है—अन्धकार पर प्रकाश की विजय।

दीपावली हर वर्ष आती है। हर्ष और उल्लास के साथ मनायी जाती है। दीपमालिकाओं द्वारा गृह जगमगाये जाते हैं। दम्पति हर्ष और आनन्दातिरेक से इस अवसर पर नये वस्त्र, आभूषण-बर्तन आदि खरीदते हैं। किन्तु मानव का मानवोचित कर्तव्य मात्र इस बाहरी साज-सजा तक ही क्यों सीमित रखा जाय ! हम मानव हैं। मानव भावनाप्रधान प्राणी है। आज विश्व की इस भौतिक द्वंद्वात्मक विभीषिका में भावनात्मक प्रकाश को प्रज्वलित करने की आवश्यकता है। हमारे घरों की दीपमालिकाएं तभी शुभ्र एवं देदीप्यमान दिखेंगी जब सर्वत्र प्रकाश होगा। अन्यथा यह अर्ध प्रकाश मानव प्रगति का उपहास उड़ाने में ही समर्थ होगा। यह बाहरी रोशनी सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक न होकर प्रदर्शनी मात्र होगी। आज मानव के अन्तसमें प्रकाश की आवश्यकता है, वही अन्त तक मानव को प्रकाश एवं जीवन दे सकेगा।

क्यों न बाहरी दीपमालिका के साथ हम अन्तस की दीपमालिका जलाने का प्रण करें ?



दीपावली का जहाँ एक ओर राष्ट्रीय स्वरूप हैं वहाँ उसका अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप भी है। दीपावली विश्व के विभिन्न देशों में विभिन्न अवसरों पर मनायी जाती है किन्तु मूल स्वरूप उसका एक ही है—अन्धकार पर प्रकाश की विजय।

दीपावली हर वर्ष आती है। हर्ष और उल्लास के साथ मनायी जाती है। दीपमालिकाओं द्वारा गृह जगमगाये जाते हैं। दम्पति हर्ष और आनन्दातिरेक से इस अवसर पर नये वस्त्र, आभूषण-बर्तन आदि खरीदते हैं। किन्तु मानव का मानवोचित कर्तव्य मात्र इस बाहरी साज-सजा तक ही क्यों सीमित रखा जाय ! हम मानव हैं। मानव भावनाप्रधान प्राणी है। आज विश्व की इस भौतिक द्वंद्वात्मक विभीषिका में भावनात्मक प्रकाश को प्रज्वलित करने की आवश्यकता है। हमारे घरों की दीपमालिकाएं तभी शुभ्र एवं देदीप्यमान दिखेंगी जब सर्वत्र प्रकाश होगा। अन्यथा यह अर्ध प्रकाश मानव प्रगति का उपहास उड़ाने में ही समर्थ होगा। यह बाहरी रोशनी सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक न होकर प्रदर्शनी मात्र होगी। आज मानव के अन्तसमें प्रकाश की आवश्यकता है, वही अन्त तक मानव को प्रकाश एवं जीवन दे सकेगा।

क्यों न बाहरी दीपमालिका के साथ हम अन्तस की दीपमालिका जलाने का प्रण करें ?

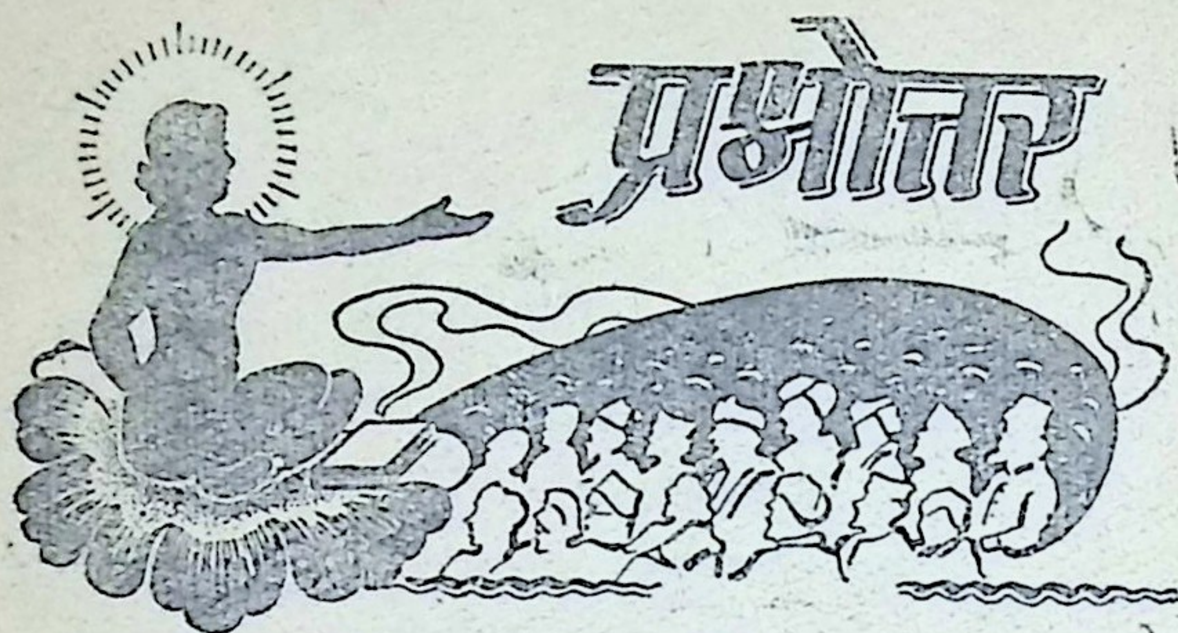


दीपावली को दीये जलाकर रोशनी की जाती है और लोग जुआ खेलते हैं। बादशाह अकबर के महल में भी एक चालीस गज ऊंचे खम्भे पर मिट्टी का चिराग है, जिसे दीपावली के दिन जलाया जाता है, ताकि लोग जान जायें कि महल में भी रोशनी की जाती है।"

सिक्ख भी प्रकाश के इस पर्व को उसी हर्ष, उल्लास एवं तत्परता से मनाते हैं जिस निष्ठा, भावना एवं आनन्दातिरेक से हिन्दू व जैन आदि। अमृतसर के दरबार साहब गुरुद्वारा का शिलान्यास सं. १६४५ में दीपावली के दिन ही हुआ था और और पंजाब में उस पर्व पर सर्वोत्तम रोशनी शायद स्वर्ण मंदिर में ही होती है।

मुगल साम्राज्य की ढहती दीवारों के साथ हिन्दुओं के प्रति उनकी धार्मिक सहिष्णुता साम्प्रदायिक कटघरों में बँध गई जिससे इन त्योहारों को शासकीय प्रोत्साहन मिलना कठिन था किन्तु दक्षिण में हिन्दुत्व के पुनर्संस्थापक छत्रपती शिवाजीने इसे पुनः मान्यता ही प्रदान नहीं की बल्कि अपने सैनिक अभियान भी दीपावली के शुभावसर पर आरंभ किए। इन विजयों के प्रतीक स्वरूप महाराष्ट्र में आज भी बच्चे दीपावली में दुर्ग बनाकर खेलते हैं।

दीपावली के इस राष्ट्रव्यापी पर्व के शुभ अवसर पर स्वामी रामतीर्थ एवं महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने क्षणभंगुर शरीर को मानवहित के लिए उत्सर्ग किया।



श्री० उमाकान्त मिश्र, देवहटा, इलाहाबाद

पत्र संख्या–१ प्रश्न संख्या–१

मधुमेह के प्राकृतिक तथा यौगिक इलाज बताने की कृपा करें।

प्रश्न–२—नाक से पानी पीने के लिये किस प्रकारके पानी का उपयोग करना चाहिये।

प्रश्न–३—कृपया ऐसा योगाभ्यास बताइये, जिससे कामवासना बिलकुल खत्म हो जाये या कम हो जाये।

उत्तर–१—'रामतीर्थ' मासिक के सितम्बर, १९६२ के अंक में पृष्ठ १६०५ में मधुमेह का यौगिक एवं प्राकृतिक उपचार विस्तार पूर्वक तथा महत्त्वपूर्ण ढंग से बताया गया है, उसे पढ़ लीजिये। आप का अभीष्ट सिद्ध होगा।

उत्तर–२—मटके के शीतल जलसे जलनेति (नाकसे पानी पीना) की क्रिया करनी पड़ती है। अधिक ठण्डी के दिनोंमें

साधारण उष्ण जल का उपयोग करें। प्रवाहयुक्त नदी का जल अथवा कुएका स्वच्छ जल कपड़े से छानकर जलनेति के लिये उपयोग में लेना चाहिये। यदि ऐसा जल न मिले तो नल के जल को अच्छी तरह गरम कर मिट्टी के बर्तन में गरम करने के बाद नाक से सेवन करें। मस्तिष्क को ठण्डा-शान्त, आंखों की दृष्टि को सतेज, गलेको स्वच्छ और नाकके छिद्रों को स्वच्छ करने के लिये जल-नेति-कर्म किया जाता है। इस सम्बन्ध में 'उमेश--योगदर्शन' (प्रथम खण्ड) में विस्तार के साथ उल्लेख किया गया है। जलनेति कर्म सदा नहीं करना चाहिये। इससे लाभ नहीं होगा। आदत पड़ जायेगी। जब कोई कारण उपस्थित हो, तभी करना चाहिये। सदैव उषापान मुख से करना चाहिये, नाक से नहीं। प्राकृतिक नियम नाक से जलपान करने का नहीं है। विशेष कारणवश कुछ समय तक करने से उपर्युक्त लाभ प्राप्त होगा।

उत्तर ३—कामवासना को कम अथवा सर्वथा समाप्त करने के लिये योगशास्त्र में बहुत सुन्दर निरापद उपाय अभ्यास तरीके उपचार बताये गये हैं। पाश्चिमात्य ढंग से अप्राकृतिक साधनों से आजकल सन्तति नियमन-कुटुम्ब नियोजन के साधन अपनाये जा रहे हैं। यह समाज के लिये अनुकूल नहीं हैं—प्रतिकूल है। इससे विषय भोग का आवेश और भी बढ़ेगा। अग्नि में घृत पड़ने से जैसे अग्नि और अधिक प्रज्वलित हो उठती है, वैसी तरह विषय वासना भी भड़केगी। इन्द्रियां तथा मन उसकी ओर अधिकाधिक प्रवृत्त

होंगे, जिसका दुष्परिणाम प्रकट होकर रहेगा। अल्प वय में बाल सफेद हो जाना, दांत गिर जाना, इन्द्रियों का शिथिल हो जाना, आंखों की दृष्टि घट जाना आदि नाना प्रकार की व्याधियों का उद्भव होता है।

योगाभ्यास द्वारा उपचार

सुप्त वज्रासन २ से ५ मिनट, मत्स्यासन २ से ४ मिनट, सिद्धासन ब्रह्मचारी तथा गृहस्थी ३० मिनट तथा वानप्रस्थी त्यागी वैरागी, संन्यासी साधु १ से २ घण्टे तक सिद्धासन कर सकते हैं। सिद्धासन कामविकार को दूर करता है। चक्रासन १ मिनट, पश्चिमोत्तानासन १ से २ मिनट, विस्तृतपाद भू स्पर्शासन १ से २ मिनट, कुक्कुटासन १ मिनट, हस्त पादांगुष्ठासन १ से २ मिनट, गर्भासन १ से २ मिनट, द्विपाद शिरासन १ से २ मिनट, शवासन ५ से ७ मिनटतक करना चाहिये।

प्राणायाम प्रयोग

भ्रामरी प्राणायाम ३ से १२ वार, मूर्छा प्राणायाम ३ से ६ वार, और भस्त्रिका प्राणायाम २ से ४ वार करें। यह सब साधन अभ्यास प्रात:काल स्नान के बाद करने चाहियें। यदि सवेरे समय न हो तो सायंकाल।

अध्ययन स्वाध्याय

योगवासिष्ठ, अवधूतगीता, अष्टावक्रगीता, रामतीर्थ मासिक, रामायण, महाभारत, विदुरनीति, श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन करें। इससे मन तथा इन्द्रियां शान्त होंगी।

मानसिक उपचार

मन में तमो—रजो गुणमयी वृत्तियां (कामवासना की वृत्तियां ईर्ष्या द्वेषमयी वृत्तियां) का उद्‌भव होने न पाये. ऐसा प्रशान्त और बलवान् उन्हें बनायें । सद्‌गुणी लोगों के साथ बैठने-उठने की आदत डालें ! प्रातःकाल उठते ही भगवान् की प्रार्थना करें कि 'हे भगवान् ! मेरा जीवन सर्वांगतः पवित्र बने। आपकी कृपा से मैं इन्द्रियों को वशीभूत रखते हुये परम पवित्र जीवन व्यतीत करूं। मुझे धन ऐश्वर्य यथेच्छ रूपमें प्राप्त हो और उसका दैवी सम्पदा के रूपमें अपने तथा प्राणिमात्र के कल्याण के लिये परोपकार में सदुपयोग करूँगा । मेरा जीवन संयमशील रहे। अधर्म, अनीति और अनाचार मूलक कर्म से मैं बहुत दूर रहूँ। उनका प्रभाव मेरे ऊपर न पड़े । मेरी एकादश इन्द्रियां बलवान् और शान्त रहें ।" इस भावना को मन-ही-मन और वैखरी वाणी से ५१ बार जाप करते रहें । इस भावना को मध्याह्न १२ बजे ५१ बार, सायं- काल सूर्यास्त के समय ५१ बार और रातमें शयन के समय ५१ बार पाठ करें । दिन में ४ बजे किसी विशेषकारण वश सम्भव न हो तो प्रातःकाल और रातमें शयन के समय अवश्य पाठ करें । संयमी जीवन के लिये यह अभ्यास अत्युत्तम है। इससे मनोबल बढ़ जायेगा। जीवन (शरीर, मन, धन, ऋद्धि- सिद्धि) की चारों ओर से उन्नति होगी । इस प्रार्थना में गूढ़ महान् शक्ति भरी हुई है, केवल सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ मनो- वृत्तियों को पूर्णतया अवरुद्ध कर इस प्रार्थना में तन्मय करना पड़ेगा। यदि समय हो तो और भी अधिक समयतक उपर्युक्त भावना में मन को एकाग्र करना चाहिये-इस भावना के साथ

जीवन को तल्लिन बना देना चाहिये। उस समय देश, काल, व्यक्ति आदि किसी भी विषय का स्मरण नहीं करना चाहिये। इस में महती गुप्त शक्ति भरी हुई है।

मन को त्याग-वैराग्य की भावना से ओतप्रोत रखें और जीवन के व्यवहार संचालन में कुशलता धारण करें। मस्तिष्क को शान्त अवस्था में रखें। बारंबार घर, अड़ोस-पड़ोस और बाहर के व्यवहार में क्रोध, असन्तोष, उद्विग्नता, क्लेश, निंदा और तिरस्कार का प्रसंग उपस्थित होकर संयमी जीवन में बाधा पहुंच सकती है। ऐसे विकट समय में महान् योद्धा के समान निर्भयता के साथ सब कुछ सहन कर लें, परन्तु अपने जीवन- ध्येय से तिलमात्र भी विचलित न हों। यही संयमी जीवन की कठिन परीक्षा है, यही संयमी जीवन का महान उद्देश्य है, यही पुरुषत्व का परम लक्षण है। यही जीवन का सार है, यही अविनश्वर आनन्द धाम में पहुँचने का पावन पथ है। सदा सन्तोष, सदा शान्ति, सदा समाधान, सदा संयमी जीवन की वृत्ति को मन में स्थिर रखना चाहिये। जहां तक सम्भव हो, विषय—लम्पटता, मनोकर्षक, दृश्य, स्वाद, शब्द, स्पर्श और गन्ध से दूर रहने के प्रयास करते रहिये। यदि किसी कारणवश ऐसे स्थानपर अनिवार्य रूप से जाना ही पड़े तो उस स्थितिमें त्यागवृत्ति, घ्राणवृत्ति, और अवगुणयुक्त दोषों की वृत्ति मन में उसी समय तक हृदय में रखें। तदुपरान्त ऐसी वृत्तियों को त्यागकर पूर्ववत् शुभेच्छा, सुविचार और उच्च भावों को मन में धारण कर लें। संयमी जीवन व्यतीत करने के लिये और भी अनेक उपाय हैं। यदि उन्हें विस्तारपूर्वक लिखा जाये तो एक पुस्तक तैयार हो जायेगी। संक्षिप्त रूपसे संयमी जीवन की यही रूपरेखा है।



निराला मुद्रक

१४०; आर्थर रोड
बम्बई ११.

शुभ कामनाओं के साथ